प्रेमचंद

बाल साहित्य

मेरी पहली रचना, रक्षा में हत्या,

कुत्ते की कहानी, दुर्गादास, रामचर्चा और जंगल की कहानियाँ

[हिन्दीकोश]

Tittle: Bal Sahitya

Author: Premchand

Release Date: 30 Nov 2020

Edition: 1.1

Language: Hindi

While every precaution has been taken in the preparation of this book, the publisher assumes no responsibility for errors or omissions, or for damages resulting from the use of the information contained herein.

Suggestions and corrections are welcome.

Visit https://www.hindikosh.in for more...

बाल साहित्य

मेरी पहली रचना

रक्षा में हत्या

कुत्ते की कहानी

दुर्गादास

रामचर्चा

जन्म

ताड़का और मारीच का वध

विवाह

वनवास

राजा दशरथ की मृत्यु

भरत की वापसी

चित्रकूट

भरत और रामचन्द्र

दंडक वन

पंचवटी

हिरण का शिकार

छल

सीता का हरा जाना

किष्किन्धा कांड

हनुमान

लंका में हनुमान

लंकादाह

आक्रमण की तैयारी

विभीषण

आक्रमण

रावण के दरबार में

अंगद

मेघनाद

कुम्भकर्ण

मेघनाद का मारा जाना

रावण युद्धक्षेत्र में

विभीषण का राज्यभिषेक

अयोध्या की वापसी

रामचंद्र की राजगद्दी

राम का राज्य

सीता वनवास

अश्वमेध यज्ञ

लक्ष्मण की मृत्यु

अन्त

जंगल की कहानियाँ

मिट्ठू

शेर और लड़का

वनमानुष की दर्दनाक कहानी

दक्षिण अफ्रीका में शेर का शिकार

गुब्बारे पर चीता

पागल हाथी

साँप का मणि

बनमानुस खानसामा

पालतू भालू

बाघ की खाल

मगर का शिकार

जुड़वा भाई

मेरी पहली रचना

उस वक्त मेरी उम्र कोई 13 साल की रही होगी। हिन्दी बिल्कुल न जानता था। उर्दू के उपन्यास पढ़ने-लिखने का उन्माद था। मौलाना शरर, पं. रतननाथ सरशार, मिर्जा रुसवा, मौलवी मुहम्मद अली हरदोई निवासी, उस वक्त के सर्वप्रिय उपन्यासकार थे। इनकी रचनाएँ जहाँ मिल जाती थीं, स्कूल की याद भूल जाती थी और पुस्तक समाप्त करके ही दम लेता था। उस जमाने में रेनाल्ड के उपन्यासों की धूम थी। उर्दू में उनके अनुवाद धड़ाधड़ निकल रहे थे और हाथों-हाथ बिकते थे। मैं भी उनका आशिक था। स्व. हजरत रियाज़ ने जो उर्दू के प्रसिद्ध कवि थे और जिनका हाल में देहान्त हुआ है, रेनाल्ड की एक रचना का अनुवाद 'हरम सरा' के नाम से किया था। उस जमाने में लखनऊ के साप्ताहिक 'अवध-पंच' के सम्पादक स्व० मौलाना सज्जाद हुसेन ने, जो हास्यरस के अमर कलाकार हैं, रेनाल्ड के दूसरे उपन्यास का अनुवाद 'धोखा' या 'तिलस्मी फ़ानूस' के नाम से किया था। ये सारी पुस्तकें मैंने उसी जमाने में पढ़ीं और पं. रतननाथ सरशार से तो मुझे तृप्ति न होती थी। उनकी सारी

रचनाएँ मैंने पढ़ डालीं। उन दिनों मेरे पिता गोरखपुर में रहते थे और मैं भी गोरखपुर ही के मिशन स्कूल में आठवें में पढ़ता था, जो तीसरा दरजा कहलाता था। रेती पर एक बुकसेलर बुद्धिलाल नाम का रहता था। मैं उसकी दूकान पर जा बैठता था और उसके स्टाक से उपन्यास ले-लेकर पढ़ता था; मगर दूकान पर सारे दिन तो बैठ न सकता था, इसलिए मैं उसकी दूकान से अँग्रेजी पुस्तकों की कुंजियाँ और नोट्स लेकर अपने स्कूल के लड़कों के हाथ बेचा करता था और इसके मुआवजे में दूकान से उपन्यास घर लाकर पढ़ता था। दो-तीन वर्षों में मैंने सैकड़ों ही उपन्यास पढ़ डाले होंगे। जब उपन्यासों का स्टाक समाप्त हो गया, तो मैंने नवलकिशोर प्रेस से निकले हुए पुराणों के उर्दू अनुवाद भी पढ़े, और 'तिलस्मी होशरुबा' के कई भाग भी पढ़े। इस वृहद तिलस्मी ग्रन्थ के 17 भाग उस वक्त निकल चुके थे और एक-एक भाग बड़े सुपररायल के आकार के दो-दो हज़ार पृष्ठों से कम न होगा। और इन 17 भागों के उपरान्त उसी पुस्तक के अलग-अलग प्रसंगों पर पचीसों भाग छप चुके थे। इनमें से भी मैंने पढ़े। जिसने इतने बड़े ग्रन्थ की रचना की, उसकी कल्पना-शक्ति कितनी प्रबल होगी, इसका केवल अनुमान किया जा सकता है। कहते हैं, ये कथाएँ मौलाना फैजी ने अकबर के विनोदार्थ फारसी में लिखी थीं। इनमें कितना सत्य है, कह

नहीं सकता; लेकिन इतनी वृहद कथा शायद ही संसार की किसी भाषा में हो। पूरी एंसाइक्लोपीडिया समझ लीजिए। एक आदमी तो अपने 60 वर्ष के जीवन में उनकी नकल भी करना चाहे, तो नहीं कर सकता। रचना तो दूसरी बात है।

उसी जमाने में मेरे एक नाते के मामू कभी-कभी हमारे यहाँ आया करते थे। अधेड़ हो गये थे; लेकिन अभी तक बिन-ब्याहे थे। पास में थोड़ी-सी जमीन थी, मकान था, लेकिन घरनी के बिना सब कुछ सूना था। इसलिए घर पर जी नहीं लगता था। नातेदारियों में घूमा करते थे, और सबसे यही आशा रखते थे, कि कोई उनका ब्याह करा दे। इसके लिए सौ-दो-सौ खर्च करने को भी तैयार थे। क्यों उनका ब्याह नहीं हुआ, यह आश्चर्य था। अच्छे-खासे हृष्ट-पुष्ट आदमी थे, बड़ी-बड़ी मूँछें, औसत कद, साँवला रंग। गाँजा पीते थे, इससे आँखें लाल रहती थीं। अपने ढंग के धर्मनिष्ठ भी थे। शिवजी को रोजाना जल चढ़ाते थे। और माँस मछली नहीं खाते थे।

आख़िर एक बार उन्होंने भी वही किया, जो बिन-ब्याहे लोग अक्सर किया करते हैं। एक चमारिन के नयन-बाणों से घायल हो गये। वह उनके यहाँ गोबर पाथने, बैलों को सानी-पानी देने और इसी तरह के दूसरे फुटकर कामों के लिए नौकर थी। जवान थी, छबीली थी, और अपने वर्ग की अन्य रमणियों की भाँति प्रसन्न

मुख और विनोदनी थी। 'एक समय सखि सुअरि सुन्दरि' वाली बात थी। मामू साहब का तृषित हृदय मीठे जल की धारा देखते ही फिसल पड़ा। बातों-बातों में उससे छेड़छाड़ करने लगे। वह इनके मन का भाव ताड़ गयी। ऐसी अल्हड़ न थी। और नखरे करने लगी। केशों में तेल भी पड़ने लगा, चाहे सरसों का ही क्यों न हो। आँखों में काजल भी चमका, ओठों पर मिस्सी भी आयी, और काम में ढिलाई भी शुरू हुई। कभी दोपहर को आयी और झलक दिखाकर चली गयी, कभी साँझ को आयी और एक तीर चलाकर चली गयी। बैलों को सानी-पानी मामू साहब खुद दे देते, गोबर दूसरे उठा ले जाते, युवती से बिगड़ते क्योंकर? वहाँ तो अब प्रेम उदय हो गया था। होली में उसे प्रथानुसार एक साड़ी दी; मगर अबकी गजी की साड़ी न थी, खूबसूरत-सी सवा दो रुपये की चुँदरी थी। होली की त्योहारी भी मामूल से चौगुनी दी। और यह सिलसिला यहाँ तक बढ़ा कि वह चमारिन ही घर की मालकिन हो गयी।

एक दिन सन्ध्या-समय चमारों ने आपस में पंचायत की। बड़े आदमी हैं तो हुआ करें, क्या किसी की इज्जत लेंगे! एक इन लाला के बाप थे कि कभी किसी मेहरिया की ओर आँख उठाकर न देखा, (हालाँकि यह सरासर ग़लत था) और एक यह हैं कि नीच जाति की बहू-बेटियों पर भी डोरे डालते हैं! समझाने-बुझाने का

मौका न था। समझाने से लाला मानेंगे तो नहीं, उलटे और कोई मामला खड़ा कर देंगे। इनके कलम घुमाने की तो देर है। इसलिए निश्चय हुआ कि लाला साहब को ऐसा सबक देना चाहिए कि हमेशा के लिए याद हो जाए। इज्जत का बदला खून ही चुकाता है, लेकिन मरम्मत से भी कुछ उसकी पुरौती हो सकती है।

दूसरे दिन शाम को जब चम्पा मामू साहब के घर में आयी तो उन्होंने अन्दर का द्वार बन्द कर दिया। महीनों के असमंजस और हिचक और धार्मिक संघर्ष के बाद आज मामू साहब ने अपने प्रेम को व्यावहारिक रूप देने का निश्चय किया था। चाहे कुछ हो जाय, कुल मरजाद रहे या जाय, बाप-दादा का नाम डूबे या उतराय!

उधर चमारों का जत्था ताक में था ही। इधर किवाड़ बन्द हुए, उधर उन्होंने द्वार खटखटाना शुरू किया। पहले तो मामू साहब ने समझा, कोई असामी मिलने आया होगा, किवाड़ बन्द पाकर लौट जाएगा; लेकिन जब आदमियों का शोरगुल सुना तो घबड़ाये। जाकर किवाड़ों की दराज से झाँका। कोई बीस-पचीस चमार लाठियाँ लिए द्वार रोके खड़े किवाड़ों को तोडऩे की चेष्टा कर रहे थे। अब करें तो क्या करें? भागने का कहीं रास्ता नहीं, चम्पा को कहीं छिपा नहीं सकते। समझ गये कि शामत आ गयी।

आशिकी इतनी जल्दी गुल खिलाएगी यह क्या जानते थे, नहीं इस चमारिन पर दिल को आने ही क्यों देते। उधर चम्पा इन्हीं को कोस रही थी-तुम्हारा क्या बिगड़ेगा, मेरी तो इज्जत लुट गयी। घर वाले मूँड़ ही काटकर छोड़ेंगे, कहती थी, कभी किवाड़ बन्द न करो, हाथ-पाँव जोड़ती थी, मगर तुम्हारे सिर पर तो भूत सवार था। लगी मुँह में कालिख कि नहीं?

मामू साहब बेचारे इस कूचे में कभी न आये थे। कोई पक्का खिलाड़ी होता तो सौ उपाय निकाल लेता; लेकिन मामू साहब की तो जैसे सिट्टी-पिट्टी भूल गयी। बरौठ में थर-थर काँपते 'हनुमान-चालीसा' का पाठ करते हुए खड़े थे। कुछ न सूझता था।

और उधर द्वार पर कोलाहल बढ़ता जा रहा था, यहाँ तक कि सारा गाँव जमा हो गया। बाम्हन, ठाकुर, कायस्थ सभी तमाशा देखने और हाथ की खुजली मिटाने के लिए आ पहुँचे। इससे ज्यादा मनोरंजक और स्फूर्तिवर्द्धक तमाशा और क्या होगा कि एक मर्द एक औरत के साथ घर में बन्द पाया जाए! फिर वह चाहे कितना ही प्रतिष्ठित और विनम्र क्यों न हो, जनता उसे किसी तरह क्षमा नहीं कर सकती। बढ़ई बुलाया गया, किवाड़ फाड़े गये और मामू साहब भूसे की कोठरी में छिपे हुए मिले। चम्पा आँगन में खड़ी रो रही थी। द्वार खुलते ही भागी। कोई उससे नहीं बोला। मामू साहब भागकर कहाँ जाते? वह जानते थे, उनके लिए

भागने का रास्ता नहीं है। मार खाने के लिए तैयार बैठे थे। मार पड़ने लगी और बेभाव की पड़ने लगी। जिसके हाथ जो कुछ लगा-जूता, छड़ी, छाता, लात, घूँसा अस्त्र चले। यहाँ तक मामू साहब बेहोश हो गये और लोगों ने उन्हें मुर्दा समझकर छोड़ दिया। अब इतनी दुर्गति के बाद वह बच भी गये, तो गाँव में नहीं रह सकते और उनकी जमीन पट्टीदारों के हाथ आएगी।

इस दुर्घटना की खबर उड़ते-उड़ते हमारे यहाँ भी पहुँची। मैंने भी उसका खूब आनन्द उठाया। पिटते समय उनकी रूप-रेखा कैसी रही होगी, इसकी कल्पना करके मुझे खूब हँसी आयी।

एक महीने तक तो वह हल्दी और गुड़ पीते रहे। ज्योंही चलने-फिरने लायक हुए, हमारे यहाँ आये। यहाँ अपने गाँव वालों पर डाके का इस्तग़ासा दायर करना चाहते थे।

अगर उन्होंने कुछ दीनता दिखायी होती, तो शायद मुझे हमदर्दी हो जाती; लेकिन उनका वही दम-खम था। मुझे खेलते या उपन्यास पढ़ते देखकर बिगड़ना और रोब जमाना और पिताजी से शिकायत करने की धमकी देना, यह अब मैं क्यों सहने लगा था! अब तो मेरे पास उन्हें नीचा दिखाने के लिए काफी मसाला था!

आखिर एक दिन मैंने यह सारी दुर्घटना एक नाटक के रूप में लिख डाली और अपने मित्रों को सुनायी। सब-के-सब खूब हँसे।

मेरा साहस बढ़ा। मैंने उसे साफ-साफ लिखकर वह कापी मामू साहब के सिरहाने रख दी और स्कूल चला गया। दिल में कुछ डरता भी था, कुछ खुश भी था और कुछ घबराया हुआ भी था। सबसे बड़ा कुतूहल यह था कि ड्रामा पढ़कर मामू साहब क्या कहते हैं। स्कूल में जी न लगता था। दिल उधर ही टँगा हुआ था। छुट्टी होते ही घर चला गया। मगर द्वार के समीप आकर पाँव रुक गये। भय हुआ, कहीं मामू साहब मुझे मार न बैठें; लेकिन इतना जानता था कि वह एकाध थप्पड़ से ज्यादा मुझे मार न सकेंगे, क्योंकि मैं मार खाने वाले लड़कों में न था।

मगर यह मामला क्या है! मामू साहब चारपाई पर नहीं हैं, जहाँ वह नित्य लेटे हुए मिलते थे। क्या घर चले गये? आकर कमरा देखा वहाँ भी सन्नाटा। मामू साहब के जूते, कपड़े, गठरी सब लापता। अन्दर जाकर पूछा। मालूम हुआ, मामू साहब किसी जरूरी काम से घर चले गये। भोजन तक नहीं किया।

मैंने बाहर आकर सारा कमरा छान मारा मगर मेरा ड्रामा — मेरी वह पहली रचना-कहीं न मिली। मालूम नहीं, मामू साहब ने उसे चिरागअली के सुपुर्द कर दिया या अपने साथ स्वर्ग ले गये?

रक्षा में हत्या

केशव के घर में एक कार्निस के ऊपर एक पंडुक ने अंडे दिए थे। केशव और उसकी बहन श्यामा दोनों बड़े गौर से पंडुक को वहाँ आते-जाते देखा करते। प्रातःकाल दोनों आँखें मलते कार्निस के सामने पहुँच जाते और पंडुक या पंडुकी या दोनों को वहाँ बैठा पाते। उनको देखने में दोनों बालकों को न जाने क्या मजा मिलता था। दूध और जलेबी की सुध भी न रहती थी। दोनों के मन में भाँति-भाँति के प्रश्न उठते - अंडे कितने बड़े होंगे, किस रंग के होंगे, कितने होंगे, क्या खाते होंगे, उनमें से बच्चे कैसे निकल आवेंगे, बच्चों के पंख कैसे निकलेंगे, घोंसला कैसा है, पर इन प्रश्नों का उत्तर देनेवाला कोई न था। अम्मा को घर के काम-धंधों से फुरसत न थी - बाबूजी को पढ़ने-लिखने से। दोनों आपस ही में प्रश्नोत्तर करके अपने मन को संतुष्ट कर लिया करते थे।

श्यामा कहती - क्यों भैया, बच्चे निकल कर फुर्र से उड़ जाएँगे? केशव पंडिताई भरे अभिमान से कहता — नहीं री पगली, पहले पंख निकलेंगे। बिना परों के बिचारे कैसे उड़ेंगे।

श्यामा — बच्चों को क्या खिलाएगी बिचारी?

केशव इस जटिल प्रश्न का उत्तर कुछ न दे सकता।

इस भाँति तीन-चार दिन बीत गए। दोनों बालकों की जिज्ञासा दिन-दिन प्रबल होती जाती थी। अंडों को देखने के लिए वे अधीर हो उठते थे। उन्होंने अनुमान किया, अब अवश्य बच्चे निकल आए होंगे। बच्चों के चारे की समस्या अब उनके सामने आ खड़ी हुई। पंडुकी बिचारी इतना दान कहाँ पावेगी कि सारे बच्चों का पेट भरे। गरीब बच्चे भूख के मारे चूँ-चूँ कर मर जाएँगे।

इस विपत्ति की कल्पना करके दोनों व्याकुल हो गए। दोनों ने निश्चय किया कि कार्निस पर थोड़ा-सा दाना रख दिया जाए। श्यामा प्रसन्न होकर बोली — तब तो चिड़ियों को चारे के लिए कहीं उड़ कर न जाना पड़ेगा न?

केशव — नहीं, तब क्यों जाएगी।

श्यामा — क्यों भैया, बच्चों को धूप न लगती होगी?

केशव का ध्यान इस कष्ट की ओर न गया था — अवश्य कष्ट हो रहा होगा। बिचारे प्यास के मारे तड़पते होंगे, ऊपर कोई साया भी तो नहीं।

आखिर यही निश्चय हुआ कि घोंसले के ऊपर कपड़े की छत बना देना चाहिए। पानी की प्याली और थोड़ा-सा चावल रख देने का प्रस्ताव भी पास हुआ।

दोनों बालक बड़े उत्साह से काम करने लगे। श्यामा माता की आँख बचा कर मटके से चावल निकाल लाई। केशव ने पत्थर की प्याली का तेल चुपके से जमीन पर गिरा दिया और उसे खूब साफ करके उसमें पानी भरा।

अब चाँदनी के लिए कपड़ा कहाँ से आए? फिर, ऊपर बिना तीलियों के कपड़ा ठहरेगा कैसे और तीलियाँ खड़ी कैसे होंगी?

केशव बड़ी देर तक इसी उधेड़बुन में रहा। अंत को उसने यह समस्या भी हल कर ली। श्यामा से बोला — जा कर कूड़ा फेंकनेवाली टोकरी उठा ला। अम्माजी को मत दिखाना।

श्यामा — वह तो बीच से फटी हुई है, उसमें से धूप न जाएगी?

केशव ने झुँझला कर कहा — तू टोकरी तो ला, मैं उसका सूराख बंद करने की कोई हिकमत निकालूँगा न।

श्यामा दौड़ कर टोकरी उठा लाई। केशव ने उसके सूराख में थोड़ा-सा कागज ठूँस दिया और तब टोकरी को एक टहनी से टिकाकर बोला - देख, ऐसे ही घोंसले पर इसकी आड़ कर दूँगा।

तब कैसे धूप जाएगी? श्यामा ने मन में सोचा — भैया कितने चतुर हैं!

गर्मी के दिन थे। बाबूजी दफ्तर गए हुए थे। माता दोनों बालकों को कमरे में सुला कर खुद सो गई थी, पर बालकों की आँखों में आज नींद कहाँ? अम्माजी को बहलाने के लिए दोनों दम साधे, आँखें बंद किए, मौके का इंतजार कर रहे थे। ज्यों ही मालूम हुआ कि अम्माजी अच्छी तरह सो गईं, दोनों चुपके से उठे और बहुत धीरे से द्वार की सिटकनी खोल कर बाहर निकल आए। अंडों की रक्षा करने की तैयारियाँ होने लगीं।

केशव कमरे से एक स्टूल उठा लाया, पर जब उससे काम न चला, तो नहाने की चौकी ला कर स्टूल के नीचे रखी और डरते-डरते स्टूल पर चढ़ा। श्यामा दोनों हाथों से स्टूल को पकड़े हुई थी। स्टूल चारों पाए बराबर न होने के कारण, जिस ओर ज्यादा दबाव पाता था, जरा-सा हिल जाता था। उस समय केशव को कितना संयम करना पड़ता था, यह उसी का दिल जानता थ। दोनों हाथों से कार्निस पकड़ लेता और श्यामा को दबी आवाज से डाँटता — अच्छी तरह पकड़, नहीं उतर कर बहुत मारूँगा। मगर बिचारी श्यामा का मन तो ऊपर कार्निस पर था, बार-बार उसका ध्यान इधर चला जाता और हाथ ढीले पड़ जाते। केशव ने ज्यों ही कार्निस पर हाथ रखा, दोनों पंडुक उड़ गए। केशव ने

देखा कि कार्निस पर थोड़े-से तिनके बिछे हुए हैं और उस पर तीन अंडे पड़े हैं। जैसे घोंसले पर देखे थे, ऐसा कोई घोंसला नहीं है।

श्यामा ने नीचे से पूछा — कै बच्चे हैं भैया?

केशव — तीन अंडे हैं। अभी बच्चे नहीं निकले।

श्यामा — जरा हमें दिखा दो भैया, कितने बड़े हैं?

केशव — दिखा दूँगा, पहले जरा चीथड़े ले आ, नीचे बिछा दूँ। बिचारे अंडे तिनकों पर पड़े हुए हैं।

श्यामा दौड़ कर अपनी पुरानी धोती फाड़ कर एक टुकड़ा लाई और केशव ने झुक कर कपड़ा ले लिया। उसके कई तह करके उसने एक गद्दी बनाई और उसे तिनकों पर बिछा कर तीनों अंडे धीरे से उस पर रख दिए।

श्यामा ने फिर कहा — हमको भी दिखा दो भैया?

केशव — दिखा दूँगा, पहले जरा वह टोकरी तो दे दो, ऊपर साया कर दूँ।

श्यामा ने टोकरी नीचे से थमा दी और बोली — अब तुम उतर आओ, तो मैं भी देखूँ। केशव ने टोकरी को एक टहनी से

टिकाकर कहा - जा दाना और पानी की प्याली ले आ। मैं उतर जाऊँ, तो तुझे दिखा दूँगा।

श्यामा प्याली और चावल भी लाई। केशव ने टोकरी के नीचे दोनों चीजें रख दीं और धीरे से उतर आया।

श्यामा ने गिड़गिड़ाकर कहा — अब हमको भी चढ़ा दो भैया।

केशव — तू गिर पड़ेगी।

श्यामा — न गिरूँगी भैया, तुम नीचे से पकड़े रहना।

केशव — ना भैया, कहीं तू गिर-गिरा पड़े, तो अम्माजी मेरी चटनी ही बना डालें कि तूने ही चढ़ाया था। क्या करेगी देख कर? अब अंडे बड़े आराम से हैं। जब बच्चे निकलेंगे, तो उनको पालेंगे।

दोनों पक्षी बार-बार कार्निस पर आते थे और बिना बैठे ही उड़ जाते थे। केशव ने सोचा, हम लोगों के भय से यह नहीं बैठते। स्टूल उठा कर कमरे में रख आया। चौकी जहाँ-की-तहाँ रख दी।

श्यामा ने आँखों में आँसू भर कर कहा — तुमने मुझे नहीं दिखाया, मैं अम्माजी से कह दूँगी।

केशव — अम्माजी से कहेगी, तो बहुत मारूँगा, कहे देता हूँ।

श्यामा — तो तुमने मुझे दिखाया क्यों नहीं?

केशव — और गिर पड़ती तो चार सिर न हो जाते?

श्यामा — हो जाते, हो जाते। देख लेना, मैं कह दूँगी।

इतने में कोठरी का द्वार खुला और माता ने धूप से आँखों को बचाते हुए कहा — तुम दोनों बाहर कब निकल आए? मैंने मना किया था कि दोपहर को न निकलना, किसने किवाड़ खोला?

किवाड़ केशव ने खोला था, पर श्यामा ने माता से यह बात नहीं की। उसे भय हुआ भैया पिट जाएँगे। केशव दिल में काँप रहा था कि कहीं श्यामा कह न दे। अंडे न दिखाए थे, इससे अब इसको श्यामा पर विश्वास न था। श्यामा केवल प्रेमवश चुप थी या इस अपराध में सहयोग के कारण, इसका निर्णय नहीं किया जा सकता। शायद दोनों ही बातें थीं।

माता ने दोनों बालकों को डाँट-डपट कर फिर कमरे में बंद कर दिया और आप धीरे-धीरे उन्हें पंखा झलने लगी। अभी केवल दो बजे थे। तेज लू चल रही थी। अबकी दोनों बालकों को नींद आ गई।

चार बजे एकाएक श्यामा की नींद खुली। किवाड़ खुले हुए थे। वह दौड़ी हुई कार्निस के पास आई और ऊपर की ओर ताकने लगी। पंडुकों का पता न था। सहसा उसकी निगाह नीचे गई

और वह उलटे पाँव बेतहाशा दौड़ती हुई कमरे में जा कर जोर से बोली — भैया, अंडे तो नीचे पड़े हैं। बच्चे उड़ गए?

केशव घबरा कर उठा और दौड़ा हुआ बाहर आया, तो क्या देखता है कि तीनों अंडे नीचे टूटे पड़े हैं और उनमें से कोई चूने की-सी चीज बाहर निकल आई है। पानी की प्याली भी एक तरफ टूटी पड़ी है।

उसके चेहरे का रंग उड़ गया। डरे हुए नेत्रों से भूमि की ओर ताकने लगा। श्यामा ने पूछा — बच्चे कहाँ उड़ गए भैया?

केशव ने रुँधे स्वर में कहा — अंडे तो फूट गए!

श्यामा — और बच्चे कहाँ गए?

केशव — तेरे सिर में। देखती नहीं है, अंडों में से उजला-उजला पानी निकल आया है! वही तो दो-चार दिन में बच्चे बन जाते।

माता ने सुई हाथ में लिए हुए पूछा — तुम दोनों वहाँ धूप में क्या कर रहे हो?

श्यामा ने कहा — अम्माजी, चिड़िया के अंडे टूटे पड़े हैं।

माता ने आ कर टूटे हुए अंडों को देखा और गुस्से से बोली — तुम लोगों ने अंडों को छुआ होगा।

अबकी श्यामा को भैया पर जरा भी दया न आई — उसी ने शायद अंडों को इस तरह रख दिया कि वे नीचे गिर पड़े, इसका उसे दंड मिलना चाहिए। बोली — इन्हीं ने अंडों को छेड़ा था अम्माजी।

माता ने केशव से पूछा — क्यों रे?

केशव भीगी बिल्ली बना खड़ा रहा।

माता — तो वहाँ पहुँचा कैसे?

श्यामा — चौकी पर स्टूल रख कर चढ़े थे अम्माजी।

माता — इसीलिए तुम दोनों दोपहर को निकले थे।

श्यामा — यही ऊपर चढ़े थे अम्माजी।

केशव — तू स्टूल थामे नहीं खड़ी थी।

श्यामा — तुम्हीं ने तो कहा था।

माता — तू इतना बड़ा हुआ, तुझे अभी इतना भी नहीं मालूम कि छूने से चिड़ियों के अंडे गन्दे हो जाते हैं — चिड़ियाँ फिर उन्हें नहीं सेतीं।

श्यामा ने डरते-डरते पूछा — तो क्या इसीलिए चिड़िया ने अंडे गिरा दिए हैं अम्माजी?

माता — और क्या करती। केशव के सिर इसका पाप पड़ेगा। हाँ-हाँ तीन जानें ले लीं दुष्ट ने!

केशव रुआँसा होकर बोला — मैंने तो केवल अंडों को गद्दी पर रख दिया था अम्माजी!

माता को हँसी आ गई।

मगर केशव को कई दिनों तक अपनी भूल पर पश्चात्ताप होता रहा। अंडों की रक्षा करने के भ्रम में, उसने उनका सर्वनाश कर डाला था। इसे याद करके वह कभी-कभी रो पड़ता था।

दोनों चिड़ियाँ वहाँ फिर न दिखाई दीं!

कुत्ते की कहानी

बच्चों से,

प्यारे बच्चो! तुम जिस संसार में रहते हो, वहाँ कुत्ते-बिल्ली ही नहीं, पेड़-पत्ते और ईंट-पत्थर तक बोलते हैं, बिलकुल उसी तरह, जैसे तुम बोलते हो और तुम उन सबकी बातें सुनते हो और बड़े ध्यान से कान लगाकर सुनते हो। उन बातों में तुम्हें कितना आनंद आता है। तुम्हारा संसार सजीवों का संसार है। उसमें सभी एक-जैस जीव बसते हैं। उन सबों में प्रेम है, भाईचारा है, दोस्ती है। जो सरलता साधु-संतों को बरसों के चिंतन और साधना से नहीं प्राप्त होती, वह तुम परम पिता के घर से लेकर आते हो। यह छोटी पुस्तक मैं उसी आत्म-सरलता को भेंट करता हूँ। तुम देखोगे कि यह कुत्ता बाहर से कुत्ता होकर भी भीतर से तुम्हारे जैसा बालक है, जिसमें वही प्रेम और सेवा तथा साहस और सचाई है, जो तुम्हें इतनी प्रिय हैं।

– प्रेमचंद।

1

बालकों! तुमने राजाओं और वीरों की कहानियाँ बहुत सुनी होंगी, लेकिन किसी कुत्ते की जीवन-कथा शायद ही सुनी हो। कुत्तों के जीवन में ऐसी बात ही कौन-सी होती है जो सुनायी जा सके। न वह देवों से लड़ता है, न परियों के देश में जाता है, न बड़ी-बड़ी लड़ाइयाँ जीतता है; इसलिए मुझे भय है कि कहीं तुम मेरी कहानी को उठाकर फेंक न दो। किन्तु मैं तुम्हें विश्वास दिलाता हूँ कि मेरे जीवन में ऐसी कितनी ही बातें हुई है, जो बड़े-बड़े आदमियों के जीवन में भी न हुई होंगी। इसीलिए मैं आज अपनी कथा सुनाने बैठा हूँ। जिस तरह तुम कुत्तों को दुत्कार दिया करते हो, उसी भाँति मेरी इस कथा को ठुकरा न देना। इसमे तुम्हें कितनी ही काम की बातें मिलेंगी और अच्छी, बातें जहाँ मिले, तुरन्त ले लेना चाहिए।

जब मेरा जन्म हुआ, तो मेरी आँखें और कान बन्द थे। इसलिए नहीं कह सकता कि बाजे-गाजे बजे, गाना-बजाना हुआ या नहीं। मुझे तो कुछ सुनाई न दिया। हाँ, जिस बिछावन पर मैं लेटा था, वह रुई की भाँति नर्म था। सर्दी जरा भी न लगती थी। मैं दिल में समझ रहा था, किसी बड़े घर में मेरा जन्म हुआ है, लेकिन जब

आँखें खुलीं, तो मैंने देखा कि एक भाड़ की गर्म राख में अपनी माता की छाती से चिपटा हुआ पड़ा हूँ। हम चार भाई थे। तीन लाल थे। मैं काला था। उस पर सबसे छोटा और सबसे कमजोर।

माता भी हम लोगों के पास बहुत कम रहती थी। उन्हें खाने की टोह में इधर-उधर दौड़ना पड़ता था। वह रात-रात भर जागकर गाँव की रक्षा करती थीं। क्या मजाल कि कोई अनजान आदमी गाँव में कदम रख सके। दूसरे गाँव के कुत्तों को तो वह दूर से ही देखकर भगा देती थी। जब किसी खेत में कोई साँड़ घुसता, तो उसे दूर तक भगा आती; मगर इतना सब कुछ करने पर भी कोई उन्हें खाने को न देता था। बेचारी पेट की आग से जला करती थीं। उस पर हम लोगों की चिन्ता उन्हें और मारे डालती थी। इसलिए जब भूख सताती, तो कभी-कभी वह चोरी से घरों में घुस जातीं और खाने की जो चीज मिल जाती, लेकर निकल भागतीं। उन्हें देखते ही लोग मारने दौड़ते और घरों से द्वार बन्द कर लेते।

एक दिन बड़ी ठंड पड़ी। बादल छा गए और हवा चलने लगी। हमारे दो भाई ठंड न सह सके और मर गए। हम दो भाई रह गए। हमारी माँ बहुत रोयी, मगर क्या करती? गाँव वालों को फिर

भी उन पर दया न आयी। आदमी इतने मतलबी और बेदर्द होते हैं, यह मैंने पहली बार देखा।

एक दिन गाँव में उत्सव था। एक बनिये के यहाँ ब्राह्मण-भोज था। सैकड़ों आदमी जमा थे। पूरियाँ बन रही थीं। माताजी बार-बार उधर जाती, पर दुत्कार पाकर भाग आती थी। किसी को इतनी दया न आती थी कि एक टुकड़ा उनकी ओर फेंक दे। एक टुकड़ा दे देने से कुछ कमी न पड़ जाती, पर यह कौन समझाये? जब सब चीजें तैयार हो गयी तो आँगन में पत्तल डाल दिये गये। लोग अपने-अपने आसन पर जा बैठे और भोजन परसा जाने लगा। उसी समय माताजी यहाँ पहुँची। हम दोनों भाई भी उनके साथ थे। द्वार पर ही एक आदमी ने दुत्कारा मगर माताजी भागी नहीं, पूछ हिलाने लगी और वहीं बैठ गयी। वह आदमी जब किसी काम से भीतर चला गया तो माताजी भी दबे पाँव दालान में जा पहुँची। उन्हें देखकर चारों तरफ से धत्! धत् का ऐसा कोलाहल मचा कि माताजी घबरा गयीं। दो-तीन आदमी डंडे लेकर दौड़े। माताजी को अगर दालान से निकल जाने का रास्ता मिलता, तो वह इधर से बाहर निकल जाती, लेकिन उधर लोग डंडे लिये खड़े थे, इसलिए माताजी बैठे हुए आदमियों के बीच से होकर मोरी के रास्ते बाहर निकल आयी!

मगर तमाशा तो देखिए कि माताजी के बाहर निकलते ही भोजन करने वाले भी उठ खड़े हुए! जानते हो क्यों? माताजी के उधर से निकल जाने के कारण भोजन भ्रष्ट हो गया! विचार होने लगा कि क्या किया जाये। बेचारा बनिया फूट-फूटकर रोने लगा। कुछ लोग कहते थे, इसमें दोष ही क्या है, कुतियाँ ने पत्तलों में मुँह तो डाला नहीं, छूने से क्या होता है; किन्तु जो बहुत कुलीन थे, वे कुतिया बीच से निकल जाना ही भोजन को भ्रष्ट करने के लिए काफी समझते थे। आखिर इन्हीं कुलीनों की जीत हुई और सारा भोजन अछूतों में बाँट दिया गया। उस दिन माताजी ने खूब भर पेट-भर खाया। ऐसा सुख उन्हें जीवन में कभी न मिला था।

लेकिन उस बेचारी के भाग्य में सुख लिखा ही न था। भोजन करके जरा लेटी ही थी कि बनिया डंडा लिये आ पहुँचा और लगा पीटने। माताजी को भागने का अवसर न मिला। जोर-जोर से चिल्लाने लगी। उनका विलाप सुनकर पत्थर भी पसीज जाता, पर उस निर्दयी को जरा भी दया न आयी। मैं मन में कुढ़ रहा था। अपना कुछ वश होता, तो बनियेराम को इस बेदर्दी का मजा चखा देता लेकिन जरा-सा बच्चा क्या करता! वारे, यह विलाप सुनकर कुछ लोग जमा हो गये और समझाने लगे — जाने दो भाई, भूख में आदमियों की बुद्धि तो भ्रष्ट हो ही जाती है, यह तो पशु है, इसे क्या मालूम, किसका फायदा हो रहा है, किसका

नुकसान। अब तो जो हो गया, सो हो गया। इसे मारकर क्या पाओगे? बनिये के चित्त में यह बात बैठ गयी और माताजी की जान छूटी।

उसी दिन शाम को एक बटोही गाँव में आकर ठहरा। उसने एक पेड़ के नीचे उपले जलाये और हाँड़ी में दाल चढ़ाकर आटा गूँधने लगा। आटा गूँध चुकने पर उसे हाँड़ी उतार दीं और सामने के कुएँ पर पानी लाने चला गया। गूँधा हुआ आटा पत्तल पर रखा हुआ था। इतने में माताजी घूमती हुई वहाँ पहुँच गयी और शायद यह समझकर की मुसाफिर ने इतना जूठन छोड़ दिया है, उन्होंने आटा उठा लिया और चम्पत हो गयी। मुसाफिर ने कुएँ पर से ही धत्-धत् करना शुरू किया, लेकिन माताजी ने पीछे फिरकर भी न देखा। बेचारा माथे पर हाथ धरकर रोने लगा। आज तीन दिनों का भूखा, थका-माँदा उस पर भगवान की यह लीला! दो-तीन आदमियों ने समझाया — भाई, तुम्हारा तो चार-छः आने का नुकसान हुआ, कल तो इसने हजारों पर पानी फेर दिया।

मुसाफिर ने कहा — मैं क्या जानता था कि यह चांडालिन घात में में बैठी हुई है! बूढ़े चौधरी बोले — जान पड़ता है, आज का तुम्हारा भोजन उसी के भाग्य मे था। मसल है, 'शाह की मुहर

आने-आने पर, खुदा की मुहर दाने-दाने पर।' फिर से बना-खा लो।

बेचारे मुसाफिर ने फिर से चौका लगाया और भोजन बनाने लगा। चौधरी वहीं बैठे रहे। मुसाफिर ने पूछा — बाबा, मैं आपकी कहावत का मतलब नहीं समझा! जरा समझा दीजिए।

चौधरी बोले — एक फकीर यही कहकर सबके दरवाजे पर भीख माँगता फिरता था — 'शाह की मुहर आने-आने पर, खुदा की मुहर दाने-दाने पर।'

एक मनचले रईस ने उस फकीर से कहा — साईं, यह बात तो समझ में नहीं आती, भला दानों पर कैसी मुहर?

साईं ने कहा — नहीं बेटा, खुदा जिसको जो दाना देना चाहेगा, वही पा सकता है। दूसरा हरगिज नहीं पा सकता। इसकी जब चाहो तब परीक्षा कर सकते हो।

रईस ने कहा — लीजिए, मैं अभी इसकी परीक्षा लेता हूँ। अगर यह बात सच निकली, तो मैं आपका गुलाम हो जाऊँगा।

रईस ने एक ज्वार का दाना हाथ में लिया और कहा — देखिए, मैं इसे अपने मुँह में डालता हूँ। अगर खुदा की इस पर मुहर है, तो किसी और को दे दो।

यह कहकर उसने दाने को अपने मुँह में फेंका, पर दाना मुँह में न जाकर जमीन पर गिर पड़ा और एक चिड़िया उठाकर ले गयी।

रईस भौंचक्का-सा रह गया। बस, आप भी याद रखिए कि न तो कोई किसी को खिलाता है, औ न किसी का खाता है। सबको खिलाने वाला ईश्वर है।

2

जब हम दो भाई बड़े हुए, तो लड़कों ने हमारे साथ खेलना शुरू किया। मैं बहुत खूबसूरत था। मुझे एक पंडित का लड़का पकड़कर ले गया। जबकि मेरे भाई को एक डफाली का लड़का पकड़कर ले गया। मैं पंडित जी के घर पलने लगा और मेरा भाई डफाली के घर। उसे लोग जकिया कहने लगे, तो काले रंग के कारण मेरा नाम पड़ा कल्लू।

जाड़े का मौसम था। सब लड़के धूप में जमा हो जाते, तो हमें गोद में ले लेते और चूमते। कोई कहता हमारा बच्चा है तो कोई कहता हमारा मुन्ना है। कोई लड़का एक कान पकड़कर उठाता और कहता — देखो भाई, चोर है या साह? जब कक कान

दर्द न करते मैं न बोलता। बस, सब कहने लगते, फेंको-फेंको यह चोर है। मगर जब कान दुखने से चिल्ला उठा, तो सब साह-साह कहकर हँस पड़ते। प्रायः यह खेल दिन में सैंकड़ों बार होता। कोई हमारे अगले पैरों को उठाकर कहता — मेरा मुन्ना दो पैर से चलता है। यो चलाये जाने से हमारे पैर दर्द करने लगते थे, पर करते क्या। कभी-कभी बड़े लड़के छोटे बच्चों को मेरी पीठ पर बैठाकर कहते — मेरा लल्लू हाथी पर बैठा है। भला मैं उन लड़कों का बोझ कैसे उठाता। जब चिल्लाने लगता, तो जान बचती। कोई-कोई लड़के तो मेरे गले में रस्सी बाँधकर दौड़ाते। भला मैं उनके बराबर कैसे दौड़ता, लेकिन वे अपनी धुन मे मुझे घसीटते हुए ले ही जाते थे, इससे सारा बदन दुखने लगता था, मगर मुझ गरीब का वहाँ कौन मददगार बैठा था? कभी-कभी लड़के मुझे पास वाले एक तालाब में डाल देते और मेरी तैराकी का तमाशा देखते। जब मैं बाहर निकलने के लिए छटपटाने लगता, तो लड़के हँस-हँसकर कहते — देखो, कल्लू कैसे तैरता है! उस समय मैं डूबने-डूबने हो जाता था। पाँव जोर-जोर से चलाता हुआ किसी तरह किनारे आ जाता और मारे ठंड के काँपने लगता। जब धूप लगने से देह में कुछ गर्मी आती तो कोई शैतान लड़का बोल उठता — अबकी मेरी बारी है। यह सुनते ही मेरी जान-सी निकल जाती, मगर भागकर जाता कहाँ। कोई फिर

पानी में डाल देता। क्या बतलाऊँ कि उस समय कितना गुस्सा आता। बार-बार यह जी में आता था कि कोई इन दुष्टों को भी इसी तरह डुबकियाँ देता, तो इनकी आँखें खुलतीं।

हम दो भाइयों में सुखी तो कोई नहीं था परन्तु जकिया की दशा मेरे से अच्छी थीं। पंडित जी के यहाँ मुझे रूखा-सूखा भोजन मिलता था और वह भी बहुत कम। इसलिए मुझे दूसरों के द्वार पर भी चक्कर लगाना पड़ता था।

डफाली मांस का प्रेमी था। रोजाना उसके घर मांस पका करता था, इसलिए जकिया को काफी भोजन मिल जाता था। उसे किसी दूसरे दरवाजे पर जाने की जरूरत नहीं पड़ती थी। कुछ तो बेफिक्री और कुछ पूरी खुराक मिलने के कारण वह ताकतवर और तन्दुरुस्त बनने लगा। मैं कई बार भूख से तंग आकर डफाली के दरवाजे पर पहुँच जाता कि शायद वहाँ कुछ मिल जाये। सोचता, आखिर जकिया भी अपना ही खून है, उससे आरजू-मिन्नत करूँगा, तो जरूर कुछ-न-कुछ दे देगा। फिर उसका कोई नुकसान भी तो नहीं है। मैं उसके खाने में हिस्सा लेना नहीं चाहता था, केवल उसका जूठन चाहता था। पर वह मेरी परछाई देखते ही गुर्राकर मुझ पर ऐसे झपटता जैसे मैं उसका दुश्मन हूँ। वह था मुझसे ताकतवर, इसलिए मैं उसका सामना न कर सकता था। वह दाँतों से मुझे खूब काटता और नीचे गिराकर

पंजों से खसोटता। जब मैं जोर से चिल्लाने लगता और पूँछ सिकोड़ लेता, तब कहीं जान बचती थी। उठकर ज्योंही भागना चाहता कि डफाली कह उठता — पंडित का भग्गू कुत्ता, वह भागा! वह भागा! इस पर मुझे बहुत ग्लानि होती थी। मैं फिरजाकर जकिया से उलझ पड़ता और इतनी मुस्तैदी से लड़ता कि भूख का ख्याल ही न रहता। मेरी मुस्तैदी देखकर देखनेवाले कहते — वाह कल्लू! वाह! शाबाश! इससे तबीयत और फड़क जाती थी। और भी जोर लगाता। लेकिन आखिर मुझे भागना ही पड़ी थी। तब सब तालियाँ बजाकर मुझ पर हँसने लगते। जोश ठंडा हने पर देखता तो लहू-लुहान हो गया हूँ। महीनों में जाकर कहीं घाव अच्छे होते थे। घाव अच्छा होने पर यही जी चाहता कि चलकर जकिया को पछाड़ूँ और पंडितजी की बदनामी मिटाऊँ, मगर अपनी हालत देखकर रह जाता।

एक दिन मैं जान पर खेलकर जकिया से उलझ पड़ा। वह भी पूरे जोश से लडऩे लगा। संयोग से पंडित जी वहाँ पहुँच गए। उनके पहुँचते ही लोग कहने लगे — कल्लू भग्गू कुत्ता है, कभी जकिया का सामना नहीं कर सकता। इस पर मैंने देखा कि पंडित जी का चेहरा फीका पड़ गया। तब तो मैंने निश्चय कर लिया कि आज चाहे जान रहे या जाय, मगर जकिया को जरूर पछाड़ूँगा। कुछ ऐसे जीवट से लड़ा और ऐसे दाँव-पेंच खेला कि

बचा जकिया को छठी का दूध याद आ गया। देखने वाले कहने लगे कि भाई आज तो कल्लू ने कमाल कर दिया। ठीक है, मालिक को देखकर सबकी छाती बढ़ती है। जकिया डफाली को देख-देकर ही इसे रोज पछाड़ता था। आज पंडितजी को देखकर कल्लू ने नीचा दिखाया। मैंने देखा, पंडितजी का चेहरा उस समय खिल उठा था, मानो मैंने उनकी लज्जा रख ली। अब उन्होंने मेरी खुराक कुछ बढ़ा दी। उधर जकिया पर डफाली और भी तवज्जुह करने लगा।

एक दिन की बात है कि माताजी डफाली के दरवाजे पर पहुँच गयी। उस समय जकिया यहाँ मौजूद न था। डफाली ने माताजी की दीन दशा देखकर एक टुकड़ा फेंक दिया। ज्योंही माताजी टुकड़ा उठाने को आगे बढ़ी कि जकिया पहुँच गया और माताजी पर टूट ही तो पड़ा। संयोग से वहीं पर मैं भी पहुँच गया। फिर क्या था? जकिया से जान बचाकर माताजी मुझसे भिड़ गयी।

मैं तो उन पर वार नहीं करना चाहता था, लेकिन वे पूरी ताकत से मुझ पर वार करने लगी। उस समय मुझे बड़ी हँसी आती थी पेट भी क्या चीज है! इसके लिए लोग अपने-पराये को भूल जाते हैं। नहीं तो अपनी सगी माता और अपना सगा भाई क्यों दुश्मन हो जाते। यह तो हम जानवरों की बातें है। मनुष्यों की ईश्वर जाने।

3

मेरे पंडितजी के घर अनाज बहुत होता था। घर कच्चा था, लेकिन चूहों ने अपना अड्डा जमा लिया था। उनके उपद्रव से घरवालों का नाकों दम था। वे लोग चाहते थे कि चूहेदानी लगाकर इनका सर्वनाश कर दिया जाये। मगर पंडितजी यह कहकर टाल देते थे कि चूहे गणेशजी के वाहन है। इन्हें तकलीफ न देनी चाहिए, इनके खाने से कितना अनाज कम हो जायगा? उनका विश्वास था कि चूहे जितना गल्ला नुकसान करते है, उसका चौगुना श्रीगणेशजी की दया से उपज में बढ़ जाता है, इसलिए जब वह किसी को चूहेदानी लगाते देखते, तो उससे पचासों बातें कहते।

पंडितजी की धाक लोगों में खूब बैठ गयी। जब कहीं देवताओं की भक्ति की चर्चा होती, तो पंडितजी का नाम पहले लिया जाता था। कैसे सज्जन हैं कि इतना नुकसान सहने पर भी चूहों को नहीं मारते! नहीं तो लोग आदमी की जान तक ले लेते है।

जब तक चूहे अनाज की लूट मचाते रहे, तब तक पंडितजी अपनी प्रतिज्ञा पर डटे रहे, लेकिन जब उनके वार कपड़े-लत्ते पर भी होने

लगे, तो उनके आसन डोल गये। जाड़ों के कपड़े कुछ सन्दूकों में रखे हुए थे, कुछ अलगानियों पर। गर्मियों में किसी ने उनकी परवाह न की। बरसात में जब उन्हें धूप में डालने के लिए निकाला गया, तो सारे कपड़े कटे पड़े थे। चूहों ने लकड़ी की सन्दूक तक काट डाली थी। पंडितजी की आँखों में खून उतर आया। चूहों ने एक-एक चीज में हजारों छेद कर दिये थे। दो-ढाई सौ रुपये पर पानी फिर गया था। फिर तो पंडितजी ने ठान लिया कि जैसे भी होगा, इन चूहों का सर्वनाश करके ही छोड़ूँगा। उसी दिन एक बिल्ली पाली और तीन-चार चूहेदानियाँ मँगवायी। फिर क्या था? रोजाना चूहे फँसने लगे। मुझे भी विनोद का मसाला मिल गया। यों तो मैं सच्चा हिन्दू और पूरा ब्राह्मण हो गया था, क्योंकि विशेषकर ब्राह्मण ही का अन्न-जल खाना-पीना पड़ता था। मांस पर रुचि ही न होती थी, लेकिन शिकार खेलने में बड़ा मजा आता था। मजा क्यों न आता, यह तो मेरी खानदानी बात थी।

जब पंडितजी चूहेदानी खोलते, उस समय कल्लू-कल्लू पुकारते । मैं कहीं पर भी होता, तीर की तरह वहाँ पहुँच जाता था। उस समय मैं जो खिलवाड़ करता था, वह देखने लायक होता था। चूहों को खिला-खिलाकर जान से मार डालता था, पर खाना न था।

मगर भाई जकिया पक्का मुसलमान था, रोज मांस खाता था। वह भी उस शिकार में शामिल हो जाता था और कभी-कभी माताजी भी पहुँच जाती थी। उन दिनों उनका खूब पेट भरने लगा। फिर तो वे मन-ही-मन हम लोगों को आशीर्वाद देने लगी। शायद उन्हें पिछले बच्चों की याद भी आने लगी हो। यदि वे भी जीते होते तो उनकी खूब सेवा करते। भाई साहब के जी में आता, तो दो-एक चूहों को पेट में रख लेते, मगर मैं तो बाबा कालभैरवजी की शपथ खाकर कहता हूँ कि सूँधता भी न था।

उस समय चूहों की जान लेने मे हम लोगों को जरा भी दया न आती थी। यह ख्याल भी न होता था कि इनमें भी जान है। अब मैं सोचता हूँ तो मालूम होता कि बच्चे जो हम लोगों को अपने विनोद के लिए कष्ट देते थे, वह कोई निर्दयता का काम नहीं करते थे। विनोद में इन सब बातों पर ध्यान ही नहीं दिया जाता। पंडितजी बहुत खुश होते, जब हम लोग चन्द मिनटों में पचासों चूहों को सदा के लिए बेहोश कर देते। उस समय पंडितजी पर मुझे बहुत हँसी आती थी। अब इनके गणेशजी क्या हुए! क्या अब ये चूहे गणेशजी के वाहन नहीं है? क्या अब इस हत्या से नाराज होकर गणेश भगवान पंडितजी को दंड न देंगे? वाह, क्या समझ है! इससे तो यही मालूम होता है कि जिस बात से लोगों को नुकसान तो कम होता और प्रतिष्ठा बहुत बढ़ती है,

उसे लोग हँसते बर्दाश्त करते हैं, लेकिन जब अधिक हानि पहुँचती है, तो सब प्रतिज्ञा टूट जाती है।

4

जिस तालाब में बच्चे मुझे फेंककर खेलते थे, उसका गाँव में बड़ा महत्व था। उसी तालाब में गाँव के छोटे-बड़े सभी नहाते-धोते थे। तालाब था भी बहुत गहरा। इसीलिए बारहों महीना पानी भरा रहता था। कच्चा होने पर भी उसका पानी स्वच्छ था। पंडितजी की स्त्री अपने छोटे बच्चे को रोजाना सावधान करती थी कि खबरदार! उस तालाब की ओर कभी न जाना, नहीं तो डूब जाओगे। प्रायः सभी माँ-बाप अपने बच्चों को ऐसी चेतावनी देते रहते, मगर लड़के कब मानने लगे? माँ-बाप की नजरें बचाकर तालाब पर पहुँच ही जाते और तरह-तरह के खेल खेलते। कोई पानी में कत्तल फेंकता, कोई मेंढकों पर निशाना लगाता, कुछ सयाने लड़के पानी में कूद जाते और तैरने का अभ्यास करते।

होनहार को कौन रोक सकता है? एक बार गाँव के कुछ लड़के तालाब में तैर रहे थे। पंडित जी का छोटा लड़का भी वहाँ पहुँच गया। पहले ते वह किनारे पर ही खेलता रहा, मगर उसके जी में

आया कि जरा मैं भी तैरूँ। आगे बढ़ा ही था कि पैर फिसल गये और डूबने डूबने लगा। सब लड़के घबराकर चिल्लाने लगे — लड़का डूबा, लड़का डूबा! मगर किसी की निकालने की हिम्मत न पड़ती थी। अगर कोई सयाना होता, तो कुछ कोशिश भी करता। यों तो डूबते हुए को निकालने में सभी डरते है। डूबनेवाला बचानेवाले को इस तरह पकड़ लेता है कि दोनों डूबने लगते है। इस काम के लिए बहुत होशियार आदमी की जरूरत होती है। यही बात वहाँ भी हुई। पंड़ितजी का बड़ा लड़का संयोग से नहाने आ रहा था। भाई को डूबते देखा, तो तुरन्त कूद पड़ा। पर छोटे लड़के ने बड़े लड़के को इस प्रकार पकड़ लिया कि दोनों डूबने लगे। फिर तो लड़कों ने और भी शोर मचाया। और बात की बात में गाँव-भर में शोर मच गया — रामू और श्यामू दोनों डूब रहे है, चलो निकालो, नहीं तो एक भी न बचेगा। चन्द मिनटों में तालाब पर मर्द और औरतों की भीड़ लग गयी। पर कूदने में सब पसोपेश कर रहे थे। इतने में मैं भी वहाँ पहुँच गया। सारी बातें चट से समझ में आ गई। तुरन्त पानी में तीर की तरह घुसा। उस समय प्रायः दोनों लड़के डूब चूके थे। सिर्फ जरा-जरा बाल दिखाई पड़ रहे थे। मैंने दाँतों से उनके बाल पकड़ लिये और पलक मारते किनारे पर खींच लाया। लोग मेरा यह साहस देखकर दंग रह गये। पंडितजी उस समय किसी काम से बाहर

गये थे। संयोग से वे भी उसी समय आ गये और आदमियों की भीड़ देख बाहर-ही-बाहर वहाँ पहुँच गये। क्षणभर में उन्हें सब बातें ज्ञात हो गयीं। फिर तो उन्होंने मुझे उठाकर छाती से लगा लिया। पंडितजी के आने से पहले ही लोगों ने लड़कों के पेट से पानी बाहर कर दिया था। वे स्वस्थ हो गये थे। अब तो गाँव-भर में मेरी खूब तारीफ होने लगी। यह कुत्ता पूर्व-जन्म का कोई देवता है। किसी बात से चूका और कुत्ते का जन्म पा गया। कोई कहता — नहीं, इस पर भैरवनाथ की छाया है। देवताओं की इच्छी ही तो है, जिस पर रीझ जाये। उस दिन से पंडित जी मुझे जान से अधिक प्यार करने लगे। अब मुझे पेट के लिए किसी दूसरे दरवाजे पर नहीं जाना पड़ता था।

उस समय जकिया भी वहाँ मौजूद था। उसकी मूर्खता तो देखिए, जिस समय लड़कों को निकालकर मैं बाहर आ रहा था, वह बड़े कर्कश स्वर से हाँव-हाँ चिल्ला रहा था। इस पर कुछ लोगों ने उसे ढेले मारकर भगा दिया। ठीक ही था, कहाँ तो घबराये हुए लो लड़कों की जान बचाने की कोशिश कर रहे थे, कहाँ यह व्यर्थ चिल्ला रहा था। डफाली उसकी यह हरकत देखकर चिढ़ गया। चिढ़ता क्यों न? उसको तो यह उम्मीद थी कि मेरा कुत्ता कभी मेरा नाम करेगा, उसने उसे खिलाने-पिलाने में कोई कसर न रखी थी, मगर वहाँ पर सबके मुँह से जकिया के लिए दुर-दुर

निकल रहा था। उसी दिन से न जाने क्यों वह मुझसे विशेष प्रेम करने लगा। जहाँ देखता, उठा लेता और घंटों तक मेरी गर्दन सहलाता। इस पर उसे मैं धन्यवाद देना चाहता था, पर सिवा पूँछ हिलाने के और क्या कर सकता था। अब उसकी आँख जकिया की ओर से धीरे-धीरे फिरने लगी थी। मैं अपने भाई से वैर नहीं चाहता था, लेकिन जकिया मेरी जान का दुश्मन हो गया। जहाँ देखता, मुझसे भिड़ जाता। मजबूत था ही, मुझे हार माननी पड़ती।

5

अब पंडित जी घर में जो कुछ लाते, उसमें अपने लड़कों की तरह मेरा भी हिस्सा लगाते। मैं भी हर वक्त पंडितजी के साथ-ही-साथ रहता था। वह किसी काम से बाहर जाते, तो मुझे बहुत दुःख होता। जब वह लौटकर आ जाते, तो पूँछ हिला-हिलाकर नाचने लगता। इससे शायद वह भी खिल उठते, क्योंकि उनके चेहरे पर प्रसन्नता की एक गहरी झलक दिखायी पड़ती थी।

एक दिन पंडितजी के मटर के खेत मे एक गड़रिये की भेड़ें घुस गयी। पंडितजी ने देखा, तो उसे डाँट दिया। कई दिनों बाद गडरिये ने फिर वही शरारत की। अबकी पंडितजी ने डाँट-

फटकार के बाद दो-तीन थप्पड़ भी जमा दिये। मैंने समझा कि गड़रिया अब ऐसी भूल न करेगा, मगर दो-तीन दिन बाद उसने फिर अपनी भेड़े पंडितजी के खेत में डाल दी। उस दिन पंडितजी को बहुत गुस्सा आया। उन्होंने उसे जमीन पर पटककर लातों और घूँसों से खूब मारा। मैंने भी गुस्से में आकर उसे खूब काटा, नोचा।

उस दिन तो गड़रिया चला गया। दूसरे दिन से वह मेरी खोज में रहने लगा। मुझे पंडितजी के साथ देखता तो होंठ चबाकर रह जाता। मैं भी ताड़ गया था कि यह मुझे अकेला पाते ही अवश्य वार करेगा, इसलिए मैं पंडितजी का साथ कभी भूलकर भी न छोड़ता था।

अब गड़रिये का भेड़ पंडितजी के खेत मे कभी न पड़ती थी। गड़रिया अब बदला लेने पर तुला रहता था।

एक दिन की बात सुनो, पंडितजी की ईख की खेती बहुत अच्छी थी। गाँववाले अक्सर कहा करते थे कि इस साल पंडितजी सबसे बाजी मार ले जायेंगे। गड़रिये ने कहा, इस खेत को आग लगा दो, सारी कसर निकल जायेगी। आधी रात के समय खेत पर पहुँच ही तो गया। बचा यह नहीं जानते थे कि यहाँ पर भी मेरा ही पहरा रहता था। ज्योंही आग की चिनगारी ईख में फेंककर

भागने का विचार किया कि मैंने झपटकर उसके पाँव पकड़ लिये। वह अचकचा कर गिर पड़ा। क्यों न गिर पड़ता, चोरों का कलेजा ही कितना! बचा ने भागने की बहुत कोशिश की, मगर एक न चली। खैरियत यह थी कि खेत गाँव से थोड़ी ही दूर पर था। एकाएक ज्वाला उठी, तो गाँव वाले चटपट पहुँच गये। मुझे गड़रिये का पैर पकड़े देखकर लोग समझ गये कि यह इसी की बदमाशी है। जो आता पहले गड़रिये की पूजा करके तब आग बुझाने जाता। उस बदमाश की ऐसी मरम्मत हुई कि मरने-मरने हो गया। इतने पर भी लोगों को सन्तोष न हुआ। सलाह हुई कि इस थाने ले चलो, मगर पंडितजी ने उसे योंही छोड़ दिया। लोगों से कहा — जब तक ईश्वर न बिगाड़ेगा, आदमी कुछ नहीं कर सकता। मसल है — 'जाको राखे साइयाँ मार न सकिहैं कोय।'

गाँव वालों को पंडितजी के व्यवहार पर बड़ी आश्चर्य हुआ, क्योंकि ऐसी दशा में उसे पूरा दंड दिलाये बिना कोई भी न छोड़ता। मैं तो कहता हूँ कि यदि सब ईख जल गयी होती और गड़रिया पकड़ लिया जाता, तो पंडितजी जीता न छोड़ते, मगर यहाँ तो दयालुता का सिक्का जमाना था। क्यों न क्षमा कर जाते। नहीं तो कहलाने को तो पंडितजी ब्राह्मण थे, पर दरवाजे पर भिखमंगों को भीख नहीं मिलती थी।

उस दिन से पंडितजी मुझे और प्रेम करने लगे। सारे गाँव पर मेरी धाक बँध गयी, लेकिन वह नर-पिशाच इसी फिक्र में रहता था कि कब इसका अन्त कर दूँ। रात-दिन मेरी ही खोज में रहता, मगर ईश्वर की दया से मेरा बाल भी बाँका न कर सका।

आखिर उसे एक तरकीब सूझ गयी। वह जकिया को खूब खिलाने-पिलाने लगा। उस समय डफाली ने जकिया को अपने घर से प्रायः निकाल ही दिया था। कभी-कभी दूसरे कुत्तों की तरह उसे भी कौर दे देता था। बात यह थी कि एक दिन एक पुलिस का आदमी उस डफाली के दरवाजे पर रात को गश्त करने आया था। उस समय जकिया ने उसे काट खाया था। पुलिस के आदमी ने डफाली को खूब तंग किया था, तभी से उसे जकिया से घृणा हो गयी थी। उसकी तो ऐसी इच्छा हो गयी थी कि जकिया दरवाजे पर भी न रहे, मगर बहुत दिनों की मुहब्बत के सबब से उसे कुछ-न-कुछ देना ही पड़ता ता।

जकिया ताकतवर तो बहुत था, मगर उसे भले-बुरे का ज्ञान न था। जभी चाहता, बेसुरा राग छेड़ देता। कभी-कभी देवमन्दिरों में हड्डियाँ रख आता। इससे गाँव वाले भी चिढ़ गये। गुण उसमें यही था कि वह मजबूत बहुत था। क्या मजाल की कोई दूसरे गाँव का कुत्ता आ जाये। गीदड़ों की तो उसे देखते ही नानी मर जाती थी। हिरन और नीलगायें जो पहले खेतों को तहस-नहस

कर देती थीं, अब गाँव मे आने का नाम न लेती। एक बन्दर ने गाँव में बड़ा उत्पात मचा रखा था। बच्चों के हाथ से रोटी छीन लेता। औरतों को रास्ते में रोक लेता, और जो कुछ उनके पास होता, वह लिये बिना पिंड न छोड़ता। लोगों को राह चलना मुश्किल हो गयी थी। गाँव-भर की खपरैल उलट दी थी। जकिया ने उसे ऐसा झँझोड़ा कि बचा ने फिर सूरत ही न दिखायी।

हाँ, तो गड़रिये ने जकिया को इसी इरादे से खिलाना-पिलाना शुरू किया कि मुझसे बदला ले, मगर जकिया भी छटा हुआ था। जो हमेशा मछली और मांस का आदी था वह रूखे-सूखे सत्तू पर कैसे टिक सकता है? गड़रिये ने उसे बाँधकर खूब पीटा। तब से वह उसके यहाँ से भाग गया। अब वह किसी का नहीं था। कहलाता तो था डफालीवाला कुत्ता, मगर डफाली से उसका कुछ भी सम्बन्ध न था।

अब गड़रिये ने निश्चय किया कि जैसे भी होगा, मुझे जान से मार डालेगा, चाहे उसकी जान रहे या जाये। एक दिन उस कमबख़्त ने जान पर खेल कर वार कर ही तो दिया। बात यह थी कि पंडितजी मन्दिर में पूजा कर रहे थे और मैं नीचे बैठा झपकी ले रहा था। पंडितजी आँख मूँदकर श्री शिवजी का ध्यान कर रहे थे। पूरी ताकत के साथ एक लाठी जमा ही तो दी। लाठी ऐसी

घात से लगी कि मेरे मुँह से एक चीख निकल गयी। फिर मुझे कोई खबर न थी कि मैं कहाँ हूँ। जब होश आया तो अपने को जानवरों के अस्तपाल में पाया। कुछ दिनों में अच्छा होकर अस्पताल से चला आया, मगर मेरी कमर बहुत कमजोर हो गयी थी। जब-जब पूर्वी हवा चलती जान ही निकल जाती थी। पीछे पंडितजी से पता लगा कि वे मेरी उस चीख को सुनकर पूजा छोड़कर बाहर निकल आये। देखा कि गड़रिया दूसरा वार करना चाहता है। झट दौड़कर उसे पकड़ लिया और उसकी लाठी से उसे खूब पीटा। तब उसका चालान कराके छः महीने के लिए सजा करवा दी। फिर तो जेल में उसकी जो दुर्गति या सुगति हुई होगी उसका अनुभव तो वही करेगा, जो कभी जेल गया होगा। उस समय से पंडितजी पर मुझे बहुत ही गर्व रहने लगा। मेरा विश्वास था कि पंडितजी के रहते हुए मुझे किसी प्रकार का कष्ट न होगा। कभी मैं पछताता कि मैं भी आदमी क्यों न हुआ।

मेरी माताजी की दशा दिन-दिन खराब होती जाती थी। भूख, चिन्ता, मार, इन सब कारणों ने मिलकर उन्हें पागल बना दिया। एक खंडहर में अकेली पड़ी रहती। मैं एक बार उन्हें देखने गया था। मुझ पर इतनी तेजी से झपटी कि मैं भाग न जाऊँ तो मुझे जरूर काट खायें। उधर से लोगों ने आना बन्द कर लिया। संयोग की बात, गड़रिया उसी दिन सजा भुगतकर निकला था।

एकाएक उसी दिन रास्ते में माताजी उसे मिल गयी और उसके बहुत बचाने पर भी काट खाया। उनके दाँतों में इतना विष था कि दो-तीन दिनों में गड़रिया मर गया। किसी की मृत्यु पर खुश होना, चाहे वह अपना शत्रु ही क्यों न हो, बुरी बात है मगर मैं उछलने लगा। गड़रिया के मरने से मुझे बहुत खुशी हुई। अब मेरा कोई बैरी न था।

मगर इस खुशी ने मुझे जितना हँसाया, उतना ही इस खबर ने रुलाया भी कि उसके दो ही दिन बात पुलिस ने माताजी को गोली मार दी। मैं कई दिनों तक दुखी रहा। भला संसार में ऐसा कौन होगा, जिसे माता के मरने का मार्मिक शोक न हो।

अब जकिया के सिवा कोई मेरा सगा न रह गया था। उस समय कभी-कभी मैं सोचता, देखें हम लोगों का अन्त कैसे होता है। यद्यपि उस समय मैं खाने-पीने से सुखी था और जकिया दुखी, मगर सन्तोष इतना ही था कि कहने को भाई तो है। कभी तो उसके दिन भी फिरेंगे! पहले उसने सुख भोगे, मैंने दुःख भोगे। अब मैं सुख भोग रहा हूँ और वह दुःख। किसी के दिन बराबर नहीं जाते।

जब कभी जकिया पंडितजी के दरवाजे पर आता, तो मैं कभी चिढ़ता न था। वह तो डरता था कि कहीं यह बदला न ले, मगर

मैं वहाँ से टल जाता कि वह निश्चिंत होकर खा ले। कभी-कभी मुझे अधिक भोजन मिल जाता, तो मैं मुँह से रखकर जकिया के पास पहुँचा देता। वह दिखावे में तो प्रसन्न होता, मगर दिल में मुझसे बराबर जला करता।

6

एक बार गाँव में कई जंगली सूअर आ गए। उनके उत्पात से सारे गाँव में हाहाकार मच गया। वे जिस खेत में घुस जाते, उसे बरबाद कर देते। आखिर लोगों ने थाने में फरियाद की। थाने का सबसे बड़ा अफसर कई शिकारी कुत्तों को लेकर गाँव में आ पहुंचा। गाँव के सब आदमी तमाशा देखने के लिए के लिए जमा हो गए। जब मैं साहब के पास पहुंचा तो मेरी निगाह उन कुत्तों पर पड़ी जो साहब के साथ आए थे। वे सब एक वाहन में बैठे हुए थे जिसे साहब लोग जीप कहते थे। अपने उन भाग्यवान भाइयों को देखकर मैं गर्व से फूल उठा कि मेरी जाति में भी ऐसे लोग हैं जो अफसर के साथ मोटर में बैठते हैं।

साहब बहादुर अपने कुत्तों के साथ वहाँ पहुंचे जहाँ सूअरों का अड्डा था। साहब के कुत्ते उन पर टूट पड़े। उनकी बहादुरी

देखकर लोग वाह-वाह कर उठे। अब मेरे मन में भी उमंग उठी। सोचा एक दिन तो मरना ही है। क्यों न कुछ ऐसा कर दिखाऊँ कि इन कुत्तों को को भी पता चल जाए कि इस गाँव में भी कोई वीर है।

इतने में एक सूअर आता दिखाई दिया। मैंने उसे मार गिराया। सबने मेरी तारीफ की। साहब भी खुश हुए। साहब ने पूछा' — 'यह किसका कुत्ता है?

पंडित जी ने गर्व से अपना नाम बताया। साहब ने कहा — आपका कुत्ता बड़ा बहादुर है। बात पूरी भी न हो पाई थी कि अचानक एक सूअर निकला और साहब पर झपटा। यदि एक क्षण की भी देरी हो जाती, तो सूअर उन्हें मार डालता। साहब के हाथ में बंदूक था पर घबराहट में वह उसे चलाना भूल गए। मैंने देखा, मामला नाजुक है। मैंने पीछे से लपककर सूअर की टांग पकड़ ली। इतने में साहब संभल गए और उन्होंने सूअर को गोली मार दी। पर मरने से पहले वह मुझे बुरी तरह घायल कर गया। मैं बेहोश हो गया।

जब होश आया तो देखा, मैं रूई के गद्दे पर लेटा हूं। दो तीन लोग मेरी सेवा कर रहे हैं। फिर तो साहब के घर पर मुझे ऐसी चीजें खाने को मिलीं जो मैंने सपने में भी न सोचा था। साहब

मुझे अपने साथ घुमाने ले जाते। पर उनके साथ रहते हुए भी मुझे पंडित जी की बड़ी याद आती थी पर साहब ने मुझे अपने साथ रखने की जिद ठान ली थी। आखिर मैंने उनकी जान जो बचाई थी।

कुछ दिन रहने का बाद साहब अपनी मेम के साथ विदेश घूमने निकले। उन्होंने मुझे भी साथ ले लिया। हम लोग लगभग एक महीने तक जहाज पर रहे। यह लकड़ी का ऊँचा-सा मकान था। जहाँ तक निगाह जाती, ऊपर नीला आकाश दिखाई देता था, तो नीचे नीला पानी। मैं डर के मारे भौंकता ही रहता था।

एक रात बादल घिर आए। तेज हवाएँ चलने लगीं। हमारा जहाज लहरों पर ऊपर-नीचे हो रहा था। सब डरे हुए थे। ऐसी आँधी मेरे जीवन में एक बार पहले भी आई थी। तब गाँव में सैकड़ों मकान गिरने से हजारों जानवर मारे गए थे। पर समुद्री आंधी तो बहुत भयानक थी। अचानक बिजली चली गई और पूरे जहाज पर अंधकार हो गया। एकाएक जहाज किसी चीज से टकराया। एक भयंकर आवाज हुई और लगा कि जहाज नीचे पानी में घुसता जा रहा है। मेरे साहब और मेमसाहब एक दूसरे से मिलकर रो रहे थे। उनके लिए मेरा कलेजा फटा जा रहा था। सोच रहा था कि कैसे उन्हें बचाऊँ। मेरा वश चलता तो दोनों को अपनी पीठ पर बैठाकर समुद्र में कूद पड़ता।

तभी जहाज पूरी तरह से पानी में डूब गया। सभी तैरने का प्रयास करने लगे। कोई कहीं बहे जा रहा था तो कोई कहीं। मुझे अपने साहब के लिए रोना आ रहा था।

तभी बिजली चमकी। उस रोशनी में मुझे अपने साहब और मेमसाहब तैरते दिखाई पड़े। हम साथ-साथ तैरने लगे। वे दोनों बेहोश थे और एक लकड़ी के एक तख्ते पर लेटे थे। मैं उस तख्ते को दिशा दे रहा था। कई घंटों तक तैरने के बाद मैं उनके साथ एक टापू पर पहुंचा। हम किनारे पर पहुँचे ही थे कि कुछ काले लोगों ने आकर हमें घेर लिया। थोड़ी ही देर में कुछ औरतें भी बाहर आ गईं। उन्होंने साहब और मेमसाहब को उलटा लिटा दिया। कोई उनका पेट दबाता था, तो कोई हाथ। मुझे लगा कि वे उन्हें मार रहे हैं। पर बाद में पता चला, वे तो उनके पेट से पानी निकाल रहे थे। उनके होश में आते ही सभी खुशी से नाचने-गाने लगे। उनका नाच देखकर मुझे हंसी आती थी।

पर कुछ ही समय में सब बदल गया। उन्होंने मेरे साहब और मेमसाहब को एक कमरे में बंद कर दिया। उन्हें खाने को कुछ नहीं दिया जाता था। मुझे कुछ नहीं कहा क्योंकि उनकी नजर में मैं एक अदना-सा जानवर था।

कुछ ही दिनों में मुझे पता चल गया कि वे तो मेरे मालिकों को मारने की तैयारी कर रहे हैं। मैंने निश्चय किया कि किसी भी कीमत पर उन्हें बचाऊँगा। मैं मौका पाकर किसी की रोटी उठाकर अपने मालिक के पास छोड़ आता था। भूख के कारण वे मेरे मुँह से रोटी निकालकर खाने को तैयार हो जाते थे।

कुछ ही दिनों में मैं वहाँ के रास्ते जान गया। एक रात मौका मिला, तो मैंने साहब के कपड़े खींचे। वह मेरा इशारा समझ गए। दरवाजे खिड़की के रास्ते वे मेरे साथ भाग चले। अब मैं आगे-आगे था और वे मेरे पीछे। थोड़ी देर में ही वहाँ के लोगों को पता चल गया कि साहब भाग रहे हैं। सब हल्ला मचाते हुए हमारे पीछे भागे। कुछ ही देर में हमने समझ लिया कि हमारा बचना मुश्किल है। तभी मुझे एक गुफा दिखाई दिया। साहब को मैंने खींचा, तो वह मेमसाहब के साथ उसमें घुस गए।

पर हमारी परेशानियों का अंत नहीं हुआ था। वह गुफा एक शेर का था और वह उसमें बैठा हुआ था। शेर को देखते ही वे दोनों बेहोश हो गए। डर तो मैं भी गया, पर यह देखकर कुछ हिम्मत बंधी कि शेर हमें देखकर भी उठा नहीं। वह चुपचाप मेरी तरफ देख रहा था। मैं डरते-डरते उस तक पहुंचा, तो देखा उसका दायां पैर बुरी तरह फूला हुआ था।

मैं साहब के होश में आने की राह देखने लगा। थोड़ी देर में उनको होश आया। मुझे शेर के पास बैठे देखकर उनकी हिम्मत बंधी। शेर ने उन्हें देखकर पूंछ को हिलाया। वह आगे बढ़े, तो शेर ने अपना पंजा आगे कर दिया। साहब ने देखा, वहाँ एक कांटा गड़ा था। साहब ने कांटे को निकाल दिया। शेर का दर्द जाता रहा।

तभी गुफा में जंगली लोग घुस आए। मैं आगे जाकर खड़ा हो गया कि लड़ मरूँगा पर साहब पर आँच न आने दूँगा। पर वे आगे बढ़ने लगे।

तभी गुफा शेर की दहाड़ से गूंज उठा। सारे जंगली लोग दुम दबाकर भागने लगे। शेर ने एक को पकड़ लिया और देखते-देखते सारे लोग भाग खड़े हुए। एक घंटे बाद हम सब बाहर निकले। शेर सिर झुकाए हमारे आगे इस तरह चला जा रहा था, जैसे गाय हो। शाम होते-होते हम एक दूसरे जंगल में पहुँच गए। वहाँ का रास्ता मैं तो जानता न था अत: अब शेर आगे-आगे चलने लगा और हम उसके पीछे पीछे चलने लगे। तभी एक आवाज सुनकर शेर ठिठक गया। उसके कान खड़े हो गए और वह गुर्राने लगा। सहसा सामने एक दूसरा शेर आ गया।

हम सब तो एक पेड़ के पीछ्रे दुबक गए पर हमारा शेर नए शेर के सामने डटकर खड़ा हो गया जैसे कह रहा हो — अपनी जान बचाने वाले पर मैं आँच न आने दूँगा।

पर दूसरा शेर गरजकर हमारी ओर चला। यह देखकर हमारा शेर उस पर टूट पड़ा। दोनों आपस में गुँथ गए। दोनो कभी पंजों से लड़ते तो कभी दांतों से। घंटे भर की लड़ाई के बाद हमारे शेर ने मैदान मार ही लिया। पर हमारे मित्र की हालत भी खराब हो गई थी।

दूसरे दिन हम लोग समुद्र के किनारे पहुंचे। वहाँ हमारे मित्र शेर ने दम तोड़ दिया। वह मर तो गया पर अपना कर्ज चुका गया। साहब उसके मरने पर खूब रोए। उनकी समझ में आ गया होगा कि अगर प्यार मिले तो हम जानवर आदमियों के मुकाबले ज्यादा वफादार होते हैं।

तभी किसी चीज के घरघराने की आवाज हमारे कानों में आई। हम सब ऊपर आसमान की ओर देखने लगे। मुझे आसमान में एक बड़ी-सी चील दिखाई दी। साहब ने अपनी टोपी उतारकर हवा में उछाली, मेमसाहब भी अपना रूमाल हवा में लहराने लगीं। मेरी समझ में नहीं आता था कि चील को देखकर इतना खुश होने की क्या जरूरत है?

तभी वह चील हमारी ओर आने लगी। देखते-देखते वह नीचे उतर आई। मैंने इतनी भीमकाय चिड़िया नहीं देखी थी। थोड़ी देर में उसमें से दो आदमी निकले। तब मुझे पता चला यह तो एक प्रकार की सवारी है जो लोगों को लेकर हवा में उड़ती है। उन्होंने मेरे साहब से कुछ बात की। फिर साहब ने मुझे गोद में उठा लिया। फिर हम सब उसी में बैठकर उड़ चले। हम पूरी रात उड़ते रहे। सब सो गए पर डर के मारे मैं जगा रहा कि कहीं यह गिर न पड़े। जब हम नीचे उतरे, तो दंग रह गया। इतनी मुश्किल यात्रा कर हम सब अपने पुराने घर पर ही लौट आए थे। उस यंत्र से उतरकर हम सब एक मोटर में बैठकर अपने बंगले की ओर चले।

घर पहुँचते ही मेरा तो आराम हराम हो गया। एक नौकर ने तुरंत मुझे नहलाया। फिर मुझे लाकर साहब के मुलाकाती कमरे में एक सोफा पर बैठा दिया। मेमसाहब अपने हाथों से मुझे खिलाने लगीं। खुशी के मारे मेरा जी चाहता था कि मेरी बिरादरी वाले आएँ और मुझे देखें और मुझपर गर्व करें। मैं उनसे कहना चाहता था कि मैं आज भी वही कल्लू हूँ, वही कमजोर, मरियल कल्लू। मगर मैंने अपने कर्तव्य-पालन में कभी चूक नहीं की। अवसर पडऩे पर खतरों का निडर होकर सामना किया। इसीलिए

मैं आज इतना स्नेह और आदर पा रहा हूं। शहर के बड़े-बड़े लोग मुझे देखने आए मुझ पर फूलों की वर्षा की।

शाम को मुझे मौका मिला, तो मैं अपने जन्मस्थल की ओर भागा। मगर ज्योंही मैं गाँव पहुंचा। कुत्तों के एक झुंड ने मुझपर आक्रमण कर दिया। मैं उन्हें बताना चाहता था कि मै उनकी मान बढ़ाने वाला कल्लू हूँ। परंतु वे मुझपर आक्रमण करते ही जा रहे थे।

सौभाग्य से तभी मेरे पुराने स्वामी पंडित जी लाठी टेकते चले आए। उन्हें देखते ही जैसे मेरे बदन में शक्ति आ गई। मैं दौड़कर पंडित जी के पास पहुंचा और दुम हिलाने लगा। पंडित जी मुझे पहचान गए। उन्होंने प्यार से हाथ फेरकर कहा — तुम तो बड़े आदमी बन गए हो कल्लू। तुम्हारी तो अखबारों में भी तारीफ हो रही है।'

उनके साथ मैं घर पर पहुँचा। पंडिताइन ने भी मुझे बड़ा प्यार दिया मेरे आने की खबर सुनते ही सारा गाँव इकट्ठा हो गया। सबने मुझे खूब प्यार दिया। फिर भरे मन से मैं बंगले पर पहुँचा, पर मेरा सिर गर्व से तना हुआ था।

दुर्गादास

बालकों के लिए राष्ट्र के सपूतों के चरित्र से बढ़कर उपयोगी साहित्य का कोई दूसरा अंग नहीं है। इनसे उनका चरित्र ही बलवान नहीं होता, उनमें राष्ट्र-प्रेम और साहस का संचार भी होता है। राजपूताना में बड़े-बड़े शूरवीर हो गये हैं। उस मरुभूमि ने कितने ही नररत्नों को जन्म दिया है पर वीर दुर्गादास अपने अनुपम आत्म-त्याग, निस्स्वार्थ सेवा-भक्ति और अपने उज्जवल चरित्र के लिए कोहनूर के समान है। औरों में शौर्य के साथ कहीं-कहीं हिंसा और द्वेष का भाव भी पाया जायगा, कीर्ति का मोह भी होगा, अभिमान भी होगा, पर दुर्गादास शेर होकर भी साधु था। इन्हीं कारणों से हमने वीर-रत्न दुर्गादास का चरित्र बालकों के सामने रखा है।

हमने चेष्टा की है कि पुस्तक की भाषा सरल और बामुहावरा हो और उसमें बालकों की रुचि उत्पन्न हो।

–प्रेमचंद।

1

जोधपुर के महाराज जसवन्तसिंह की सेना में आशकरण नाम के एक राजपूत सेनापति थे, बड़े सच्चे, वीर, शीलवान् और परमार्थी। उनकी बहादुरी की इतनी धाक थी, कि दुश्मन उनके नाम से कांपते थे। दोनों दयावान् ऐसे थे कि मारवाड़ में कोई अनाथ न था।, जो उनके दरबार से निराश लौटे। जसवन्तसिंह भी उनका :बड़ा आदर-सत्कार करते थे। वीर दुर्गादास उन्हीं के लड़के थे। छोटे का नाम जसकरण था।

सन् 1605 ई., में आशकरण जी उज्जैन की लड़ाई में धोखे से मारे गये। उस समय दुर्गादास केवल पंद्रह वर्ष के थे पर ऐसे होनहार थे,कि जसवन्तसिंह अपने बड़े बेटे पृथ्वीसिंह की तरह इन्हें भी प्यार करने लगे। कुछ दिनों बाद जब महाराज दक्खिन की सूबेदारी पर गये, तो पृथ्वीसिंह को राज्य का भार सौंपा और वीर दुर्गादास को सेनापति बनाकर अपने साथ कर लिया। उस समय दक्खिन में महाराज शिवाजी का साम्राज्य था। मुगलों की उनके सामने एक न चलती थी; इसलिए औरंगजेब ने जसवन्तसिंह को भेजा था। जसवन्तसिंह के पहुँचते ही मार-काट बन्द हो गई।

धीरे-धीरे शिवाजी और जसवन्तसिंह में मेल-जोल हो गया। औरंगजेब की इच्छा तो थी कि शिवाजी को परास्त किया जाये। यह इरादा पूरा न हुआ, तो उसने जसवन्तसिंह को वहाँ से हटा दिया, और कुछ दिनों उन्हें लाहौर में रखकर फिर काबुल भेज दिया। काबुल के मुसलमान इतनी आसानी से दबने वाले नहीं थे। भीषण संग्राम हुआ; जिसमें महाराजा के दो लड़के मारे गये। बुढ़ापे में जसवन्तसिंह को यही गहरी चोट लगी। बहुत दु:खी होकर वहाँ से पेशावर चले गये।

उन्हीं दिनों अजमेर में बगावत हो गई। औरंगजेब ने पृथ्वीसिंह को विद्रोहियों का दमन करने का हुक्म दिया। पृथ्वीसिंह ने थोड़े दिनों में बगावत को दबा दिया। औरंगजेब यह खबर पाकर बहुत खुश हुआ और पृथ्वीसिंह को पुरस्कार देने के लिए दिल्ली बुलाया। कुछ लोगों का कहना है कि वहाँ पृथ्वीसिंह को विष से सनी हुई खिलअत पहनाई गई, जिसका नतीजा यह हुआ कि धीरे-धीरे विष उनकी देह में मिल गया और वह थोड़े ही दिनों में संसार से विदा हो गये। यह भी कहा जाता है कि औरंगजेब मारवाड़ पर कब्जा करना चाहता था। और इसलिए जयवन्तसिंह को बार-बार लड़ाईयों पर भेजता रहता था। औरंगजेब की इस अप्रसन्नता का कारण शायद यह हो सकता है, कि जब दिल्ली के तख्त के लिए शाहजादों में लड़ाई हुई; तो जसवन्तसिंह ने

दाराशिकोह का साथ दिया था। औरंगजेब ने उनका यह अपराध क्षमा न किया था। और तबसे बराबर उसका बदला लेने की फिक्र में था। खुल्लम-खुल्ला जसवन्तसिंह से लड़ना सारे राजपूताना में आग लगा देना था। इसलिए वह कूटनीति से अपना काम निकालना चाहता था।

पृथ्वीसिंह के मरते ही, औरंगजेब ने मारवाड़ में मुगल सूबेदार को भेज दिया। जयवन्तसिंह तो इधर पेशावर में पड़े हुए थे। औरंगजेब को मारवाड़ पर अधिकार जमाने का अवसर मिल गया। पृथ्वीसिंह का मरना सुनते ही महाराज पर बिजली-सी टूट पड़ी। शोनिंगजी ने महाराज को गिरने से संभाला और धीरे से एक पलंग पर लिटा दिया। थोड़ी देर के उपरान्त, जसवन्तसिंह ने आँखें खोलीं। सामने शोनिंगजी को खड़ा देखा। आंखों में आँसू भरकर बोले भाई! शोनिंगजी! यह प्यारे बेटे के मरने की खबर नहीं आई! यह मेरे लेने को मेरी मौत आई है। आओ, हम अपने मरने के पहले तुमसे कुछ कहना चाहते हैं। शोनिंगजी को लिये महाराज भीतर चले आये और एक लोहे की छोटी सन्दूकची देकर बोले भाई,यह सन्दूकची हम तुम्हें सौंपते हैं। इसकी रखवाली तुम्हें उस समय तक करनी होगी, जब तक कोई राजपूत मारवाड़ को मुगलों के हाथ से छुड़ाकर हमारी गद्दी पर न बैठे। यदि ईश्वर कभी वह दिन दिखाये तो यह उपहार उस राजकुमार

को राजगद्दी के समय भेंट करना। उसके पहले तुम या दूसरा कोई इसको खोलकर देखने की इच्छा भी न करे। यदि किसी आपत्ति के कारण तुम इसकी रक्षा न कर सको, तो दूसरे किसी को जैसे मैंने तुमसे कहा है, कहकर सौंप देना।

दूसरे दिन महाराज ने अपने सब सरदारों को बुलवाया और बोले — भाइयो! औरंगजेब ने हम राजपूतों से अपने बैर का बदला पूरा-पूरा चुका लिया। अब राजवंश में हमारे पीछे कोई भी न रहा, जो हमारी गद्दी पर बैठे। यद्यपि हमारी दो रानियाँ भाटी और हाड़ी सगर्भा हैं; परन्तु ऐसे खोटे दिनों में क्या आशा की जाये कि उनके लड़का पैदा होगा? लेकिन यदि ईश्वर की कृपा हुई, और हमारी गद्दी का वारिश पैदा हुआ, तो यह कोई अनहोनी बात नहीं कि तुम लोगों की सहायता से औरंगजेब के हाथों से मारवाड़ को छुड़ा लें; इसलिए हमारी अन्तिम आज्ञा है कि अपने राजकुमार के साथ वैसा ही बर्ताव करना, जैसा आज तक हमारे साथ करते आये हो। भाइयो! जो मारवाड़ आज तक औरों की विपत्ति में सहायता करता था।, आज वही अपनी सहायता के लिए दूसरों का मुँह ताक रहा है। आदमी नहीं, समय ही बलवान् होता है! कभी औरंगजेब मुझसे डरता था। आज मैं उससे डरता हूँ। अब इस बुढ़ापे में मैं अपने देश के लिए क्या कर सकता हूँ? कुछ नहीं।’

महाराज की आँखों में आँसू उबडबा आये। फिर कुछ न कह सके। थोड़ी देर सभा में सन्नाटा रहा, सभी के चेहरों पर उदासी थी और सभी एक दूसरे का मुँह ताकते रहे। बाद में महाराज भीतर चले गये और सरदार लोग अपने-अपने डेरों पर लौटे। इसके सप्ताह बाद महाराज ने शरीर त्याग दिया। बहादुर राजपूत शोक और पराजय की चोटों को न सह सका। सब रानियाँ महाराज के साथ सती हो गयीं, केवल भाटी और हाड़ी दो रानियों को सरदारों ने सती होने से रोक लिया। सन् 1678 ई. माघ बदी चार के दिन रानी के बेटा पैदा हुआ। दूसरे ही दिन हाड़ी के भी लड़का हुआ। बड़े का नाम अजीत और छोटे का दलथम्भन रखा गया।

औरंगजेब ने यह हाल सुना तो रानियों को पेशावर से दिल्ली बुला भेजा। सर्दी लग जाने से दलथम्भन तो राह में ही मर गया। और लोग कुशल से दिल्ली जा पहुंचे और रूपसिंह उदावत की हवेली में ठहरे। यह दिल्ली में सबसे बड़ी और सरदारों के लिए सुभीते की जगह थी। दूसरे दिन दुर्गादास कर्णोत, महारानियों के आने की सूचना देने के लिए औरंगजेब के पास गया। बादशाह ने लोकाचार के बाद कहा — दुर्गादास! देखो बेचारा दलथम्भन तो मर ही गया। अब हमें चाहिए कि अजीत का लालन-पालन होशियारी से करें, जिससे बेचारे जसवन्तसिंह का दुनिया में नाम

रह जाय, इसलिए यही अच्छा होगा, कि अजीत को हमारे पास छोड़ दिया जाये। जैसे जसवन्तसिंह का लड़का, वैसे ही हमारा लड़का। हम उसकी स्वयं देखभाल करेंगे। और बड़े होने पर जोधपुर की गद्दी पर उसका राजतिलक कर देंगे। दुर्गादास बादशाह की मंशा ताड़ गया;परन्तु बड़ी नरमी से बोला जहाँपनहा! इसमें कोई सन्देह नहीं, अजीत की रक्षा और पालन, जैसा यहाँ हो सकता है, और कहीं नहीं हो सकता। आप उसके ऊपर इतनी दया रखते हैं, यह उसका सौभाग्य है, पर अजीत अभी तीन महीने का है, और माता के ही दूध पर उसका जीवन है,इसलिए यह अच्छा होगा, कि दूध छूटने पर वह आपकी सेवा में लाया जाय। औरंगजेब ने दुर्गादास की बात मान ली।

वीर दुर्गादास ने लौटकर महारानी तथा। सब राजपूत सरदारों के सामने, बादशाह की बातचीत जैसी-की-तैसी कह सुनाई। सुनते ही सरदारों की आँखें लाल हो गयीं। दुर्गादास ने कहा — भाइयो! यह समय क्रोध का नहीं, चतराई का है। पहले किसी उपाय से राजकुमार को दिल्ली से हटाया जाय, फिर जैसा होगा, देखा जायेगा। आनन्ददास खेंची, जो सबसे चतुर सरदार था।, सवेरे ही एक सपेरे को लालच देकर लाया और उसकी सांप वाली पिटारी में राजकुमार को छिपाकर दिल्ली से बाहर निकल गया। वहाँ से आबू की घनी पहाड़ियों के बीच से होकर, मारवाड़ के एक डुगबा

नाम के गाँव में अपने मित्र जयदेव ब्राह्मण के घर पहुंचा। वहीं छिपे-छिपे राजकुमार का लालन-पालन करने लगा। इधर महारानी की गोद में राजकुमार की जगह दूसरा लड़का रख दिया गया।

एक वर्ष बीत जाने पर, जब औरंगजेब ने देखा, राजपूत अजीत को सीधे -सीधे नहीं देना चाहते, तो उसने जबरदस्ती राजकुमार को लाने के लिए शहर कोतवाल फौलाद को भेजा। उसने दो हजार हथियारबन्द सिपाही लेकर रूपसिंह उदावत की हवेली घेर ली। एकाएक अपने को विपत्ति में पड़ा देख दुर्गादास ने कहा — भाइयो! राजपूत दूसरों की रक्षा के लिए अपने प्राणों का लालच नहीं करते। हम राजपूत कहला कर राजकुमार के समान पाले हुए बालक को अपने हाथों मौत के मुँह में डालना नहीं चाहते। महारानी ने कहा — हमारी चिन्ता मत करो, हमारी लाज रखने वाली यह कटारी है। मैं कब की मर चुकी होती यदि यह देखने की लालसा न होती, कि राजपूत अपने देश पर किस वीरता से अपने प्राणों को न्योछावर करते हैं! रूपसिंह ने बालक की रक्षा का भार अपने ऊपर लिया। रानी ने छाती में कटारी मारकर देह त्याग दी। फिर क्या था।?राजपूत वीर निश्चिन्त हो नंगी तलवारें हाथों में ले हर-हर महादेव करते हुए शत्रु सेना पर टूट पड़े। तीन बड़ी मुगल-सेना के सामने दो-ढाई सौ आदमी इसके सिवा

और कर ही क्या सकते थे। सब-के-सब वहीं लड़ मरे। शाम तक लड़ाई होती रही। मैदान साफ हो गया तो शहर कोतवाल ने रूपसिंह की हवेली तिल-तिल खोज मारी; परन्तु राजकुमार अजीत का कहीं पता न चला। बेचारे को इतने राजपूतों की हत्या करने पर भी खाली ही हाथ लौटना पड़ा।

झुटपुटा हो ही चुका था। चारों ओर निर्मल आकाश में तारे छिटकने लगे थे। चन्द्रमा की शीतल किरणें पृथ्वी पर आ-आकर कराहते हुए घायल वीरों को मानो ढाढ़स दे रही थी। सर्द हवा के धीमे झकोरों के लगने से घायल वीरों ने आँखें खोलीं और एक दूसरे के सहारे उठने लगे। इनमें वीर दुर्गादास कर्णोत की दशा दूसरे के देखते कुछ अच्छी थी। चन्द्रमा के प्रकाश में वीर दुर्गादास अपनी ओर के सब राजपूत सरदारों को एक-एक करके देखने लगे। जिस किसी को जीवित पाया, सहारा देकर उठा लाये। ढाई सौ राजपूतों में केवल वीर दुर्गादास कर्णोत, मोकहमसिंह मेडतिया, भोजराज विदावत, रूपसिंह उदावत, महासिंह और दूधोजी चांपावत, इत्यादि इने-गिने सरदार ही जीवित बचे थे। बूढ़े दूधोजी ने कहा — भाई, चांदनी फीकी पड़ चली। रात आधी से अधिक बीत गई। अब यहाँ बैठने में भलाई नहीं है। देह तो छिन्न-भिन्न हो चुकी है। बचे-खुचे प्राणों की रक्षा करें। वीर दुर्गादास ने कहा — अभी ठहरो हम महारानी का शव लिये बिना

यहाँ से जीवित नहीं जाना चाहते। धिक्कार है! हमारे जीते जी ही महारानी का पुनीत शरीर मुगलों के हाथ पड़े।

उन शब्दों में न जाने क्या जादू था।, कि जो दूसरे के सहारे भी न खड़े हो सकते थे, वही महारानी की लोथ लेकर सवेरा होते-होते दिल्ली से पांच-छ: कोस दूर निकल गये और आबू की घनी पहाड़ियों में दाह-क्रिया कर दी। आज की रात यहीं काटी। दूसरे दिन जयदेव ब्राह्मण के घर पहुंचे। राजकुमार को सुखी देखकर अपना पिछला दुःख भूल गये। दूसरे दिन आनन्ददास खेंची को राजकुमार के लालन-पालन के विषय में सावधान करके एक दूसरे से गले मिले और विदा होकर, अपने-अपने गांवों को चल दिये। राह में जितने छोटे-बड़े गाँव मिले, सब में दुर्गादास ने मुगल सिपाहियों के चौकी-था।ने बने देखे। जैसे-तैसे छिपते-छिपाते कल्याणगढ़ पहुंचे। जैसे गाय से दिन भर का बिछड़ा बछड़ा मिलता है,वैसे ही दुर्गादास अपनी माता के चरणों पर गिर पड़ा। बूढ़ी माता ने उठाकर छाती से लगा लिया। दोनों ही की आंखों से प्रेम के आँसू बहने लगे।

इसी समय दुर्गादास का पुत्र तेजकरण और छोटा भाई जसकरण भी आ गये। दोनों ही रूपवान और बलवान थे। जैसे दुर्गादास अपने देश की भलाई के लिए तन, मन, धन न्योछावर किये बैठा था।, वैसे ही जसकरण और तेजकरण् भी देश की स्वतन्त्राता के

नाम पर बिके हुए थे। बूढ़ी माता भी मुगलों के अत्याचार से दुखी थी। अपने पुत्रों को देश पर मर मिटने के लिए सदैव उसकाया करती थी। पर जब अपने ही बन्धु देश को बरबाद करने पर तुले बैठे हों, तो कोई क्या करे?

जसवन्तसिंह के बड़े भाई अमरसिंह का लड़का इन्द्रसिंह राज्य के लालच में औरंगजेब से मिल गया था। वह चाहता था। कि देश से प्रभावशाली राजपूत सरदारों को राह में बिछे हुए कांटों के समान नष्ट कर दें और बे-खटके मारवाड़ पर राज करे। औरंगजेब को तो यह उपाय सुझाने की देर थी। उसकी ऐसी इच्छा पहले ही से थी। यह बात उसके मन में बैठ गई। मारवाड़ के मुगल सूबेदार के नाम तुरन्त फरमान जारी कर दिया सरदारों को गिरफ्तार कर लो। फिर क्या था।? गाँव-गाँव भागे हुए सरदारों की खोज होने लगी। कितने प्राण की डर से बादशाह से जा मिले। कुछ इधर-उधर छिप रहे। उनके घर लूट लिये गये। फिर भी न निकले। शोनिंगजी चांपावत ने सरदारों की यह दशा देखी, तो घबरा उठे। ऐसी दशा में महाराज जसवन्तसिंह की दी हुई लोहे की सन्दूकची की रक्षा कैसे करें! इसी चिन्ता में थे, कि वीर दुर्गादास की याद आ गई। तुरन्त ही घोड़ा कसा और अरावली पहाड़ी के तलैटी में बसे हुए कल्याणपुर में जा पहुंचे। शोनिंगजी को आते देख दुर्गादास अगवानी के लिए आगे बढ़ा।

दोनों मेल से गले मिले। देश की दशा पर बातें होने लगीं। शोनिंगजी ने कहा — भाई! यह समय बैठने का नहीं। आलस छोड़ो और हमारे साथ अभी चला। दुर्गादास ने अपनी माता से आज्ञा मांगी और शोनिंगी के साथ चल पड़े। दिन डूबते-डूबते दोनों आवागढ़ कोट में पहुंचे। दुर्गादास मुगल सिपाहियों को इधर-उधर कोट की चौकसी करते देख भीतर जाने में हिचकिचाया। शोनिंगजी ने धीरे से कहा — यदि देश की भलाई चाहते हो, तो चले जाओ।

दोनों एक अंधेरी कोठरी में जा पहुंचे। शोनिंगजी भीतर से एक छोटी-सी लोहे की सन्दूकची उठा लाये और दुर्गादास के सामने रखकर बोले यह था।ती महाराज जसवन्तसिंह ने अपने मरने के दस दिन पहले हमें सौंपी थी, और कहा — था। 'जो वीर मारवाड़ को स्वतन्त्र कर जोधपुर की गद्दी पर बैठेगा, यह उपहार उसी को दिया जाय। उसे छोड़, दूसरा कोई भी यह जानने की इच्छा न करे, कि इसमें क्या है?' भाई! अब मैं इसकी रक्षा नहीं कर सकता। इसलिए तुम्हें सौंपता हूँ और यदि मेरी-सी दशा, ईश्वर न करे, कभी तुम्हारी भी हो, तो ऐसा ही करना, जैसा मैं कर रहा हूँ। वीर दुर्गादास सब बातों को ध्यान से सुनता रहा। तब सन्दूकची उठाकर मटके के सहारे कमर में बाँधा ली और राम जुहार

करता हुआ घोड़े पर सवार हो, सीधी राह छोड़ पगडण्डी पर हो लिया।

2

एक तो अंधेरी अटपटी राह, बेचारा घोड़ा अटक-अटक कर चलता था। वह अपनी ही टापों की ध्वनि सुनकर कभी पहाड़ियों से टकराकर लौटती थी, चौंक पड़ता था। पहर रात जा चुकी थी, धीरे-धीरे चारों ओर चांदनी छिटकने लगी थी। दूर से कंटालिया गाँव अब धुंआ-सा दिखाई पड़ा था। वीर दुर्गादास देश की दशा पर खीझता चला जा रहा था। अकस्मात् तलवारों की झनझनाहट सुन पड़ी। चौकन्ना हो, अपनी तलवार खींच ली और उसी ओर बढ़ा, देखा कि दो राजपूत को बाईस मुगल घेरे हुए हैं। क्रोध में आकर मुगलों पर टूट पड़ा। दो-चार मारे गये और दो-चार घायल हुए। मुगलों ने पीठ दिखाई और 'मदद-मदद' चिल्लाने लगे! वीर दुर्गादास ने कहा — दोनों राजपूत में से एक तो मारा गया है और दूसरा घायल। चाहता था। कि घायल राजपूत को उठा ले जाय, परन्तु न हो सका। चन्द्रमा के प्रकाश में देखा कि दौड़ते हुए बीस-पच्चीस मुगल चले आ रहे हैं। वीर दुर्गादास ने

उनको इतना भी समय न दिया, कि वे अपने शत्रु को तो देख लेते, दस-ग्यारह को गिरा दिया। खून! खून! जोरावर खाँ का खून! चिल्लाते हुए मुगल पीछे हटे थे, कि दुर्गादास ने सोचा, अब यहाँ ठहरना चतुराई नहीं। बस, घायल राजपूत को उठाकर कल्याणपुर की ओर भाग निकला। थोड़ी ही रात रहे घर पहुंचा। बूढ़ी माता दुर्गादास और दूसरे राजपूत को रक्त से नहाया हुआ देख घबरा उठी। तुरन्त ही दोनों की मरहम-पट्टी हुई थी, थोड़ी देर बाद जब दुर्गादास कुछ स्वस्थ हुआ तो माता ने पूछा बेटा, तुम्हारी यह दशा कैसे हुई?दुर्गादास ने अपनी बीती कह सुनाई। माता ने घायल राजपूत को देखा, तो पहचान गई। दुर्गादास से कहा — क्या तुम इन्हें नहीं पहचानते?दुर्गादास के बोलने से पहले ही घायल राजपूत, जो अब सचेत हो चुका था।, बोल उठा माँ जी, दुर्गादास मुझे पहचानते तो हैं; परन्तु इस समय नहीं पहचान सके, क्योंकि पहले के देखते अब मुझमें अन्तर भी तो है! भैया, मैं आपका चरण-सेवक महासिंह हूँ! बूढ़ी माँ जी महासिंह पर हाथ फेरती हुई बोली हाँ, तू तो बहुत दुर्बल हो गया है। बेटा ऐसी क्या विपत्ति पड़ी? महासिंह अभी बोला भी न था। कि घर का सेवक नाथू दौड़ता हुआ आया और बोला महाराज, भागो। हथियारबन्द मुगल सिपाही चिल्लाते चले आ रहे हैं।

माँ जी ने कहा — बेटा, कहीं भागकर अपने प्राण बचाओ मुगल बहुत हैं, तुम अकेले हो और महासिंह घायल है, व्यर्थ प्राण देना चतुराई नहीं। दुर्गादास बोले माँ जी, तुम सबको संकट में छोड़कर मैं अपने प्राणों की रक्षा करूं? महासिंह ने समझाया नहीं भाई, माँ जी का कहना मानो। जिन्दा रहोगे, तभी देश का उद्धार कर सकोगे।

दुर्गादास ने कहा — देखो, मुगलों की तलवारों की झन-झनाहट सुन पड़ती है। वह अब आ पहुंचे। भागने का समय कहाँ रहा? और जायें भी तो कहाँ जायँ?

नाथू बोला महाराज! आप लोग पीछे वाले अन्धो कुएं में उतर जाएं।

माता का हठ पूरा करने के लिए दुर्गादास छिपने को चला; परन्तु कुएं में पहले महासिंह को उतारा; क्योंकि वह घायल था। फिर शोनिंग जी की सौंपी हुई लोहे की सन्दूकची उतारी। उसके उपरान्त, तेजकरण और जसकरण को उतारा। इतने में मुसलमानों ने किवाड़ तोड़ डाले। दुर्गादास कुएं में न उतर सका, एक छितरे बरगद के वृक्ष पर चढ़ गया। सिपाहियों ने घर का कोना-कोना ढूंढा पर दुर्गादास न मिला। एक सिपाही मांजी को सरदार मुहम्मद खाँ के पास पकड़ लेने चला। देखते ही मुहम्मद

खाँ ने डपटकर कहा — खबरदार! बूढ़ी औरत को हाथ न लगाना। सिपाही अलग जा खड़ा हुआ। मुहम्मद खाँ आप ही माँ जी के सामने गया और बड़ी नर्मी से बोला माँ जी! दुर्गादास ने कंटालिया के सरदार शमशेर खाँ के भतीजे जोरावर खाँ को मार डाला है। बादशाह की आज्ञा ऐसे अपराध के लिए शूली है। अपराधी के बचाने अथवा छिपाने का भी यही दण्ड है।

माँ जी ने कहा — सरदार! यह तू किससे कह रहा है? मैं दुर्गादास की माँ हूँ। क्या माँ अपने बेटे को अपने हाथों शूली पर चढ़ा देगी?भला मैं बता सकती हूँ कि दुर्गादास कहाँ है? यदि प्राण का बदला प्राण लेना ही न्याय है, तो दुर्गादास अपराधी नहीं। उसने तो जोरावर खाँ को एक राजपूत के मार डालने के बदले में ही मारा है। मुहम्मद खाँ ने कहा — माँ जी! मुझे यह मालूम न था।, कि जोरावर खाँ किसी के बदले में मारा गया है। अब मैं जाता हूँ। परन्तु दुर्गादास को सूर्य निकलने के पहले ही किसी अनजाने स्थान में भेज देना। नहीं तो दूसरे सरदार के आने पर बना-बनाया काम बिगड़ जायगा। यह कहता हुआ शरीफ मुहम्मद खाँ बाहर निकला और अपने सिपाहियों को किसी दूसरे गाँव में दुर्गादास की खोज करने की आज्ञा दे दी। संकट में कभी-कभी हमें उस तरफ से मदद मिलती है, जिधार हमारा ध्यान भी नहीं होता।

मुगलों के चले जाने के बाद, दुर्गादास वृक्ष से उतर कर माँ जी के पास आया। माँ जी ने मुहम्मद खाँ के बर्ताव की बड़ी सराहना की और दुर्गादास को सूर्योदय से पहले ही घर से निकल जाने को कहा — '। दुर्गादास राजी हो गया। परन्तु जसकरण और तेजकरण को माता की रक्षा के लिए छोड़ जाना चाहा। माँ जी ने कहा — ना बेटा! मेरे काम के लिए नाथू बहुत है। तू जसकरण और तेजकरण को अपने साथ लेता जा। न जाने कब कौन काम पड़! एक से दो अच्छे हैं। दुर्गादास सवेरा होते-होते माँ जी को प्रणाम कर अपने भाई और बेटे को साथ ले घर से निकला। चलते समय नाथू को बुलाकर कहा — देख माजी के कुशल-समाचार हमको प्रतिदिन पहुंचाया करना। और मुगलों से सदा सावधान रहना। महासिंह यदि जीवित हो, तो आज ही जैसे बने वैसे माड़ों पहुंचा देना और यदि मर गया हो, तो दाह-क्रिया कर देना और सुन उस लोहे की सन्दूकची को अपने प्राणों के समान समझना; परन्तु खोलकर यह न देखना कि उसमें क्या है? इस प्रकार नाथू को समझा-बुझाकर सूर्योदय के पहले ही अरावली की पहाड़ियों में पहुँच गया। माजी द्वार पर बड़ी देर तक खड़ी रहीं, जब दोनों बेटे और पोता आंख से ओझल हो गये तो घर लौट आयीं और ईश्वर से प्रार्थना करने लगीं भगवान्! हमारे बेटों को कुशल से रखना।

नाथू जो अभी बाहर ही था।, दौड़ता हुआ आया, बोला माँ जी-माँ जी, सामने से कुछ घुड़सवार चले आ रहे हैं। नाथू और कुछ न कह सका था। कि डेढ़-दो सौ मुसलमान सिपाही घर में घुस आये और माँ जी को पकड़ लिया। नाथू घबरा उठा, अपने लिए नहीं, बूढ़ी माँ जी के लिए। वह यह नहीं देख सकता था। कि एक क्षत्रणी मुगल सिपाहियों के बीच उघाड़ी खड़ी हो; परन्तु क्या करे? चार सिपाहियों ने पहले नाथू को ही पकड़ा। सरदार ने पूछा डोकरी, बता, तेरा खूनी लड़का दुर्गादास कहाँ है? माँ जी ने कहा — मैं नहीं जानती, घर पड़ा है। जहाँ हो, खोज लो।

सरदार ने नर्मी से फिर कहा — माजी, सच-सच बता दो, तो मैं दुर्गादास का खून माफ करा दूँगा और मकदूर भर उसकी मदद भी करूंगा। तुम्हें भी बादशाह से बहुत-सा धन दिला दूँगा; क्योंकि दुर्गादास अपराधी नहीं। अपराधी तो वह राजपूत है, जिसके लिए जोरावर खाँ मारा गया। हमें दुर्गादास से और कुछ न चाहिए। हमें उस राजपूत का पता बता दो, वह कौन था। और कहाँ है। यदि बादशाह को पता न लगा, तो उसके बदले तुम सब मारे जाओगे।

माँ जी बोलीं अच्छा हो, मैं बेटे की रक्षा के लिए मारी जाऊं। मैं बूढ़ी हूँ, अब दिन भी मरने के समीप ही हैं; परन्तु बेटों की प्राण-

रक्षा के लिए मैं विश्वासघात नहीं कर सकती। जिसे आश्रय दिया है, उसे स्वार्थवश होकर निकाल नहीं सकते।

यह सुनकर शमशेर खाँ जल उठा और तलवार खींचकर माँ जी की ओर दौड़ा। नाथू जिसे सिपाही पकड़े पास ही खड़े थे, अपनी पूरी शक्ति लगाकर सिपाहियों के बीच से निकला और शमशेर खाँ के वार को रोका, परन्तु घायल होकर गिर पड़ा। दूसरे वार ने वीर माता का काम तमाम कर दिया। राजपूतानी ने कुल-मर्यादा की वेदी पर अपने प्राणों की आहुति दे दी। सरदार को अब भी सन्तोष न हुआ। घर की सम्पत्ति भी लुटवा ली और तब सिपाहियों को लौटने की आज्ञा दी। एक सिपाही वहीं खड़ा रहा; शमशेर खाँ ने पूछा क्यों रे खुदाबख्श! तू क्यों खड़ा है?खुदाबख्श ने कहा — मैं तेरे जैसे जालिम का कहना नहीं मानता, तू मुसलमान नहीं। अपने धर्म का जानने वाला मुसलमान कभी ऐसा अतयाचार नहीं कर सकता। कोई भी वीर पुरुष अबला पर हाथ नहीं उठाता। तूने उस बुढ़िया को क्यों मारा? इसने तेरा क्या बिगाड़ा था।? तूने उससे कहीं घोर अपराधा किया, जो दुर्गादास पर लगाया जा रहा है। बता, दो राजपूतों में से एक घायल हुआ था। और दूसरा मारा गया था।,उसके मारने वाले को किसने शूली दी? शमशेर खाँ बिगड़कर खुदाबख्श की ओर लपका। खुदाबख्श पहले ही से सावधान था।शमशेर खाँ को पटक कर छाती पर

चढ़ बैठा। उसकी फरियाद सुनने वाला भी वहाँ कोई न था। सिपाही पहले ही चले गये थे। खुदाबख्श ने एक हाथ से सरदार का गला दबाया और दूसरे हाथ से करौली निकाली। शमशेर खाँ गिड़गिड़ाकर प्राणों की भिक्षा मांगने लगा। खुदाबख्श ने करौली फिर कमर में रख ली और शमशेर खाँ को छोड़कर बोला यह न समझना, मैंने तुझ पर दया की है। मैंने सोचा, वीर दुर्गादास अपनी बूढ़ी माता का बदला किससे लेगा? अपने क्रोध की भभकती हुई आग किसके रक्त से बुझायेगा? बस, इसलिए मैंने अपने हाथ तुम जैसे पापी के रक्त में नहीं रंगे। यह कहकर खुदाबख्श पीछे फिरा, और शमशेर खाँ कंटालिया की ओर भागा।

खुदाबख्श ने जाकर नाथू और माँ जी की लाश देखी कि शायद अब भी कुछ जान बाकी हो। तब तक नाथू चैतन्य हो चुका था।, यद्यपि घाव गहरा लगा था।

3

खुदाबख्श ने नाथू को जीता देख ईश्वर को धन्यवाद दिया और घाव धोकर पट्टी बांधी। फिर बोला भाई! मुझसे डरो मत, मैं वह मुसलमान नहीं जो किसी का बुरा चेतूं। आखिर एक दिन खुदा

को मुँह दिखाना है। मेरे लायक जो काम हो, वह बतलाओ। मुझे अपना भाई समझो। नाथू बड़ा प्रसन्न हुआ। माँ जी की लोथ एक कोठरी में रखकर फिर दोनों ने मिलकर महासिंह को कुएं से निकाला। बाहर की वायु लगने से धीरे-धीरे महासिंह भी चैतन्य हो गया। नाथू ने दुर्गादास का वन जाना, मुसलमानों का धावा, माँ जी का मरना और खुदाबख्श की कृति संक्षेप में कह सुनाई। महासिंह की आंखों में जल भर गया। कहने लगा नाथू! यह सब मुझ अभागे के कारण हुआ। अच्छा होता, कि मैं वहीं मारा जाता तो अपने आदमियों की यह दशा तो न देखता।

नाथू बोला महाराज, जो होना था।, हो लिया। अब आप खुदाबख्श के साथ माड़ों जाइए। और मैं स्वामी के पास जाता हूँ। खुदाबख्श ने कहा — नाथू हो सके तो मुझे दूसरे कपड़े ला दो, जिसमें हमें कोई पहचान न सके। नहीं तो हमारी खैरियत नहीं। नाथू ने एक जोड़ा कपड़ा और दो घोड़े ला दिये। महासिंह लोहे की संदूकची लेकर, खुदाबख्श के साथ माड़ों चल दिया, और नाथू अरावली की पहाड़ियों में घूमने लगा। एक तो बूढ़ा, दूसरे घाव, तीसरे पहाड़ियों का चढ़ना; नाथू एक जगह बैठ गया। सोचने लगा परमात्मा! यह दो ही दिन में क्या हो गया? हम जहाँ कल आनन्द करते थे, आज वही राज-भवन श्मशान हो गया। जिसकी धाक सारे मारवाड़ में थी, आज न जाने किस पहाड़ी की गुफा में छिपा

पड़ा है। बूढ़ी माँ जी की लोथ घर में पड़ी सड़ रही है। हाय! जिसके बेटे का सामना बड़े-बड़े शूरवीर नहीं कर सकते थे, उसकी यह दशा! एक दुष्ट गीदड़ के हाथों मारी जाय! प्रभु, तेरी लीला अद्भुत है! आज ही मेरे स्वामी ने मुझे वृद्धा माँ जी की सेवा सौंपी थी। और मैं आज ही उनके मरने का समाचार लेकर जाता हूँ। हाय! स्वामी के पूछने पर मैं क्या उत्तर दूँगा? कैसे कहूँगा, वृद्धा माँ जी को दुष्ट शमशेर खाँ ने मेरे जीते-जी मार डाला। हे प्रभु! यह कहने के पहले ही मैं मर क्यों न जाऊं? नहीं! नहीं! यदि मर जाता हूँ तो स्वामी को दुष्ट का नाम कौन बतायेगा? हाय! अभागे नाथू! यह कहते-कहते वह अचेत हो गया। दुखियों पर दया करने वाली निद्रा देवी ने उसे अपनी गोद में लिटा लिया और वायु ने अपने कोमल झकोरों से थपककर सुला दिया। सवेरा हुआ, नाथू उठ बैठा और एक बहते हुए झरने से जल लेकर हाथ-मुँह धोया। ईश्वर की प्रार्थना कर एक ओर चल दिया, दोपहर होते-होते उस पहाड़ी पर पहुंचा, जहाँ दुर्गादास छिपा था। अपना परिचय देने के लिए राजपूती तलवार का बखान करते हुए मारू रागिनी गाई, जिसे सुनकर वीर दुर्गादास गुफा से बाहर निकला नाथू ने अपने स्वामी को देखा, तो दौड़कर चरणों पर गिर पड़ा। दुर्गादास ने पूछा नाथू हमारी मांजी तो कुशल से हैं?

नाथू ने इस प्रश्न को टालकर कहा — महाराज कल ही आपके चले आने के बाद महासिंह जी को कुएं से निकाला, वे जीवित थे। लोहे वाली पेटी लेकर माड़ों चले गये और (अंगूठी देकर) चलते समय यह अमूल्य अंगूठी देकर कहा — नाथू, यह अंगूठी अपने स्वामी को देना और कहना जिसके द्वारा यह अंगूठी मेरे पास भेजी जायगी, मैं उसके आज्ञानुसार अपने प्राण भी दे सकूंगा। जसकरण और तेजकरण दोनों माता के कुशल समाचार के लिए व्याकुल थे। बोले नाथू! और बातें पीछे करना। पहले माँ जी की कुशल कह। नाथू सूख गया, आंखों में आँसू भर गये। दुर्गादास ने घबड़ाकर कहा — नाथू! क्यों? बोलता क्यों नहीं? क्या हुआ? शीघ्र कह। नाथू ने रो-रोकर शोक वृत्तान्त विस्तार सहित कह सुनाया। और शमशेर खाँ की तलवार आगे फेंक दी।

दुर्गादास की आँखें क्रोध से लाल हो गयीं। तलवार हाथ में उठा ली और बोला हे, सर्वशक्तिमान् जगत के साक्षी! मैं आपके सामने सौगन्ध लेता हूँ, जिस पापी ने हमारी निर्दोष वृद्धा माता को मारा है, उसे इसी तलवार से मारकर जब तक रक्त का बदला न ले लूँगा, जलपान न करूंगा, नाथू ने कांपते स्वर में कहा — हाँ, हाँ, स्वामी! यह क्या करते हैं? मुगल बहुत हैं और आप अकेले, यदि आज ही बदला न मिल सका, तो कब तक आप बिना जलपान के रहेंगे? दुर्गादास बोला नाथू! नाथू! तू भूलता है। मैं अकेला नहीं, मेरा

सत्य, मेरा प्रभु मेरे साथ है। सत्य की सदैव जय होती है। अबला पर हाथ उठानेवाला बहुत दिन जीवित नहीं रह सकता। ईश्वर ने चाहा, तो आज ही माता के ऋण से उऋण हो जाऊंगा। यदि ऐसा न किया गया, तो एक देश पर प्राण देने वाली क्षत्रणी की गति कदापि न होगी।

सूर्य अस्त हो रहा था। अंधेरा बढ़ता जा रहा था। दुर्गादास ने नाथू को अपनी अंगूठी देकर कहा — तू महासिंह के पास चला जा और मेरी अंगूठी देकर कहना, दुर्गादास अपनी वृद्धा माँ जी का बदला लेने के लिए कंटालिया गये हैं, यदि जीते रहे तो कभी मिलेंगे, नहीं तो उनको अन्तिम राम-राम। और उसी क्षण अपने बेटे और अपने भाई को साथ लेकर कंटालिया की ओर चल दिये। पहर रात बीते पटेलों की बस्ती पहुंचे। रणसिंह लगभग एक सौ राजपूत वीरों को साथ ले वीर दुर्गादास की अगवानी के लिये आया। दुर्गादास राजपूतों को देखकर प्रसन्न हुआ। शमशेर खाँ वाली तलवार ऊंची उठा कर बोला भाइयो! यह तलवार दुष्ट शमशेर खाँ कंटालिया के सरदार की है। उसने हमारी पूज्य माता की हत्या करके देश का अपमान किया है। मैंने माँ जी का बदला लेने के लिए सौगन्ध ली है। यदि तुममें राजपूती का घमण्ड है, यदि तुममें देश के उद्धार की इच्छा है, यदि तुम अपनी

निर्दोष वृद्धा माताओं, बहिनों और बेटियों की लाज रखना चाहते हो, तो शत्रुओं से बदला लेने की सौगन्ध उठाओ।

दुर्गादास के जलते हुए शब्द सुनकर वीर राजपूतों का रक्त उमड़ उठा और एक साथ ही सब सरदार बोल उठे हम बदला लेंगे। जीते-जी आपकी आज्ञा का पालन करेंगे। तुरन्त सबों ने म्यान से तलवारें खींच लीं और दुर्गादास के पीछे-पीछे चल दिये।

आधी रात बीत चुकी थी। जान की बाजी खेलने वालों का दल कंटलिया पहुंचा और किले पर धावा बोल दिया। द्वार बन्द था। उसे तोड़कर सब अन्दर घुसे, जो सामने आया, उसे वहीं ठण्डा कर दिया। हथियारों की झनझनाहट सुनकर शमशेर खाँ चौंक उठा। सामने देखा तो वीर दुर्गादास खड़ा था। दुर्गादास ने कहा — ओ! निर्दोष अबला पर हाथ उठाने वाले पापी शमशेर खाँ, सावधान! अपने काल को सामने देख शमशेर खाँ गिड़गिड़ाने लगा।

दुर्गादास ने कहा — संभल जा। राजपूत कभी निहत्थे शत्रु पर वार नहीं करते। देख, यह वही तलवार है, जिसने वृद्धा माँ जी का रक्तपान किया है। अभी प्यासी है, अब तेरे रक्त से इसकी प्यास बुझाऊंगा।

शमशेर खाँ सजग होकर सामने आया। वीर दुर्गादास ने एक ही वार में उसका सिर उड़ा दिया। तब तलवार वहीं फेंक दी और

अपने सहायक शूरवीरों को साथ ले कल्याणगढ़ की ओर चल दिया।

दुर्गादास की इच्छा थी कि माँ जी का अग्नि संस्कार कर दिया जाय। इसलिए कल्याणगढ़ गया भी था।, परन्तु मुगल सिपाहियों ने पहले ही दुर्गादास का घर ही नहीं, सारा कल्याणगढ़ ही फूंक दिया था। अपने गाँव की दशा देख, बेचारे की आंख में आँसू भर गये। थोड़ी देर मौन खड़ा रहा। फिर क्रोध में आकर बोला भाइयों! जब कोई अपराध न करने पर शत्रुओं ने माँ जी को मार डाला, घर-बार लूट लिया और गाँव जला दिया, तो फिर उससे मेल की क्या आशा की जा सकती है। ऐसे हत्यारों से मेल करके हम मारवाड़ को अपमानित नहीं कर सकते। हमारा धार्म केवल पहाड़ियों में छिपकर जान बचाना ही नहीं है। अब तो गाँव-घर न होने पर मारवाड़ ही हमारा घर है; वृद्धा माँ जी की जगह मारवाड़ की पवित्र भूमि ही हमारी माता है; इसलिए जब तक अपनी माता के संकटों को दूर न कर लूँगा, (म्यान से तलवार निकालकर) तब तक म्यान से निकली हुई तलवार फिर म्यान में न रखूंगा।

यह प्रण करके वीर दुर्गादास अपने बेटे, भाई और थोड़े-से राजपूतों को साथ ले अरावली पहाड़ की ओर चला गया।

वीर दुर्गादास से विदा होकर नाथू दूसरे दिन माड़ों पहुंचा। दुर्गादास का सेवक जानकर द्वारपाल उसे महाराज महासिंह के पास ले गया। महासिंह ने नाथू को आदर के साथ बैठाया, और वीर दुर्गादास का सन्देश सुना। थोड़ी देर उदास मन हाथ-पर-हाथ धारे बैठे रहे। फिर बोले नाथू! बड़े दुख की बात है कि जिसके लिए दुर्गादास ने मुगलों से बैर किया, वह राजसुख भोगे! धिक्कार है ऐसे जीवन पर! अपने प्राण बचाने वाले की नेकियों का कुछ भी बदला न दे सका। नाथू, मैं कल ही तुम्हारे साथ चलूँगा।

महासिंह की स्त्री तेजोबाई, जो वहीं बैठी-बैठी यह कथा। सुना रही थी, बोली महाराज! दुर्गादास की सहायता का विचार भूलकर भी न करना। अभी आपके घाव भी अच्छे नहीं हुए और फिर मुगलों का सामना करने का साहस करने चले। मैं नहीं जानती, आप मुट्ठीभर राजपूत लेकर इतने बड़े मुगल बादशाह का सामना क्योंकर करोगे? पतिंगों के समान दीपक में जल मरना कोई चतुराई है? दुर्गादास ने बैर करके क्या लाभ उठाया? परोसी हुई सोने की था।ली में लात मत मारी। जोरावर खाँ को मारकर कौन सुख पाया? यही न कि घर-बार लुटवाया, माँ जी की हत्या कराई और अब जंगलों-पहाड़ों की हवा खाते फिरते हैं। क्या आप भी ऐसे सिरफिरों की सहायता करके राज्य खोना चाहते हैं? ये वाक्य महासिंह के कलेजे में तीर की तरह लगे। परन्तु घर में

ही फूट न पैदा हो जाय, इसलिए क्रोध न किया। बोला तेजोबाई! क्या दुर्गादास सिरफिरा है, जिसने तेरी बेटी की लाज रखी और सुहाग रक्षा की? दुर्गादास ने बेटों की लाज रखी और सुहाग की रक्षा की? दुर्गादास ने अपने लिए नहीं, किन्तु मेरे प्राणों को बचाने के लिए मुगलों से बैर बसाया। यदि जोरावर खाँ मारा न गया होता, तो आज तेरी बेटी लालवा की ईश्वर जाने कौन दशा होती। हाँ! समय निकल जाने पर तू ऐसे वीर पुरुष को मूर्ख कहती हैं! धिक्कार है, तुझे और तेरे जन्मदाता को। ब्रह्मा को तुझे क्षत्रणी न बनाना था। तेजबा राजसुख की भूखी थी, उसे महासिंह की सिखावन कैसे अच्छी लगती? उठकर दूसरी जगह चली गई; और अपने भतीजे मानसिंह को बुलाकर कहा — बेटा, अपने काका को समझा दो, बैठे-बैठाये दूसरे का झगड़ा अपने सिर न लें। इसमें कोई भलाई नहीं। मानसिंह ने कहा — काकी, यह दूसरे का झगड़ा नहीं। यह अपना ही है। वीर दुर्गादास ने मुगलों से जो बैर बढ़ाया, वह हमारे ही कुल की लाज रखने के लिए। इसमें दुर्गादास का क्या स्वार्थ? दुखियों की सहायता करना राजपूतों का धार्म है। फिर दुर्गादास तो हमारे लिए कष्ट सहता है,यदि उसकी सहायता न की जाय तो काकी, क्या हमारी राजपूती में कलंक न लगेगा? यदि काका का जाना तुम्हें अच्छा न लगता हो, तो मैं चला जाऊँगा।

मानसिंह काकी से विदा हो, महासिंह के पास आया, और बोला काकाजी! अभी आपके घाव अच्छे नहीं हुए हैं; इसलिए आप अपने लश्कर का सरदार मुझे बनाकर दुर्गादास की सहायता के लिए जाने की आज्ञा दीजिए। मानसिंह अपने भतीजे के साहस पर बड़े प्रसन्न हुए और तीन सौ वीर राजपूतों को बुलाया। महासिंह ने उनके सामने खड़े होकर कहा — ', भाइयों, मैं किसी राजपूत को उसकी इच्छा बिना ही अपने स्त्री-पुत्र अथवा अपने प्राणों का मोह हो, तो अच्छा है कि वह अभी से अपने घर चला जाय। सबल शत्रु के सामने भागकर राजपूतों की हंसाई न करे। शूरवीरों ने कहा — महाराज! देश को स्वतन्त्र किये बिना आगे बढ़ा हुआ पैर अब पीछे नहीं पड़ सकता। मरने पर स्वर्ग, और जीते रहने पर सुख और यश, सब प्रकार भलाई है। मानसिंह वीरों को उत्साहित देख बड़े प्रसन्न हुए। तुरंत तीन सौ की तीन टोलियाँ बनाईं। एक टोली रूपसिंह उदावत के साथ भेजी। और दूसरी टोली मोहकमसिंह मैड़तिया के साथ किसी दूसरे की मार्ग से भेजी। थोडे-थोड़े राजपूतों को पृथक्-पृथक् मार्गों से भेजने का कारण था।, कि इतने हथियारबंद राजपूतों को एक साथ जाते हुए, देखकर मुगलों को सन्देह अवश्य होगा। रोक-टोक में मारकाट तो राजपूतों के लिए अनहोनी बात थी ही नहीं, उसका फल यह होता कि अपने काम में बाधा पड़ती। और दुर्गादास की सहायता

करना तो दूर रहा, अपनी रक्षा कठिन होती। इन्हीं अड़चनों के बचाव के लिए दो टोलियाँ पहले भेज दी, और तीसरी टोली मानसिंह ने अपने साथ ले जाने के लिए रोक ली।

झुटपुटा ही चला था। मानसिंह तेजवा और लालवा से विदा होकर बाहर आये। चाहते थे, कि राजपूतों को चलने की आज्ञा दें, अचानक दक्षिण की ओर देखा, तो काले बादलों के समान हवा में उड़ते हुए मुगल सिपाही आ रहे थे। देखते ही मानसिंह खबर देने भीतर गया। इधर मुगलों ने गढ़ी घेर ली। राजपूत लड़ाई के लिए तो सजे खड़े ही थे, भिड़ गये और घमासान मारकाट होने लगी। मानसिंह ने कहा — बेटा मानसिंह! जैसे बने, वैसे लालवा को यहाँ से निकाल ले जाओ, हम केवल कुल में कलंक ही लगने को डरते हैं, मरने को नहीं। मानसिंह झपटकर लालवा के पास पहुंचा और समझा-बुझाकर उसे सुरंग वाली कोठरी में ले गया। लालवा बोली भाई! वृद्ध नाथू को किसी प्रकार बचाना चाहिए। मानसिंह ने लालवा से कहा — अच्छा बहन! तुम यहीं खड़ी रहो, मैं नाथू के लिए जाता हूँ। यदि मेरे आने में देर हो, तो सीधी चली जाना, थोड़ी ही दूर पर तुमको महेन्द्र नाथ बाबा की मढ़ी मिलेगी। तुम वहाँ बाबा के पास ठहरना, मैं आ जाऊंगा। मानसिंह सुरंग का मुँह बन्द कर बाहर आया। देखा तो मुगल सिपाही गढ़ी के चारों ओर भर गये। चन्द्रसिंह, जो लालवा की

सुन्दरता पर मोहित था।, पागलों के समान कोठरी-कोठरी में लालवा की ही खोज कर रहा था। मानसिंह एक झरोखे से छिपकर देख रहा था।, अचानक तीन सिपाही इधर ही पहुंचे गये। मानसिंह ने तुरन्त ही तीनों को यमपुर भेज दिया और वहाँ से हटकर दूसरी ओर चला। यहाँ भी एक मुगल सिपाही दीख पड़ा। मानसिंह उसे मारना ही चाहता था। कि किसी ने पीछे से कहा — हाँ, हाँ, यह खुदाबख्श है। हाथ रोक लिया। मुड़कर देखा, तो नाथू खड़ा था। तुरन्त ही तीनों मिलकर सुरंग में उतरे। लालवा अभी यहीं खड़ी थी। पुकारा भाई मानसिंह! क्या नाथू को ले आये? नाथू ने कहा — हाँ बेटी, मैं कुशल से हूँ और खुदाबख्श को साथ ले आया हूँ। लालवा ने चलते- चलते पूछा नाथू! हमारे माता-पिता की क्या दशा होगी? नाथू ने कहा — बेटी! मेरे ही सामने पकड़े गये थे। इसके बाद क्या हुआ मैं नहीं जानता, मुझे तो महाराज ने भाग जाने का संकेत किया। मैं उनका अभिप्राय समझकर भागा। बेटी! अपने लिये नहीं; किन्तु लोहे वाली सन्दूक के लिए।

4

खुदाबख्श ने कहा — बेटी लालवा अपने माता-पिता की चिन्ता मत करो। मैं मुसलमान हूँ; इसलिए अपने पकड़े जाने का भय तो था। ही नहीं, वहीं खड़ा रहा और सबकी सुनता रहा। थोड़ी ही देर में सारा भेद खुल गया। देशद्रोही चन्द्रसिंह ने मंगनी के लिए महाराज को एक पत्र लिखा था। कदाचित् यह बात तुझे न मालूम हो, महाराज उस दुष्ट स्वभाव से परिचित थे, इसलिये उसकी विनय पर जरा भी ध्यान न दिया। उसी बात पर चन्द्रसिंह ऐंठ गया और महाराज को नीचा दिखाने का उपाय सोचने लगा। दैवयोग से किसी प्रकार उसे नाथू का आना और वीर दुर्गादास की सहायता के लिए यहाँ से राजपूतों को भेजा जाना मालूम हो गया। तुरन्त मुगल सरदार इनायतखां के पास दौड़ा गया और महाराज को राजद्रोही बताकर माड़ों पर चढ़ाई कर दी। यह सब था। तेरे ही लिए; परन्तु ईश्वर की कृपा थी, कि तू उस देशद्रोही दुष्ट के हाथ न लगी,नहीं तो आज बड़ी खराबी होती। जब लाख ढूंढने पर भी चन्द्रसिंह ने तेरा पता न पाया, तब तेरे माता-पिता को पकड़कर सोजितगढ़ में रखने का विचार किया, ईश्वर ने चाहा तो दो ही तीन दिन में वे छूट जायेंगे।

सुरंग समाप्त हो गई, तो मानसिंह ने आगे बढ़कर सुरंग का मुँह खोला और एक-एक करके सबको बाहर निकाला। मढ़ी में मनुष्यों की आहट पाते ही बाबा महेन्द्रनाथ जी आ पहुंचे। सबों ने उठकर प्रणाम किया। बाबाजी ने आशीर्वाद दिया। मानसिंह ने पूछने के पहले ही मुगलों का धावा और भागने का कारण कह सुनाया। बाबाजी ने लालवा की ओर देखा और उसकी पीठ पर हाथ फेरकर बोले बेटी! अब किसी बात की चिन्ता न करो। यहाँ आनन्द से रहो, तुम्हारे लिए अभी एक दासी बुलाये देता हूँ। बेटी, यहाँ किसी की सामर्थ्य नहीं, कि तुम्हें कष्ट पहुंचा सके। बाबाजी ने सबको ढाढ़स दिया और सोने के लिए स्थान बताकर दूसरी मढ़ी में चले गये। डर और चिन्ता में नींद कहाँ? जैसे-तैसे रात कटी, सबेरा हुआ, खुदाबख्श ने जाने की आज्ञा मांगी। बाबा महेन्द्रनाथ ने कहा — बेटा! ऐसे उतावले क्यों हो रहे हो? चले जाना। खुदाबख्श ने कहा — बाबाजी, मुसलमान हूँ; इसलिए मुझे मुसलमानों को अत्याचार करते देख लाज लगती है। सच्चे मुसलमान का धार्म नहीं कि दूसरे की माँ-बेटी का सतीत्व नष्ट करें; दुखियों को सतायें। बहादुर सिपाही कहलाकर अबलाओं पर हाथ उठायें। अब मुझे क्षमा कीजिए और आज्ञा दीजिए, जहाँ तक हो सके, इस देश से शीघ्र ही चला जाऊं। फिर वह मानसिंह से बड़े प्रेम के साथ गले मिला। दोनों ने परस्पर तलवारें बदली

और खुदाबख्श बाबाजी को प्रणाम कर चल दिया। थोड़ी दूर चलकर पीछे मुड़ा और बोला भाई मानसिंह! हमारी तलवार से किसी प्राणों की भिक्षा मांगने वाले कायर को न मारना। मानसिंह की आंखों में आँसू आ गये। खड़े-खड़े एकटक इस सच्चे मुसलमान सिपाही की ओर देखते रहे, जब तक आंखों से ओझल न हो गया।

अभी बाबा महेन्द्रनाथ, नाथू, लालवा और मानसिंह बैठे खुदाबख्श ही की बातचीत कर रहे थे, कि देखा कुछ मुगल सिपाही एक राजपूत को बड़ी निर्दयता से मारते हुए लिए जा रहे हैं। बाबाजी से देखा न गया। स्वभाव दयावान् था। दौड़कर पूछा भाई, इस बेचारे को क्यों मार रहे हो?सिपाहियों ने कहा — बाबाजी! राजद्रोही महासिंह का पक्षपाती है, इसके पास महासिंह की अंगूठी भी है। बाबा महेन्द्रनाथ ने कहा — यह कोई प्रमाण नहीं। थोड़ी देर के लिए मान लो, इसने अंगूठी किसी से छीन ली हो अथवा महासिंह ने ही दे डाली हो, या चुरा लाया हो, तो इस पर महासिंह का पक्षपाती होने का दोष कैसे लग सकता है? तुम्हारे धार्म-ग्रन्थ कुरान में किसी निर्दोष को मारना महापाप लिखा है। इसलिए इसे अभी छोड़ देंगे। बाबाजी की बातें सरदार को जंच गई, और राजपूत को छोड़ दिया।

बाबाजी राजपूत को अपनी मढ़ी में ले गये और पूछा बेटा, यह मानसिंह की अंगूठी कहाँ से ले आये और कहाँ लिये जा रहे थे? राजपूत ने कहा — स्वामीजी! आपने हमारे प्राण बचाये हैं इसलिए आप पर भरोसा करना तो उचित है ही; परन्तु आप ही प्राण क्यों न ले लें, उस समय तक कुछ न बताऊंगा जब तक मुझे यह विश्वास न हो जायेगा, कि आप हमारे हितू हैं। राजपूत की आवाज नाथू को कुछ पहचानी हुई जान पड़ी। बाहर आया, देखते ही राजपूत ने पहचान लिया और बोला नाथू! तू यहाँ क्या कर रहा है? महासिंह ने दुर्गादास की सहायत करने का कोई प्रबंधा किया या नहीं? नाथू अचम्भे में आकर बोला क्या सहायता नहीं पहुंची? कल ही दो सौ की दो टोलियां भेजी गई हैं। राजपूत ने कहा — नहीं नाथू! अभी कोई नहीं पहुंचा! मुसलमानों ने चारों ओर से घेर लिया है। अब कहीं भोजनों का भी ठिकाना नहीं। यदि दो दिन और यों ही बीते तो फिर मारवाड़ सर्वनाश हो जायगा। बाबा महेन्द्रनाथ ने गरज कर कहा — क्यों निराश होते हो? मारवाड़ स्वतंत्र होगा और वीर दुर्गादास का मनोरथ सफल होगा। पुरुष हो पुरुषार्थ करो, आज ही रात को अपने काका कल्याणसिह के पास जाओ और जो कुछ सहायता मिल सके, लेकर अरावली पहुँचो। तुम्हारी जय होगी।

बाबा महेन्द्रनाथ की आज्ञानुसार मानसिंह और करणसिंह बहन लालवा से विदा हो लगभग आधी रात को कल्याणसिंह के घर पहुंचे। देखा तो चौकीदार भी बेखबर सो रहे थे। जगाया, तो एक-एक करके सभी जग पड़े। ठाकुर घबरा उठे। पूछा बेटा मानसिंह! कुशल तो है, कैसे आये! मानसिंह! पैर छूकर बैठ गया और बोला काकाजी, क्या आपने माड़ों के समाचार नहीं सुने! दुष्ट चन्द्रसिंह अपने साथ सरदार इनायत खाँ को लाया और गढ़ी लुटवा ली, काका और काकी को पकड़ ले गया। यह सब कुछ बहन लालवा के लिए था। वीर दुर्गादास ने भी लालवा तथा। काका की रक्षा के लिए ही जोरावर खाँ को मारा था।, जिसका फल अब भोग रहा है। घर लुटा, गाँव जला, माँ जी की हत्या हुई, अरावली की पहाड़ी में जा छिपा वहाँ भी सुख नहीं। चारों ओर से मुगलों ने घेर रखा है; इसलिए काका जी, हम चाहते हैं कि ऐसे उपकारी पुरुष की आप ही कुछ सहायता करें।
कल्याणसिंह ने कहा — बेटा, यह तो सच है; परन्तु हमारा छोटा-सा गाँव है, कहीं औरंगजेब को मालूम हो गया तो सत्यानाश कर डालेगा, हम कहीं के न रहेंगे। डर तो यही है। मानसिंह ने कहा — काकाजी! राजपूत कभी इतना डरकर तो नहीं रहे, जितना आप डरते हैं। देश की स्वतन्त्रता पर मर मिटना राजपूतों का धार्म ही है और यदि आप हिचकते हैं तो आप स्वयं युद्ध के लिए न

जाइए, थोड़े से वीर राजपूत जो आपकी आज्ञा में हों, सहायता के लिए भेज दीजिये। इसमें आप पर किसी प्रकार का दोष नहीं लगाया जा सकता है। मानसिंह के समझाने और हठ करने पर कल्याणसिंह ने साठ राजपूतों को दुर्गादास की सहायता के लिए जाने की आज्ञा दी। मानसिंह दूसरे दिन शाम को साठ राजपूतों को साथ लेकर अरावली की ओर चला।

5

कंटालिया के सरदार शमशेर खाँ के मारे जाने की खबर पाते ही औरंगजेब आपे में न रहा, तुरन्त आज्ञा दी दुर्गादास को जैसे हो सके, पकड़कर हमारे सामने लाया जाय, जीता हुआ या मरा हुआ, जैसा भी हो। दूसरे ही दिन मुगलों के चारों ओर से अरावली को घेर लिया। ऊपर चढ़कर राजपूतों का सामना करने का कोई साहस न करता था।, इसलिए भूखों ही मार डालने की सलाह हुई। पहाड़ी पर न किसी को न आने दें। और न जाने दें। यहाँ तक कि लोथ भी खोलकर देख लेते थे। बेचारे दुर्गादास और उसके साथी राजपूतों को कन्दमूल भी खाने के लिए मिलना कठिन हो गया। आज तीन उपवास हो चुके थे। दुर्गादास अपने

साथी राजपूतों का कष्ट न देख सका। बोला भाइयो! आज नाथू को गये चार दिन हुए; परन्तु न आप ही आया और न सहायता के लिए कोई राजपूत ही भेजा। ठीक है, वह किसे भेजता, वह तो मानसिंह के पास भींख मांगने गया था। भाइयो! एक समय था।, जब राजपूतों की वीरता संसार में बखानी जाती थी और थोड़े ही दिन हुए महाराज जसवन्तसिंह के मरने के बाद बीस हजार मुगल सिपाहियों पर ढाई सौ राजपूत टूट पड़े थे। अब आज वही राजपूत मुट्ठी भर मुगलों से डरकर घर से नहीं निकलते। भाइयो! अच्छा होगा कि तुम भी अपने-अपने घर जाओ, मुझे और मेरे अभागे देश को भगवान के भरोसे छोड़ दो। मेरे साथ क्यों भूखे मरोगे? मैं तो जो प्रण कर चुका, वह कर चुका। रहूँगा, तो स्वतन्त्र होकर, नहीं तो भू-माता के लिए लड़कर सदैव के लिए माता की पवित्र गोद में सोया रहूँगा।

दुर्गादास को उदास देखकर, राजपूतों ने उत्तोजित होकर कहा — महाराज, जो आपका प्रण। जहाँ महाराज, वहीं हम। जब तक मारवाड़ स्वतन्त्र न कर लेंगे, जीते जी घर न लौटेंगे।

भूखों मरते हुए राजपूतों का ऐसा साहस देख, वीर दुर्गादास की मुर्झाई हुई आशा-लता एक बार फिर हरी हो गई। मुख पर प्रसन्नता झलक उठी। बोला अच्छा, तो भूखों मरने से लड़कर ही

मरना अच्छा। सहायता मिले या न मिले! चलो, इस पहाड़ी के नीचे उतरें।

यह रास्ता बड़ा बीहड़ा था। मनुष्य तो क्या, पशु भी जाते डरते थे, परन्तु मरता क्या न करता। वही कहा — 'वत थी। लोग नीचे उतरने लगे। इतने में दुर्गादास ने 'राम नाम सत्य है, सुना, वहीं ठहर गये। देखा, तो सामने से चार आदमी एक अर्थी ला रहे हैं; उसके पीछे एक आदमी अधाजला कंडा और एक हांडी लटकाये है। पीछे-पीछे लगभग सौ आदमी और हैं, और सब-के-सब इधर ही आ रहे हैं। दुर्गादास को सन्देह हुआ कि श्मशान तो उधर है, यह सब हमारी ओर क्यों आ रहे हैं? जब उन आदमियों ने अर्थी वीर दुर्गादास के सामने उतारी और लगे खोलने तो दुर्गादास और भी चकराया। सोचने लगा है भगवान! यह बात क्या है? अर्थी खुलते ही एक वीर राजपूत उठकर दुर्गादास के पैरों पर गिर पड़ा। दुर्गादास ने आशीर्वाद देकर पूछा भाई, तुम कौन हो? यह सब मैं कौतुक देख रहा हूँ या स्वप्न? रूपसिंह उदावत ने, जो पीछे रह गया था।, आगे बढ़कर राम-जुहार की और बोला महाराज! इस वीर राजपूत का नाम गंभीरसिंह है, आपके पास आने के लिए इधर-उधर विकल घूम रहा था।, दैवयोग से यह हमें मिला। हम लोग भी इसी की भांति व्याकुल थे। क्या करते? चारों ओर से मुगलों ने पहाड़ी को घेर रखी है। गंभीरसिंह ने यही उपाय सोचा

और ऐसी सांस चढ़ाई कि तीन जगह खोलकर देखने पर भी मुगलों को सन्देह न हुआ। सच पूछिए तो आपकी सहायता पहुंचाने वाला महासिंह नहीं; किन्तु गंभीरसिंह ही है।

दुर्गादास ने गंभीरसिंह को छाती से लगा लिया और कहा — बेटा गंभीरसिंह! आज से हमें विश्वास हो गया कि मारवाड़ देश तेरा आजीवन ऋणी रहेगा। तेरी चतुराई, साहस और परिश्रम के बल पर ही मारवाड़ स्वतंत्र होगा, रूपसिंह उदावत ने कहा — महाराज! सूर्य अस्त हो चुका,मार्ग अटपट है, अंधोरा हो जाने से कष्ट की सम्भावना है इसलिए जहाँ तक हो सके, शीघ्र ही चलिए। राजपूत भी भूखे हैं और इस मार्ग की रोक पर मुगल भी इने गिने हैं। बस थोड़ा ही परिश्रम करने पर पौ बारह है। वीर दुर्गादास की आज्ञा पाते ही राजपूत पहाड़ी से उतरे और भूखे सिंह के समान मुगलों पर टूट पड़े। क्षण मात्र में ही वीर राजपूतों ने सैकड़ों मुगलों का सिर धड़ से अलग कर दिया। इतने मुगलों में कोई बेचारा घायल भी न बचा कि अपने सरदार को खबर देता।

वीर दुर्गादास अब निश्चिन्त था।, किसी प्रकार की बाधा दिखाई न देती थी। अरावली की पहाड़ियों को पार करके लोग एक मैदान में यह सलाह करने के लिए जमा हुए कि अब क्या करना चाहिए? कहाँ चलना चाहिए? एकाएक किसी कि आवाज ने सबको चौंका दिया....'अरे दुष्ट। मुझे क्यों मारता है? क्यों नष्ट करता

है? मैंने तेरा क्या बिगाड़ा है? अरे, रक्षा करो, कोई बचाओ। पापी, अबला पर क्या बल दिखाता है?अच्छा, मुझे भी तलवार दे, वीर दुर्गादास उधर ही दौड़ा, जिधार से यह आवाज आ रही थी। पीछे-पीछे गंभीरसिंह और जसकरण भी थे। दुर्गादास ने यह देखा कि एक अबला पर एक पुरुष बलात्कार करना चाहता है; परन्तु अन्धाकार के कारण पहचान न सका। डपटकर पूछा तू कौन है? मैं क्या कर कहा — हूँ, तुझसे प्रयोजन? दुर्गादास ने कहा — क्या सीधे न बतायेगा? इतना कहना था। कि तलवार खींच सामने आया और चाहता था।, कि दुर्गादास पर वार करे, इसके पहले ही गंभीरसिंह ने उसका सिर धड़ से अलग कर दिया। दुर्गादास ने स्त्री से पूछा बेटी, तुम कौन हो और यह दुष्ट कौन था।? इसने तुमको कहाँ पाया? बेटी ने कहा — पिताजी, मैं माड़ों के राजा महासिंह की कन्या लालवा हूँ और यह पापी चन्द्रसिंह था। अपने किये का फल पा गया। दुर्गादास ने पीछे किसी की आहट पाई, मुड़कर देखा, जसकरण और गंभीरसिंह दौड़े जा रहे हैं। दुर्गादास हाथ में तलवार लिये लालवा की रक्षा के लिए वहीं खड़ा रहा। थोड़ी देर में गंभीरसिंह और जसकरण हाथों में बागडोर पकड़े पांच घोड़े ले आये और बोले महाराज! इस पापी के तीन साथी और थे। हमने उन्हें देख लिया और पीछा किया। घोड़ों पर

चढ़कर भाग जायें परन्तु यह कैसे होता? उन्हें तो मौत खींच लाई थी। वे तो नरक गये और घोड़े आपके लिए छोड़ गये।

लालवा ने गंभीरसिंह को बोली से पहचाना और पुकारा भाई गंभीरसिंह! क्या आपत्ति में आप भी हमको नहीं पहचानते? गंभीरसिंह ने कहा— ' कौन लालवा! अरी, तू यहाँ पापियों में कैसे आ फंसी? लालवा ने कहा — माता तेजबा के कारण! भाई, तेजबा में क्षत्रणी की कुछ भी ऐंठ नहीं, वह सदैव राज-सुख की भूखी रहती है। कदाचित पापी चन्द्रसिंह ने किसी प्रकार लालच देकर तेजबा को फंसाया लालवा मेरी अंगूठी पाकर अवश्य ही अंगूठी देनेवाले के साथ चली जायेगी। गंभीरसिंह ने कहा — बहन लालवा! यह कैसे विश्वास किया जाय, कि तेजबा और काका महासिंह को पकड़ लिया, तो हो सकता है कि अंगूठी उतार ली हो। लालवा ने कहा — नहीं, मान लिया जाय कि चन्द्रसिंह ने अंगूठी छीन ली थी, तो हमारा पता कैसे पाता, कि मैं सुरंग से बाबा महेन्द्रनाथ की गढ़ी में पहुंची, और वहीं रही। भाई ऐसे तर्कों से मुझे विश्वास हो गया कि तेजबा के सिवाय दूसरे ने कपट नहीं किया। गंभीर बोला अच्छा लालवा, यह तो बता कि जब तू चन्द्रसिंह को पहचानती थी, और उसके स्वभाव से परिचित थी, तब उसके मायाजाल में क्यों फंसी! लालवा बोली भाई, तेजबा की अंगूठी ले जाने वाला कोई दूसरा ही राजपूत था। उसने जाकर

कहा — कि तेजबा ने लालवा को बुलवाया है; क्योंकि महासिंह बहुत दुखी और यही चाहते हैं कि लालवा उनकी आंखों के सामने रहे। तो मैं मोह से अन्धाी हो गई। विश्वास के लिए अंगूठी थी ही। बस बाबा महेन्द्रनाथ से विदा हो, इस पापी के साथ चल दी। इसके बाद इस विपत्ति में आ फंसी। ईश्वर ने पापियों की इच्छा पूरी होने के पहले ही रक्षा के लिए आपको भेज दिया।

वीर दुर्गादास ने उसे धैर्य दिलाते हुए कहा — बेटी! अब मैं तुझे ऐसे अच्छे और सुरक्षित स्थान में रखूंगा, जहाँ किसी प्रकार की शंका न होगी। लालवा ने कहा — नहीं, अब मैं कहीं भी अकेली नहीं रहना चाहती। यदि आप मेरी रक्षा करना चाहते हो तो अपने साथ रहने दें। मैं भी अब सिपाहियों के भेष में रहूँगी; यथा।शक्ति आपकी सहायता करूँगी। मुझे इससे अच्छा अब अपनी रक्षा का उपाय नहीं सूझता। दुर्गादास एक बालिका में इतना साहस देख बड़ा प्रसन्न हुआ और उसे अपने साथ रखना स्वीकार कर लिया! गंभीरसिंह ने चन्द्रसिंह के कपड़े उतार दिये और लालवा तुरन्त ही एक वीर राजपूत बन गई। हाथ में तलवार पकड़ी और घोड़े पर सवार हो दुर्गादास के पीछे-पीछे चल दी। थोड़ी दूर चलने पर किसी के आने की आहट मिली। गंभीरसिंह बड़ा साहसी था।तुरन्त ही आगे बढ़ा। देखा कि

लगभग पचास-साठ मनुष्य इधर ही चले आ रहे हैं। अब चन्द्रमा का प्रकाश भी हो चला था। देखने से राजपूत ही जान पड़ते थे। पास आते ही गंभीसिंह ने पूछा कौन? किसी ने इसके उत्तार में कहा — तुम कौन? गंभीरसिंह इस आवाज को पहचानता था।, घोड़े से उतर पड़ा। बोला भाई मानसिंह! मैं हूँ गंभीरसिंह और मानसिंह का हाथ पकड़े हुए उसे दुर्गादास के सामने ला खड़ा किया। दुर्गादास ने मानसिंह को बड़े प्रेम से गले लगाया। उसने लालवा की ओर देखा; परन्तु पहचान न सका। पूछा भाई जसकरण! यह राजपूत कौन है? जसकरण के कुछ कहने के पहले ही लालवा ने कहा — भाई मानसिंह, मैं हूँ आपकी बहन लालवा। मानसिंह लालवा की ओर बड़े आश्चर्य से एकटक देखता रहा। फिर पूछा बहन लालवा, तू यहाँ कैसे आई? लालवा ने आदि से लेकर अन्त तक सारी बातें फिर दुहरा दी। मानसिंह ने कहा — जो ईश्वर करता है, अच्छा ही करता है। बहन, हमने तो तुम्हारी रक्षा का उचित प्रबन्ध किया था।, परन्तु भाग्य का लिखा कैसे मिट सकता है?

जब ये लोग लश्कर में पहुंचे तो देखा कि मोहकमसिंह मेड़तिया भी उपस्थित हैं। अब तो वीरों की संख्या बहुत हो गई। मालूम होता है,मारवाड़ के भाग्य उदय हुए। दुर्गादास आशा-लता को फूलते देख बड़ा ही प्रसन्न हुआ। मोहकमसिंह से गले मिलकर

बैठ गया और सलाह करने लगा। सोजितगढ़ पर चढ़ाई करने की राय ठहरी; क्योंकि महासिंह का छुड़ाना और सोजितगढ़ का अपनाना, एक पन्थ दो काज था। दुर्गादास ने वीर राजपूतों को उसी जंगल में विश्राम करने की आज्ञा दी, क्योंकि रात आंधी से अधिक बीत चुकी थी। सोजितगढ़ पहुँचने का समय न था। चढ़ाई करने की घात रात ही में थी। दिन में मुट्ठी भर राजपूत थे ही क्या, जो सोजितगढ़ में मुगल सिपाहियों का सामना करते; इसलिए रात वहीं काटी। दूसरे दिन जंगलों में छिपते-छिपते पहर

रात बीते सोजितगढ़ की चौहद्दी पर पहुंचे और धावा करने के समय की प्रतीक्षा करने लगे।

गंभीरसिंह बड़ा जोशीला था। देश के लिए अपने प्राण हथेली पर लिये फिरता था। दुर्गादास से बिना पूछे-पाछे गढ़ी की टोह लेने चल दिया और बारह बजने के पहले ही लौट आया। गढ़ पर जय पाने के उपाय जो कुछ सोचे थे और जो कुछ देखा था।, दुर्गादास से कह सुनाया। सबने गंभीरसिंह की बुध्दि की बड़ी बढ़ाई की और उसे कहे अनुसार अपने राजपूत वीरों को फाटक के आस-पास लगा दिया। रूपसिंह,जसकरणसिंह, मानसिंह और तेजकरण ये चारों गंभीसिंह के साथ, गढ़ी की पिछली दीवार के ऊपर चढ़ गये।

गंभीरसिंह ने उन चारों को तो फाटक के ऊपर वाली छत पर छिपा दिया और आप दक्खिन की ओर चला गया। कमर से चकमक निकाल कर छप्पर में आग लगा दी। अब तो जिसे देखो, वही आग बुझाने दौड़ा चला जाता है। घात पाकर चारों राजपूत कूद पड़े और गढ़ी का फाटक खोल दिया। फिर क्या था? दुर्गादास राजपूत वीरों को लेकर घुस पड़ा और लगी मारकाट होने। एकाएकी धावे ने मुगलों के पैर उखाड़ दिये। जलती आग में कौन प्राण्ा देता है। भाग खड़े हुए। बहुतों ने हथियार छोड़ वीर दुर्गादास की शरण ली। हथियार छोड़े हुए बैरी पर सच्चे राजपूत कभी वीर नहीं करते। अस्तु, मारकाट बन्द हो गई। मानसिंह ने इनायत खाँ का पता लगाया। मालूम हुआ, वह पहले ही प्राण ले भागा।

गंभीरसिंह ने बादशाही झंडा उखाड़ फेंका और अपना राजपूती पचरंगा झंडा गढ़ पर फहरा दिया। जसकरण, तेजकरण तथा। रूपसिंह को गढ़ की चौकसी सौंप दुर्गादास, मानसिंह और लालवा महाराज महासिंह के पास पहुंचे। देखा, महाराज एक पलंग पर पड़े-पड़े अपने दांतों से होंठ चबा रहे हैं, और न जाने मन-ही-मन क्या सोच रहे हैं। अभी घाव भी नहीं भरे थे, कराहते हुए जो करवट बदली तो सामने इन तीनों को देखा। बोले हाय! क्या तुम भी पकड़ आये? बेटा मानसिंह! बेचारी लालवा कहाँ होगी? पापी

चन्द्रसिंह तो उसके पीछे ही पड़ा है। हमारा तो सर्वनाश ही हो गया। हाय! मृत्यु भी रूठ गई। मानसिंह ने कहा — काकाजी, पापी चन्द्रसिंह तो यमपुर पहुँच गया और लालवा यह खड़ी है। हम लोग बन्दी होकर नहीं आये हैं। वीर दुर्गादास ने माड़ों का नहीं सोजितगढ़ का भी राजा बना दिया। पापी इनायत खाँ कहीं भाग गया। अब गढ़ी पर राजपूती झंडा फहरा रहा है।

महासिंह को तो कदाचित ही कभी पहले ऐसे प्यारे शब्दों को सुनने का अवसर मिला हो, खुशी से फूला न समाया। हृदय धाड़कने लगा। तुरन्त पलंग से उठकर वीर दुर्गादास को गले लगा लिया। फिर मानसिंह और लालवा को प्यार से छाती से लगाया। तेजबा, जो इस समय दूसरे कमरे में थी, बाहर आदमियों की बोलचाल सुनकर अपने कमरे के द्वार पर आ खड़ी हुई और बातचीत सुनने लगी। लालवा का नाम सुनते ही चौंकी, छाती धाड़कने लगी, अपनी करतूत पर आप ही पछताने और लजाने लगी। मानसिंह ने लालवा की एक-एक बात मानसिंह से कह सुनाई। महासिंह थोड़ी देर चुप बैठा रहा। न जाने क्या-क्या सोच गया! फिर लालवा को तेजबा के पास भेज दिया। रात एक पहर से कम रह गई थी। वीर दुर्गादास ने सब थके हुए राजपूतों को विश्राम करने की आज्ञा दी। शेष रात आनन्द से कटी। सवेरा हुआ। सोजितगढ़ के आस-पास के गांवों के रहने वाले राजपूतों ने

जब सोजितगढ़ पर राजपूती झंडा फहराते देख, तो बड़े आश्चर्य में आये और पता लगाने लगे। अब उन्हें अपनी विजय का विश्वास हुआ और झुण्ड-के-झुण्ड सोजितगढ़ आने लगे। जितने राजपूत सरदार दिल्ली की लड़ाई से बच आये थे,धीरे-धीरे सभी अपनी-अपनी सेना लेकर वीर दुर्गादास की सहायता के लिए इकट्ठे हो गये। अब सोजितगढ़ में चारों ओर हथियारबन्द राजपूत सेना-ही-सेना दिखाई पड़ने लगी। जिसे देखिए वह मारू राग ही गाता था। और अकेले ही दिल्ली पर जय पाने का साहस दिखाता था। वीर दुर्गादास ने राजपूतों को ऐसा उत्साही देख ईश्वर को धान्यवाद दिया और जोधपुर पर चढ़ाई करना निश्चित किया। सब सरदारों ने हाँ-में-हाँ मिलाई। जब यह बात तेजबा को मालूम हुई तो झीखने लगी। मानसिंह को अपने पास बुलाकर कहा — बेटा! हमारा संदेश दुर्गादास को सुनाओ और कहो, यह कौन-सी चतुराई है कि जीतकर भी हार लेने चले हैं। इन लोगों को नाले से निकालकर अब समुद्र में डालना चाहते हैं? आप तो सोजितगढ़ छोड़कर जोधपुर युद्ध करने जाते हो, हमारी रक्षा कैसे होगी? यदि दुर्गादास ऐसा करना ही चाहते हैं, तो हमारे पीहर भेज दें और आप जो चाहें करें। मानसिंह ने कहा — काकी, यह कौन कहता है कि तुम्हें अकेले ही सोजतगढ़ में छोड़ दिया जायेगा? यहाँ गढ़ी की रक्षा के लिए एक हजार सेना रखी जायेगी और वीर रूपसिंह

उदावत सेनानायक रहेंगे; क्योंकि अभी वे लड़ाई के योगय नहीं है, यद्यपि घाव सूख गये हैं।

मानसिंह ने बहुत कुछ समझाया, परन्तु तेजबा ने अपना हठ न छोड़ा। विवश होकर मानसिंह को वीर दुर्गादास से कहना ही पड़ा। दुर्गादास ने कहा — अच्छा ही है, चलो पहले, इसी काम से निपट लें। दूसरे दिन सूर्य उदय होते-होते दुर्गादास, महासिंह, जसकरण, तेजकरण, मानसिंह और गंभीरसिंह अपने-अपने घोड़ों पर सवार हो तेजबा के डोले के पीछे-पीछे चल पड़े। रूपसिंह ने थोड़ी-सी सेना भी साथ जाने के लिए सजाई थी; परन्तु दुर्गादास ने उसमें से केवल पचीस विश्वासी वीरों को अपने साथ लिया और सबको सोजितगढ़ में ही रहने की आज्ञा दी। कहा — ’र बड़े ही तेज थे, राह में केवल एक घने वृक्ष की छाया में थोड़ी देर विश्राम किया और जलपान कर थोड़ा दिन रहते-रहते तेजबा को उसके पीहर पहुंचा दिया। तेजबा का भाई पृथ्वीसिंह गढ़ी के फाटक पर ही मिला। महासिंह इत्यादि को देख घबरा उठा। पूछा जीजाजी कुशल से तो हैं?महासिंह ने पृथ्वीसिंह को सन्तोष देने के लिए संक्षेप में अपना प्राण्ारक्षक बताकर बड़ी प्रशंसा की। पृथ्वीसिंह ने बड़े प्रेम से वीर दुर्गादास को गले लगाया। और सबको आदर के साथ ले जाकर चौपाल में बिठाया। थोड़ी

देर इधर-उधर की बातें होती रहीं। किसी ने गंभीरसिंह की चतुरता की बड़ाई की, तो किसी ने जसकरण की वीरता की।

पृथ्वी की परिक्रमा करते हुए जब पश्चिम में सूर्य भगवान् अस्त हुए तो पूर्व में चन्द्रमा उदित हुआ। चारों ओर रूपहली चादर बिछ गई। महासिंह और दुर्गादास एकान्त में बैठकर जोधपुर पर चढ़ाई करने के उपाय सोचने लगे। इतने में एक द्वारपाल ने आकर देसुरी से आये हुए धावन की सूचना दी। वीर दुर्गादास ने उसे अन्दर बुला लिया। देखा तो गुलाबसिंह था। दुर्गादास ने पूछा क्यों गुलाबसिंह, क्या समाचार लाये?गुलाबसिंह ने कहा — महाराज! आपके सोजितगढ़ फतह करने की खबर जब देसुरी में आई, तब ऐसा कोई राजपूत का घर न था।, जहाँ आनन्द-बधाई न बजी हो; परन्तु सरदार इनायत खाँ न जाने कैसे वहाँ पहुँच गया। यह उत्सव देखकर जल उठा। सब सिरमौर राजपूतों को अपने दरबार में बुला भेजा। किसी कारण आपके ससुर ठाकुर नाहरसिंह और हमारे पिता को देर हो गई। इनायत खाँ ने और सब दरबारियों को बहुत तरह की धामकी देकर विदा किया, परन्तु इन दोनों को थोड़ी देर ठहरने को कहा — '। दोनों ठहर गये सरल स्वभाव वीर पुरुष भला यह क्या जानते थे कि छली इनायत आपका बैर उन बेचारों से लेना चाहता है? जब इनायत खाँ ने देखा कि सब राजपूत चले गये, तो उन बेचारों पर बलवा

का अपराधा लगाया और उनके सिर कटवा लिये। मैंने जब यह समाचार सुना तो तुरन्त सोजितगढ़ दौड़ गया। वहाँ मालूम हुआ,आप वालू में हैं! उलटे पैरों यहाँ भागता आया। ईश्वर की कृपा थी कि आपसे भेंट हो गई। अब आप जो उचित समझें करें।

देसुरी के समाचार सुनकर वीर दुर्गादास मारे क्रोध के कांपने लगे और बोले जसकरण! तुम अभी जाओ और सोजितगढ़ से अपना लश्कर लेकर बारह बजे के पहले देसुरी पहुंचो। मैं दुष्ट इनायत को आज ही यमपुरी भेजूंगा। गुलाबसिंह ने कहा — महाराज! ठाकुर रूपसिंह उदावत ने जिस समय देसुरी की खबर सुनी थी, उसी समय उन्होंने लगभग एक हजार वीरों को आपकी सहायता के लिए वाली भेजा है। कदाचित वे सब आ भी गये हों। वीर दुर्गादास जैसे ही द्वार पर आये, राजपूतों के जय-जयकार के शब्द से आकाश गूंज उठा मरुदेश स्वतन्त्रा हो! वीर दुर्गादास की जय हो! वीर दुर्गादास सबों को यथोचित सम्मान दे, घोड़े पर सवार हो लश्कर के आगे-आगे चले। पीछे जसकरण, तेजकरण,मानसिंह तथा। गंभीरसिंह इत्यादि चले। जब गाँव थोड़ी दूर रह गया तो दुर्गादास ने अपने वीरों को दबे पांव चलने की आज्ञा दी, जिसमें किसी को कानों-कान खबर न हो और पापी इनायत का घर घेर लिया। वीरों ने वैसा ही किया। दूसरों को तो क्या, अपनी चाप

आप ही न सुन सकते थे। चारों ओर सन्नाटा छा गया। अब धीरे-धीरे लश्कर गाँव में पहुँच गया। एकाएक दुर्गादास ने किसी के रोने की आवाज सुनी। मानसिंह को आगे बढ़ने की आज्ञा दे, आप उस ओर चला, जिधार रोने की आवाज आ रही थी। घर का द्वार खुला था।, भीतर चला गया। देखा तो सामने एक मुरदा पड़ा था। और सिरहाने एक बुढ़िया सिर पीट-पीटकर रो रही थी। दुर्गादास को देखते ही और फूट-फूटकर रोने लगी। दुर्गादास ने बुढ़िया से रोने का कारण पूछा। बुढ़िया ने कहा — बेटा, मैं तेरी स्त्री की धाय हूँ। छुटपन में मैंने जो दूध पिलाया है, आज उसके बदले में अपने स्वामी का बदला मुगलों से लेने तुमसे मांगती हूँ। वीर दुर्गादास ने बुढ़िया के सामने मुगलों से बदला लेने का प्रण किया और वहीं चिता बनाकर मुरदे का अग्निसंस्कार कर दिया। तब एक जलता हुआ चैला चिता से निकाल, इनायत के घर की ओर चल दिया। रास्ते में गंभीरसिंह मिला। दुर्गादास के हाथ में एक परचा देकर बोला महाराज, यह किले की सामने वाली दीवार में चिपका हुआ था। मैं इसे आप ही को दिखाने के लिये उखाड़ लाया हूँ। देखिए, इसकी एक तरफ उन राजपूतों के नाम हैं जो मारे जा चुके हैं और दूसरी तरफ उनके नाम हैं, जो पकड़े गये हैं और जिन्हें अब फांसी की आज्ञा होगी। महाराज, अब मुझसे रहा नहीं जाता। देखिए, इस सूची में

हमारे वृद्ध पिता केसरीसिंह का भी नाम है। यद्यपि सभी राठौर हमारे लिए पिता के समान हैं और कारागार में दशा भी सबकी एक-सी है, तथा।पि मैं अपने पिता के दुख को औरों के देखते अधिक समझता हूँ; क्योंकि मैं अपने पिता की इच्छा के विरुद्ध; देश सेवा के लिए एक वर्ष से अधिक हुआ,घर से निकला था। और अभी तक उनके पास नहीं गया। कुटुम्ब की देखभाल के लिए मैं या मेरे पिताजी ही थे, इसलिये पहले तो पिताजी को मेरी ही चिन्ता थी, अब अपनी और कुटुम्ब की भी हो गई। दुर्गादास ने कहा — बेटा! धैर्य धरो, जिस ईश्वर ने सोजितगढ़ सर कराया है, वही देसूरी पर भी विजय दिलायेगा। और तुम्हारे पिता को नहीं, किन्तु मारवाड़ देश को ही मुगलों से मुक्त करायेगा। चलो इनायत को आज ही उसके कर्मों का प्रतिफल दें।

यह कहकर दुर्गादास किले की पिछली दीवार के पास पहुंचा। मालूम हुआ कि राजपूतों ने फाटक तोड़ डाला और गढ़ी में घुस गये: गंभीरसिंह भी उसी तरफ लपका। शामत का मारा, इनायत फाटक पर ही मिल गया, चाहता तो था। कि कहीं प्राण लेकर भाग जाय; परन्तु होनी कहाँ टल सकती है? गंभीरसिंह के पहले ही वार से अधामरा हो गया, उस पर वीर दुर्गादास ने जलता हुआ चैला उसके मुँह में घुसेड़ दिया। इनायत के प्राण-पखेरू उड़ ही गये। अब था। कौन जो मुगल-सेना को उत्साह दिलाता? आधी

मुगल-सेना को वीर राजपूतों ने तलवार के घाट उतार दिया। बचे-बचाये वीर दुर्गादास की शरण में आये। वीर राजपूतों ने सबको प्राणदान दे दिया। मानसिंह और गंभीरसिंह दौड़ते हुए कारागार की ओर गये। शमशेर खाँ ने जो वहाँ का मुखिया था।, इन दोनों को आते देख, बिना कहे ही द्वार खोल दिया। दोनों अन्दर चले गये। गंभीरसिंह ने अपने पिता को देखा। पैरों पर गिर पड़ा। केसरीसिंह ने साल-भर बिछड़े हुए बेटे को प्रेम से छाती से लगा लिया और आनन्द के आंसुओं से उसका मुँह धो दिया। दोनों ही का गला रुंधा गया था। किसी के मुँह से थोड़ी देर तक शब्द भी न निकला। एक दूसरे को एकटक देखते रहे। अन्त में केसरीसिंह ने अपने को बहुत कुछ संभाला, परन्तु फिर भी आँसू न थमे। रोते हुए बोले बेटा गंभीर! तुम्हारे छिपकर भाग जाने के बाद से आज तक मुझे केवल यही सन्देह था। कि न जाने तुम कुशल से हो या नहीं, इसलिये इतना दुख न था।, परन्तु आज तुम्हें अपनी आंखों से अपने ही समान दशा में देख दारुण दुख होता है। अपना कुछ बस नहीं। गंभीरसिंह मुस्कराकर बोला पिताजी! अब न तो मैं कारागार में हूँ, और न आप! ईश्वर ने आपकी प्रार्थना स्वीकार कर ली है। मारवाड़ को अब आप शीघ्र ही पहली दशा में देखिएगा। और दुर्गादास ने अपने बाहुबल से सोजितगढ़ जीतकर, आज देसुरी पर छापा मारा

और इनायत को उसके पापों का पूरा-पूरा फल दिया। अब आज इस किले पर भी राजपूती झंड़ा फहरा रहा है। केसरीसिंह के लिए इससे अधिक आनन्द की और बात कौन होती? आनन्द से फूल उठा, रोमांच हो आया; गंभीर को फिर छाती से लगा लिया और उतावला होकर वीर दुर्गादास से मिलने के लिए चल दिया।

इधर मानसिंह ने और सब राजपूत बन्दियों को बड़े मान और आदर के साथ कारागार से बाहर निकाला। जय धवनि आकाश में गूंजने लगी। चारों तरफ से सब राजपूतों ने दुर्गादास को घेर लिया। दुर्गादास बड़ी नम्रता के साथ हर-एक का यथोचित सम्मान करता हुआ प्रेम से गले मिला। सूर्य भगवान् भी आनन्द लूटने के लिए उदयांचल से चल पड़े। सवेरा होते ही देसुरी के किले पर राजपूतों का झंडा उड़ते देख, छोटे,बड़े सब राजपूत गाते-बजाते खुशी मनाते हुए वीर दुर्गादास के लिए आ पहुंचे। इस समय राजपूतों में निराला जोश था।कायर भी तलवार खींचकर मारवाड़ को स्वतन्त्र करने के लिए सौगंध खाता था।आज देसुरी का ऐसा कोई भी राजपूत न होगा, जिससे दुर्गादास विनयपूवर्क न मिला हो। अब दिन लगभग एक पहर के ढल चुका था।, दुर्गादास सबसे मिल-भेंटकर अपनी ससुराल चला गया और यथा। योग्य अपने आत्मीयों से मिला, भोजन किया, और शाम होने के पहले ही किले पर लौट आया।

देसुरी के सरदार सुरतानसिंह, केसरीसिंह इत्यादि एकान्त में बैठकर विचार करने लगे कि मुगल बादशाह का किस प्रकार सामना किया जाय और मारवाड़ में शान्ति किस प्रकार स्थापित की जाय। उसी समय एक धावन वीर दुर्गादास के नाम पत्र लेकर पहुंचा। दुर्गादास ने पत्र लेकर गंभीरसिंह को बांचकर सुनाने के लिए दे दिया। गंभीरसिंह पढ़ने लगा

'दयालु दुर्गादास! आपके देसुरी चले जाने के बाद मुगलों ने घात पाकर वालीगढ़ पर धावा किया। यहाँ कोई बड़ी सेना तो थी ही नहीं और जो कुछ थी भी, वह सजग न थी। मामाजी अपने को मुगलों का सामना करने में असमर्थ समझ प्राण ले भागे। मुगलों ने गढ़ लूटी, और हम तीनों हतभागियों को पकड़कर जोधपुर लाये। यहाँ पर पिताजी पर राजद्रोह का अपराध लगाया, और प्राणदण्ड की आज्ञा हुई। अब यदि दो दिन के अन्दर, हम लोगों का इस विपत्ति से छुटकारा न हुआ, तो मारवाड़ का स्वतन्त्र होना न होना हमारे लिए समान है। इति।

आपकी कृपाभिलाषिणी,

लालवा।

पत्र सुनते ही वीर दुर्गादास के आग-सी लग गई। पास बैठे हुए सरदारों की भी त्योंरियां चढ़ीं और मानसिंह तथा। गंभीरसिंह का कहना ही क्या! नवीन रक्त थोड़ी-सी भी आंच से उबल पड़ता है। तमतमा उठे। देसुरी के सरदार ने लगभग अट्ठारह हजार राजपूत सेना इकट्ठी कर दी। तुरन्त ही वीर दुर्गादास ने एक हजार वालीगढ़ की रक्षा के लिए भेज दी। दो हजार सेना देसुरी में छोड़ी। पंद्रह हजार अपने साथ जोधपुर ले जाने के लिए तैयार कराई। हालांकि पंद्रह हजार तो क्या, पच्चीस हजार राजपूत सेना भी जोधपुर पर चढ़ाई करने के लिए, मुगलों के सामने मुट्ठी भर ही थी। परन्तु यहाँ तो सत्य का पक्ष था।! पुरुषार्थ पुरुष करता है, तो सहायता ईश्वर करता है यही भरोसा और विश्वास था।।

रात एक पहर व्यतीत हो चुकी थी। गंभीरसिंह वीर दुर्गादास के पास आया और बोला महाराज, सेना तैयार है, कूच की आज्ञा दीजिए। इतने में कहीं दूर से डंके की आवाज सुनायी दी। दुर्गादास चौकन्ना-सा गढी के बाहर आया। अब तो डंके की चोट के साथ-साथ जय धवनि भी सुनायी पड़ने लगी महाराज राजसिंह की जय! अजीतसिंह की जय! मारवाड़ की जय! वीर दुर्गादास का मनमयूर घंटाटोप सिसौदी सैन्य देखकर नाचने लगा। समझ गया कि उदयपुर के महाराज ने मेरे पत्र के उत्तार में यह सेना भेजी है। अगवानी के लिए आगे बढ़ा। राणा राजसिंह का ज्येष्ठ पुत्र

जयसिंह वीर दुर्गादास को आते देखकर घोड़े से उतर पड़ा और प्रेम से गले मिला। कुशल प्रश्न के बाद दुर्गादास ने कहा — ठाकुर साहब! यदि थोड़ी देर आप और न आते, तो हमारा लश्कर जोधपुर के लिए कूच कर चुका था। जयसिंह ने कहा — क्यों? हमारा तो मन था। कि पहले अजमेर पर छापा मारा जाय; परन्तु आपने क्या सोचकर मुट्ठी-भर राजपूतों के साथ जोधपुर पर धावा करने का विचार किया? दुर्गादास ने कहा — भाई जयसिंह! मैं जोधपुर जाने के लिए विवश था। ठाकुर महासिंहजी अपने कुटुम्ब सहित शत्रुओं के हाथ पकड़े गये। इस समय वे जोधपुर में हैं, और ठाकुर साहब को फांसी की आज्ञा हो चुकी है। अब आप ही बताइये ऐसे समय में हम लोगों का क्या धार्म हैं? महासिंह का हाल सुनते ही जयसिंह जोश में आ गया, बोला भाई दुर्गादास! अब हम लोगों को यहाँ एक क्षण भी विश्राम करना उचित नहीं। हम अपने साथ दस हजार सवार और पच्चीस सवार पैदल सेना लाये हैं, इसका शीघ्र ही प्रबन्धा करो। वीर दुर्गादास ने सब पचास हजार पैदल एकत्र सेना के पांच भाग कर डाले। तीन हजार सवार और सात हजार पैदल सेना का नायक मानसिंह को बनाया। इसी प्रकार अन्य चारों भागों को क्रमश: जसकरण, केसरीसिंह, जयसिंह और करणसिंह को सौंपा। आप सारी सेना का

निरीक्षक बना और अपनी रक्षा के लिए तेजकरण और गंभीरसिंह को दाहिने-बायें रखा।

कूच का डंका बजा, जय-घोष से आकाश गूंज उठा। राजपूत वीर रणचण्डी की पूजा करने के लिए जोधपुर की ओर चल दिया; वीर दुर्गादास के समान सब राजपूतों ने अपने देश स्वतन्त्रा करने की सौगन्ध ली थी। सब ही देश पर मर मिटने के लिए तैयार थे। सेना में कोई ऐसा राजपूत न था।, जिसे स्वदेशाभिमान न हो। रात-भर चलने पर भी किसी को जोश के कारण थकावट न आई। भोजनों की किसी को इच्छा न थी, इच्छा थी कि घमासान युद्ध की। दुर्गादास ने सवेरा होते ही एक घने पहाड़ी प्रदेश में पड़ाव डाला। दो घड़ी दिन बाकी था।, कूच का डंका बजा और सेना चल दी। रात्रिा के पिछ्ले पहर जोधपुर की चौहद्दी पर जा पहुंचा। वीर दुर्गादास के आज्ञानुसार जयसिंह ने गढ़ का पूर्व द्वार और करणसिंह ने पश्चिमी द्वार घेर लिया जिसमें न तो किले से कोई सेना बाहर आ सके और न बाहर से भीतर ही जा सके। बस्ती की चौकसी के लिए केसरीसिंह अपनी दस हजार सेना लेकर डट गये। ऐसे व्यूह-रचना से दुर्गादास का केवल यही अभिप्राय था। कि मुगलों को किसी तरफ से किसी प्रकार की सहायता न मिल सके। शेष दो भाग सेना बाहर से आने वाली मुगल सेना की रोक के लिये और थकी हुई राजपूत सेना की

कुमुक के लिए थी। राजपूत भी जोश में भरे थे रात का पिछला पहर भी छापा मारने के लिए अच्छा था।कोई मुगल सरदार शौच के लिए गया था।,तो कोई नमाज पढ़ रहा था।सारांश यह कि सब लोग गाफिल थे। जितना समय उनको सजग होने में लगा, उतना ही समय राजपूतों को किले का फाटक तोड़ने में लगा। दीवार टूटते ही राजपूत सेना भीतर घुसी और घमासान मार-काट होने लगी। किले पर मारू बाजा बजने लगा। रणचंडी थिरक-थिरककर भाव दिखाने लगी! 'अल्लाह हो अकबर' की तरफ और 'हर-हर महादेव' की दूसरी तरफ से आवाजें गूँजने लगी। जोशीले वीर राजपूतों की दुतरफा मार ने मुगलों के पैर उखाड़ दिये।

मुगल सरदार दिलावर खाँ ऊंचे स्वर से मुगल सिपाहियों को जोश दिलाने के लिए कहने लगा 'नमकहरामी गुनाह है। गुलाम बनकर रहने से मौत बेहतर है। अहले इस्लाम! उन्हें कसम कुरान मजीद की है, जो जीते जी मैदान से भागे।' मुगलों में एक क्षण के लिए फिर जोश पैदा हो गया। लौटकर भूखे बाज की तरह राजपूत सेना पर टूट पड़े। वह समय पास ही था। कि राजपूत्र त्रहि-त्रहि करके भागे; परन्तु बनाई हुई सेना लेकर तुरन्त ही वीर दुर्गादास आ पहुंचा। दोनों ओर चम-चम बिजली-सी तलवारें चमक रही थी। बाण चल रहे थे। जीत के मारे राजपूत 'हर-हर महादेव' करते हुए आगे बढ़ रहे थे। इतने में किसी

अन्यायी मुगल ने वीर दुर्गादास पर पीछे से तलवार का वार किया। ईश्वर की कृपा थी कि गंभीरसिंह ने देख लिया, नहीं तो वीर दुर्गादास की जीवन-लीला यहीं समाप्त हो जाती। गंभीर ने उस दगाबाज को इतने जोर से धाक्का मारा कि वह अपने को किसी प्रकार संभाल न सका और धाड़ाम से पृथ्वी पर गिर पड़ा। गंभीर तुरन्त उसकी छाती पर बैठा। अपनी जान संकट में देख उसने दुर्गादास की दुहाई दी। वाह रे दया वीर! ऐसी नीचता का काम करनेवाले मुगल को भी तुरन्त प्राण-भिक्षा दे दी। जब मुगल सेना ने गंभीर को उस मुगल सरदार की छाती पर चढ़ते देखा तो 'इनायता खाँ मारा गया' का शोर मच गया। मुगल सिपाही अपने ही घायलों को रौंदते हुए भागने लगी। वीर दुर्गादास चकराया हुआ खड़ा था। यह इनायत कौन? इनको मैंने तो देसुरीगढ़ के द्वार पर मारा था। तब भेद खुला कि इनायत खाँ एक सिपाही को जिसकी सूरत उसकी सूरत से मिलती थी, अपने कपड़े पहनाकर देसुरी से भाग गया था। यही नकली इनायत खाँ वहाँ मारा गया था। ।

सहसा ऊपर से दिलावर खाँ ने ऊँचे स्वर से पुकारकर कहा — 'दुर्गादास! अगर महासिंह की जान बचाना चाहते हो, तो अभी अपनी सेना किले से बाहर ले जाओ।' दुर्गादास ने ऊपर देखा तो दुष्ट दिलावर खाँ ने महासिंह के गले में फांसी की रस्सी डाल रखी

थी। वीर दुर्गादास की आंखों में आँसू भर आये और तुरन्त ही राजपूत सेना को किले से बाहर निकल जाने की आज्ञा दी। महासिंह ऊपर से दुर्गादास को ललकार कर रहा वीर दुर्गादास! क्यों भूल रहे हो, क्या हमारे प्राण दूसरे राजपूतों के प्राणों से अधिक मूल्यवान है? क्या हमारे प्राण दूसरे राजपूतों के प्राणों से अधिक मूल्यवान है? क्या हमको अमर समझ रखा है? थोड़ी देर के लिए सब ही संसार में आये हैं, एक दिन मरना अवश्य है, इसलिये अपनी विजय को पराजय में न बदलो। महासिंह दुर्गादास को उत्तोजित कर रहा था। और दिलावर गले में पड़ी रस्सी में झटका देने को तैयार खड़ा था। गंभीरसिंह अपने क्रोध को अधिक समय तक दाब न सका; परन्तु इनायत खाँ को सामने खींच लाया और बोला अच्छा दिलावर खाँ! यही करना चाहते हो तो करो। हम भी जितने मुगल सरदार हमारे बन्दी हैं, सबको महासिंह के बदले में तुम्हारी ही आंखों के सामने ऐसी बुरी तरह मारेंगे कि पत्थर की आँखें भी रो देंगी। अब तो दिलावर खाँ के हाथ-पांव फूल गये। गंभीरसिंह को उत्तार न दे सका। वह जानता था।,इनायत खाँ का राज-दरबार में कितना मान है। यदि इनायत खाँ महासिंह के बदले में मारा गया, तो मेरी भी कुशल नहीं। तुरन्त महासिंह के गले से रस्सी निकाल फेंकी और बोला वीर दुर्गादास, मैं प्रतिज्ञा करता हूँ कि महासिंह को अब किसी प्रकार

का कष्ट न पहुंचाया जायेगा और यदि सांयकाल तक बादशाह का कोई आज्ञा पत्र न आया, तो किला आपके अधीन करके सन्धिा कर लूँगा। व्यर्थ के लिये मैं बहुमूल्य रत्नों को मिट्टी में नहीं मिलाना चाहता।

वीर दुर्गादास ने दिलावर खाँ की प्रार्थना स्वीकार कर ली। राजपूत सेना अपनी थकावट मिटाने के लिए समीप ही के एक पहाड़ी प्रदेश में चली गई, और शोनिंगजी इत्यादि वृद्ध सरदारों ने घायल राजपूत वीरों को मरहम-पट्टी के लिए राजमहल में भेजा। यहाँ सब सामग्री इकट्ठी थी और किसी बात की कमी न थी; क्योंकि सरदार केसरीसिंह ने किले पर धावा होने के पहले ही राज भवन पर अपना कब्जा कर लिया था। बस्ती में किसी मुगल का पुतला भी न रह गया। विशिष्ट मुगल सरदारों को केसरीसिंह ने बन्दी बनाकर राज-भवन में कैद कर दिया। बेचारा इनायत खाँ भी वहीं पहुँच गया। इन सब आवश्यक कामों से छुट्टी पाकर शोनिंग जी वीर दुर्गादास, से मिले। सब सरदार एकत्र होकर दिलावर खाँ की कही हुई बातों पर विचार करने लगे। दुर्गादास ने कहा — भाइयो! इस कपटी को दिल्ली से किसी प्रकार की सहायता मिलने की पूर्ण आशा है, इसी कारण इसने सायंकाल तक युद्ध बन्द रखने की प्रार्थना की है, इसलिए मेरा विचार है कि मुगल सेना आने का सब मार्ग पहले ही से रोक दिये जायें और

किले में पहुँचने के पहले ही यहीं निपट लिया जाय। मैदान की लड़ाई में सब प्रकार की सुविधा है। वीर दुर्गादास की सलाह सबने पसन्द की और मार्ग के दोनों ओर थोड़ी-थोड़ी राजपूत-सेना पहाड़ी खोहों में छिपा दी गई।

दिन लगभग दो पहर बाकी थी। एक भेदिये ने मुगल सेना के आने के समाचार कहे। दुर्गादास ने प्रसन्न होकर राजपूत वीरों को सजग कर दिया। थोड़ी ही देर में सामने बादशाही झंडा फहराते हुए मुगल सरदार मुहम्मद खाँ के साथ एक भारी मुसलमानी दल आता दिखाई पड़ा। ज्योंही यह सेना पहाड़ी दर्रे से आई, दुर्गादास ने डंके पर चोट मारी, इधर वीर राजपूत जय-घोष करते हुए अपने शत्रुओं पर टूट पड़े। उधर साहसी वीर गंभीरसिंह और तेजकरण दोनों ने झपटकर बादशाही झंडा नीचे गिराया। एक ने मुहम्मद खाँ को पकड़ा और दूसरे ने राजपूती झण्डा खड़ा किया।

सरदार पकड़ा गया, तो बादशाही सेना निराश होकर भागने लगी; परन्तु राजपूत वीरों ने वीर दुर्गादास के आज्ञानुसार मुगल सेना को पीछे भागने से रोका; क्योंकि भेदिये ने सत्तार हजार सेना के तीन भागों में आने के समाचार दिये थे। यदि पराजित मुगल सेना पीछे जाती, तो सम्भव था। कि दूसरी आने वाली मुगल सेना सजग रहती, फिर तो वीर दुर्गादास को थोड़े से राजपूत वीरों को लेकर इतनी बड़ी मुगल सेना पर विजय पाना कठिन हो जाता।

और हुआ भी ऐसा ही। जब तक पराजित मुगल सेना के हथियार छुड़ाये जायें, और आगे वाले दर्रे तक राजपूत सेना भेजी जाय, कि दूसरा मुसलमानी दल आ गया। इसका सरदार तहब्वर खाँ बड़ा बहादुर था। अपनी सेना को उत्साहित करता हुआ बड़ी वीरता से लड़ने लगा। उस समय का दृश्य भयानक था। वीर दुर्गादास रक्त से नहाया हुआ था। जसकरण, तेजकरण तथा। गंभीरसिंह का भी ऐसा कोई अंग न था।, जहाँ गहरा घाव न लगा हो। एक ओर तहब्वर खाँ, दूसरी ओर वीर दुर्गादास अपने वीरों को उत्तोजित कर रहे थे। एक कुरान मजीद की सौगन्ध देता था।, तो दूसरा बहन-बेटियों की लाज के लिए मर मिटने को कहता था। सारांश यह कि दोनों दल बड़ी वीरता के साथ भीषण युद्ध कर रहे थे। दुर्गादास को घिरा देख, मानसिंह आगे बढ़ा और तहब्वर खाँ पर अपनी पूरी शक्ति से भाले का प्रहार किया। बेचारा घायल होकर जमीन पर गिरा। साथ ही जसकरण ने दिलावर खाँ का सर काट लिया। बादशाही झंडा नीचा हुआ। मुगल सेना परास्त हुई और भाग निकली। राजपूतों की जय-धवनि चारों ओर गूँजने लगी। राजपूत इतने प्रसन्नचित्त थे, जैसे कभी किसी को कुछ परिश्रम ही न करना पड़ा हो। आश्चर्य तो यह था। कि मरण-प्राय घायल भी, उठकर जय-जय वीर दुर्गादास की जय! कहकर नाचने लगे।

वीर दुर्गादास ने तहब्वर खाँ से पूछा खाँ साहब! आपके बादशाह सलामत ने इतनी ही सेना भेजी थी, या और भी? तहब्वर खाँ ने कहा — 'महाराज! अभी सरदार अकबर शाह के साथ लगभग बीस हजार मुगल सेना और आती होगी। वीर दुर्गादास ने उस समय दोनों बादशाही झंडे,और तीनों सरदार इनायत खाँ, मुहम्मद खाँ और तहब्वर खाँ को थोड़ी सेना के साथ आगे भेजा। जब अकबर शाह की सेना समीप आई,मानसिंह ने अकबर शाह से मिलकर वीर दुर्गादास का सन्देश कहा — और दोनों बादशाही झण्डे दिखाये। अकबर शाह बड़ा ही शान्त था। दोनों बादशाही झण्डों और सरदारों को राजपूतों को बन्दी देख अपना झण्डा भी मानसिंह को सौंप दिया और सन्धिा का झण्डा ऊंचा करके वीर दुर्गादास की शरण आया। तब अपनी तलवार दुर्गादास के सामने रख दी। वीर दुर्गादास ने फिर तलवार उठाकर प्रेम से अकबर शाह को दे दी। विजय के बाजे बजने लगे।

दुर्गादास ने दिलवार खाँ के प्रतिज्ञानुसार किले को अपने अधीन करने और महाराज महासिंह को छुड़ाने के लिए, मानसिंह और गंभीरसिंह को भेजा। इन दोनों को आते देख किले के रक्षकों ने आगे बढकर कुद्बिजयां सौंप दी, परन्तु इन दोनों में कोई भी इस किले में पहले कभी न आया था।, इसलिए एक रक्षक की

सहायता से महासिंह के पास पहुंचे। जिस प्रकार किसी डूबने वाले को आधार मिल जाय, और वह दौड़कर उसे पकड़ ले, वैसे ही महाराज ने अपने भतीजे और भानजे को हाथों से पकडकर छाती से लगा लिया। प्रेम के आँसू आंखों में आ गये। गला भर आया। बड़ी कठिनता से बोले बेटा! हमारा प्राण-रक्षक वीर दुर्गादास कुशल से तो है? गंभीरसिंह अपने सरदारों की कुशल के साथ-साथ देसुरी और जोधपुर की विजय-कहा — 'नी कहने लगे। मानसिंह अपनी बहन लालवा के कमरे में पहुंचा। देखा एक दीपक जल रहा है, और सामने लालवा घुटना टेके पृथ्वी पर बैठी हुई जगत्पिता परमेश्वर से प्रार्थना कर रही है! वह इतनी निमग्न थी कि मानसिंह को अपने कमरे में आते न जाना। मानसिंह थोड़ी देर तक खड़ा रहा, परन्तु लालवा का ध्यान न टूटा। अन्त में मानसिंह ने पुकारा बहन! आज ईश्वर की कृपा से विजयी वीर दुर्गादास ने मुगलों को पराजित कर जोधपुर की राजश्री अपना ली! आज से अपना प्यारा देश स्वतन्त्रा हुआ! इसको लालवा ने आकाशवाणी समझा; परन्तु जब यह सुना कि मुझको वीर दुर्गादास ने बन्धान मोक्ष के लिए भेजा है, तब आँखें खोल दी और प्यारे भाई मानसिंह को सामने खड़ा देखा। उन्मत्तों के समान उठ पड़ी, और बोली प्यारे भाई, हमारी लाज बचाने वाला कुशल तो है? संग्राम में कोई गहरा घाव तो नहीं लगा? हमारे प्यारे पिताजी

तथा। माता तेजबा तो प्रसन्न हैं? लालवा का यह अन्तिम प्रश्न पूरा भी न हुआ था। कि तेजबा को साथ लिए हुए महाराज महासिंह आ पहुंचे। लालवा को प्यार से छाती लगाकर कारागार के बीते दुखों को भूल गये। महासिंह, गंभीरसिंह के साथ वीर दुर्गादास से मिलने चले; और मानसिंह तेजबा और लालवा को लेकर राज-भवन चला गया।

6

मानसिंह और गंभीरसिंह को किले पर भेजने के पश्चात, वीर दुर्गादास ने चारों मुगल सरदारों को केसरीसिंह के साथ किया और राजमहल के पास वाले कारागार में कैद कर दिया। जोधपुर की रक्षा के लिए भी उचित प्रबन्धा किया। चारों तरफ विश्वासी रक्षकों तथा। गुप्तचरों को नियुक्त किया। सब जरूरी कामों से निपटने के बाद एक छोटी-सी सभा की। राजपूत सरदारों की अनुमति पाकर आस-पास के गांवों में रहने वाले मुगलों को युद्धनीति के अनुसार पकड़कर कैद कर लिया; पर उनके साथ शत्रु का-सा नहीं, मित्र का-सा व्यवहार किया जाता था।! वीर दुर्गादास की मन्शा मुगलों को कष्ट पहुंचाने की न थी। केवल

शत्रुओं पर राजपूत कैदियों को छोड़ देने के लिए दबाव डालना था। ।

दुर्गादास सदैव अपने देश और जाति की भलाई के लिए कमर कसे तैयार ही रहता था। कोई काम कैसा भी कष्ट साधय क्यों न हो, कभी न हिचकता था। आज उसी साहस और देशभक्ति की बदौलत उसने अमर-कीर्ति प्राप्त की है। मारवाड़ के बच्चे भी वीर दुर्गादास के नाम पर गर्व करते हैं।

जब जोधपुर की जीत का समाचार फैला, तो शत्रु भी मित्र बनकर बधाई देने के लिए इकट्ठा होने लगे और इतनी भीड़ हुई कि जोधपुर में एकत्र जनता समा न सकी; विवश होकर वीर दुर्गादास को जोधपुर के बाहर एक भारी मैदान में सभा करनी पड़ी। पौष की पूर्णिमा के दिन राजप्रसाद से लेकर सभा-मण्डप तक एक तिल रखने की भी जगह न थी। कभी कोई राज-भवन से सभा की ओर जाता था।, तो कोई सभा से राज भवन की ओर लौट आता था। उस समय चलती-फिरती जनता का दृश्य बड़ा ही अपूर्व था। मालूम होता था। कि समुद्र उमड़ पड़ा है। ऐसा कोई न था। जिसको वीर दुर्गादास के दर्शनों की लालसा न हो। स्त्रिायां

झरोखों से झांक रही थी। जयधवनि आकाश में गूंज रही थी। और चारों ओर से फूलों की वर्षा हो रही थी। अच्छा हुआ कि वीर दुर्गादास राज-भवन से पैदल ही चला नहीं तो फूलों से दब जाता और बेचारे दर्शकों की लालसा धूल में मिल जाती; क्योंकि इसमें अधिकांश ऐसे भी थे जो दुर्गादास को पहचानते न थे। वे अपने पास खड़े हुए मनुष्यों से पूछते थे भाई! इनमें वीर दुर्गादास कौन हैं? कोई अपने मित्र की उंगली उठाकर बता रहा था। कोई एक दूसरे से कह रहा था। भाई, मारवाड़ का विजेता,हमारी बहन-बेटियों की लाज की रक्षा करने वाला वीर दुर्गादास इस प्रकार सबको नमस्कार करता हुआ पैदल ही जा रहा है। धान्य है! देखो! इतना बड़ा काम करने पर भी घमण्ड का नाम नहीं, देवता है। मनुष्य नहीं, देवता है। मनुष्य में यह गुण कहाँ?

जनता धीरे-धीरे दुर्गादास के साथ सभा मण्डल में पहुंची यहाँ मारवाड़ देश की सभी छोटी-बड़ी रियासतों के सरदार बैठे हुए वीर दुर्गादास के आने की प्रतीक्षा कर रहे थे। देखते ही उठ खड़े हुए और बड़े आदर भाव से वीर दुर्गादास को एक ऊंचे आसन पर ला बिठाया विविधा प्रकार के सुगन्धिात फूलों के गजरे उनके गले में डाले, केसरिया चन्दन का लेप किया। उदयपुर के राणा राजसिंह के पुत्र भीमसिंह ने राजसी पोशाक भेंट की, जो राजा साहब ने दुर्गादास के लिए भेजी थी। दुर्गादास ने राणा

साहब का उपहार बड़े सम्मान के साथ लिया, उसे माथे पर चढ़ाकर गद्दी पर रख दिया और जनता के सामने हाथ जोड़कर कहने लगा राजगुरु और प्यारे भाइयो! आज आप लोगों ने हमारा जो कुछ सम्मान किया है,मैं उसके लिए आपका आजीवन आभारी रहूँगा। यद्यपि जो काम मैंने किया है, वह हर एक देशाभिमानी कर सकता था। और मुगलों के अत्याचार से विवश होकर करता भी; परन्तु ईश्वर यह कीर्ति मुझको देना चाहता था। ; इसलिए प्रसंग भी वैसा ही आ बना। हमारे पूज्य, वृद्ध सरदार महासिंहजी को मुगलों ने कंटालिया में घेर कर मारना चाहा था। , इनकी रक्षा करने में मेरे हाथों सरदार जोरावर खाँ का खून हुआ! मुगलों ने उसी खून के बदले में मेरी वृद्ध माँ जी की हत्या की, घर-बार लूटा और कल्याणगढ़ फूंक दिया। यद्यपि मैं मुगलों से इसका बदला लेने में असमर्थ था। ; परन्तु परमात्मा की कृपा और अपने देश-भाइयो की सहायता से आज इस योग्य हुआ कि जोधपुर में मुगलों को परास्त कर एक महती सभा कर सका। प्यारे भाइयो! इतनी आजादी होते हुए भी, मुझे एक बार और भीषण युद्ध होने की शंका है। क्या मुगल बादशाह आलमगीर अपना अपमान सह सकता है? नहीं, कदापि नहीं। वह एक बार दुनिया के कोने-कोने से अपनी सेना बटोर कर मारवाड़ पर धावा अवश्य करेगा, इसलिए मैं अपने देशवासियों से एक बार और सहायता करने की

प्रार्थना करता हूँ। यदि आप लोग अपने पूज्य गुरु ब्राह्मणों के यज्ञोपवीत की, अपने मन्दिरों की मूर्तियों की रक्षा चाहते हों, तो हमारा साथ दो, मारो और मर मिटो, 'आजादी या मौत' का प्रण करो। बीज जब तक मिट्टी में नहीं मिलता कभी हरा-भरा होकर फल नहीं लाता। भाइयो! मुझे पहले बड़ी संख्या में सहायता क्यों नहीं मिली! इसका कारण था।, यह था। कि हमारे राजपूत भाई यह समझते थे, कि राजवंश का तो नाश हो गया अब महाराज जसवन्तसिंह की गद्दी का उत्ताराधिकारी कोई रहा नहीं, हम किसके लिए इतने बड़े मुगल बादशाह से बैर करें और अपना सत्यानाश करायें। वे समझते थे दुर्गादास ने मुगलों से जो बैर ठाना है, वह राज्य के लालच से। भाइयो! मैं सर्वान्तर्यामी ईश्वर को साक्षी करके कहता हूँ कि न मुझमें राज्य का लोभ था।, न है और न कभी होगा। मेरे बहुत से भाइयों को अभी यह नहीं मालूम कि महाराज जसवन्तसिंह का चिरंजीवी पुत्र अजीतसिंह अभी जीवित है उसका पालन-पोषण गुप्त रीति से हो रहा है। समय आने पर आप लोग राजकुमार का दर्शन करेंगे।

वीर दुर्गादास इतना कहकर बैठ गया। जय-धवनि और फूलों की वर्षा हुई। इसके पश्चात महाराज महासिंह जी उठे और जनता को नमस्कार कर बोले भाइयो! वीर दुर्गादास ने मुगलों से बैर बसाने का जो कारण बताया, वह अक्षरश: सत्य है। दुर्गादास ने

मारवाड़ देश अपने लिए नहीं जीता, परन्तु अपने पिता तुल्य राजा जसवन्तसिंह जी का आज्ञा पालन किया। महाराज अपने सरदारों को अपने मरने के दस दिन पहले आज्ञा दे गये थे, कि यदि हाड़ी वा भाटी रानी से ईश्वर की इच्छा से हमारी गद्दी का वारिस जन्मे, तो सब सरदार कार् कत्ताव्य होगा कि मारवाड़ देश को मुगलों से छुड़ाकर राजकुमार को गद्दी पर बिठावें। आज वीर दुर्गादास ने अपनेर् कत्ताव्य का पालन कर दिखाया। अब हम लोगों के लिए उचित है कि जी तोड़कर वीर दुर्गादास की सहायता करें जिसमें वह समय शीघ्र ही आ जाय, कि सब राजपूत अपने राजकुमार को जोधपुर की गद्दी पर बैठे देखें!

जनता एक ही आवाज में बोल उठी हम लोग अपने राजकुमार के लिए तथा। मारवाड़ देश के लिए मर मिटने को तैयार हैं।

महासिंह जी जनता का जोश देखकर अपने राजगुरु जयदेव की ओर देखा। गुरुजी ने वीरों को माघ सुदी पंचमी के दिन युद्ध पर जाने की अनुमति दी। सब सरदारों ने अपनी-अपनी सेना सहित मुहूर्त के एक दिन पहले ही आने की प्रतीज्ञा की। सभा विसर्जित हुई। एकत्र जनता तथा। राजपूत सरदारों ने एक दूसरे से विदा ली और वीर दुर्गादास की बड़ाई करते हुए अपने-अपने घर गये।

बेचारे दुर्गादास का घर तो कहीं रहा ही न था।, इसलिए महासिंह आदि सरदारों को साथ लेकर राजभवन में लौट आया, और घायल राजपूतों तथा। मुगल बन्दियों की देख-रेख में अपने दिन बिताने लगा। वह अपने अधीन कैदियों को कभी दुःख न देता; वरन् मित्र समान व्यवहार करता था। मुहम्मद खाँ को तो बहुत मानता था। शत्रु हो अथवा मित्र, किसी की नेकी कभी भूलता न था। क्षमा करने में तो एक ही था। इनायत खाँ ने दुर्गादास के लिये क्या न उठा रखा था।; परन्तु उसे भी क्षमादान दिया। कभी उन सबको बुलाता और कभी आप ही उनके पास जाता। रात-रात भर उनसे बातें करता रहता। उसके हृदय में मालिन्य का लेश भी न था। ।

धीरे-धीरे एक महीना बीता, और चारों ओर से बादलों के समान राजपूत सेनाएं उमड़-घुमड़कर चलने लगीं। जोधपुर में राजपूत वीरों का एक अच्छा जमाव हो गया। बीकानेर और जैसलमेर के सरदारों ने आकर उदयपुर में पड़ाव डाला और जयसिंह के साथ देसुरी आ पहुंचे। माघ सुदी पंचमी के दिन वीर दुर्गादास जोधपुर की एकत्र सेना लेकर ठाकुर जयसिंह से देसुरी में आ मिला। वह चारों मुगल सरदारों को उनकी मुसलमानी सेना सहित अपने साथ लाया था।, क्योंकि बादशाह से बन्दियों की अदला-बदली करनी थी। ये लोग राजपूतों से कुछ ऐसे मिल-जुल गये थे कि कोई

देखने वाला इन्हें कदापि कैदी नहीं कह सकता था। परस्पर भाई-चारे का-सा व्यवहार था। एक दूसरे से बड़े प्रेम से मिलता था।, और विश्वास करता था। यह था। संगति का फल, और वीर दुर्गादास का बर्ताव, कि शत्रु भी मित्र बन गये। और समय-समय पर हितकर सलाह भी देने लगे,जिसे दुर्गादास सहर्ष मानता था। आज ही जब देसुरी से सेना के आगे चलने के विषय में सलाह हो रही थी तो मुहम्मद खाँ ने इसका विरोधा किया। और बात ठीक थी; क्योंकि झुपपुटा हो चुका था। आगे यदि पड़ाव के लिए उचित समय न मिलता, तो बड़ी असुविधा होती। सेना के लिए भोजन और विश्राम जरूरी है। यह सोचकर पड़ाव देसुरी के ही मैदान में रहा। रात हुई। सबने भोजन किया और विश्राम करने लगे। दुर्गादास जरूरी कामों से निपटकर अकबर शाह के डेरे में गया और बैठकर बातचीत करने लगा। बातों में औरंगजेब का प्रसंग छिड़ गया। दुर्गादास ने कहा — भाई! आप मानें, या न मानें क्योंकि वह आपके पिता हैं, परन्तु मैं तो यही कहूँगा कि औरंगजेब किसी पर विश्वास नहीं करते! देखो उन्होंने राजा जसवन्तसिंह के साथ कैसा कपट व्यवहार किया! उन्हीं के इशारे से काबुल में बलवा हुआ, जिसमें जहरीले कपड़े पहनाकर जान ली। तब धोखे से मारवाड़ को अपने अधीन कर लिया। फिर भी सन्तोष न हुआ। यहाँ तक कि महाराज का वंश ही नष्ट करने

पर उतारू हो गये! दिल्ली में ही, अजीतसिंह के मरवाने के लिए क्या नहीं किया? देखो भाई अकबरशाह! भला कोई अपने मित्र के साथ ऐसा विश्वासघात करता है? अच्छा, मान लो, हम लोग परधार्मी थे; हमारे साथ जो कुछ किया, अच्छा किया; परन्तु क्या तुम्हारे बाबा शाहजहाँ भी काफिर थे? जिन्हें कारागार में पानी का भी कष्ट दिया। अपने सगे भाइयों तथा। भतीजों से जैसा बर्ताव किया, क्या वह आपसे छिपा है? खैर यह भी सही, वह दूर के थे; परन्तु आप तो उनके बेटे हैं, वे आप ही पर विश्वास नहीं करते। अगर विश्वास करते तो तैवर खाँ को आपकी देख-रेख के लिए तैनात न करते! अगर आपको यकीन न आये तो तैवर खाँ के पूछ देखें।

अकबरशाह को विश्वास न आया; परन्तु यह बात उसके मन में खटकती रही। आखिर तैवर खाँ को बुलाने के लिए तुरन्त ही एक चौकीदार भेजा। थोड़ी देर में तैवर खाँ और जयसिंह शाहजादे के डेरे में आ पहुंचे। वीर दुर्गादास ने बड़े सम्मान से दोनों को आसन दिया। जब दोनों बैठ गये, तो अकबर शाह ने पूछा भाई तैवर खाँ, मुझे विश्वास है कि तुम कभी झूठ नहीं बोलते; तथा।पि आज ठाकुर जयसिंह और दुर्गादास के सामने तुम्हें कुरान की सौगन्ध देता हूँ, कि जो कुछ भी पूछा जाय, उसका उत्तार सत्य ही हो। तैवर खाँ ने कहा — पूछिए, आप

लोग क्या पूछना चाहते हैं? शाहजादे ने पूछा बादशाह सलामत ने मेरे बारे में कुछ कहा — था।?

तैवर खाँ उत्तार देने के पहले कुछ हिचकिचाया, फिर जी कड़ा करके बोला हाँ, कहा — तो कुछ न था।; परन्तु मैं आपके सामने कहते डरता हूँ।

दुर्गादास ने कहा — भाई, डर किस बात का? जब कुरान की सौगन्ध दी गई, तो ऐसा कौन मूर्ख है, जो तुम्हारे सच बोलने पर क्रोध करे?जो कुछ कहना हो, निडर होकर कहो।

तैवर खाँ ने कहा — जब दिल्ली से हम अपना लश्कर लेकर चलने लगे तब बादशाह ने हमें एकान्त में बुलाया और कहा — देखो तैवर खाँ! हम दुनिया में तुमसे ज्यादा किसी को प्यार नहीं करते। हम जानते हैं कि तुम मुहम्मद खाँ की तरह कभी धोखा न दोगे, क्यों? तुमको बादशाही का लालच नहीं। जिसको किसी चीज का लोभ होता है, वही दगा करते हैं। हमको अगर कुछ सन्देह है, तो अकबर शाह पर क्योंकि उसको राज्य का लालच है। सम्भव है कि वह कपटी दुर्गादास की बातों में आ जाय और हमारे साथ वही बर्ताव करे, जो हमने अपने बाप के साथ किया था।, इसलिए तुम्हें होशियार किये देता हूँ, कि उसकी नीयत अगर

बुरी देखना तो उसी समय तलवार के घाट उतार देना। मैं तुमको सब तरह के अधिकार देता हूँ।

इतना कहकर तैवर खाँ चुप हो गया।

अकबर शाह चिन्तित होकर बोला भाई दुर्गादास! आपका कहना सत्य है। अब्बाजान कहते कुछ हैं, करते कुछ हैं, उनकी मसलहत समझ में नहीं आती।

जयसिंह ने कहा — अब आप ही कहिए। ऐसे राजा का कौन साथ देना चाहेगा? इससे यह न समझना कि मुसलमान होने के कारण हम लोग शत्रु बन गये। हमने नीति पर चलने वाले बादशाहों के लिए अपने भाइयों के गले पर तलवार चलाई है। आप ही के नामराशि, आपके पूर्वज अकबर तथा। शाहजहाँ को ठाकुरों ने कब सहायता नहीं दी? वे लोग प्रजा-पालक थे। अपनी प्रजा को पुत्र के समान मानते थे। हिन्दू हो या मुसलमान हो, सबको योग्यता के अनुसार ओहदे देते थे। कभी किसी के धार्म में हस्तक्षेप नहीं करते थे। हम लोग ऐसे बादशाहों के साथी हैं। तुम्हारे पिता-जैसे बादशाह के साथी नहीं, जो मन्दिर तोड़कर मसजिद बनाये, हमारी मूर्तियों को मसजिद की सीढ़ियों में लगाये, तीर्थ यात्रियों के कर ले और निर्दोष हिन्दुओं पर काफिर कहकर

बिना अपराध के ही अत्याचार करे। आप ही कहिए, यह जुल्म नहीं तो क्या है?

दुर्गादास अगर आप लोग औरंगजेब की करतूतों को दरअसल पाप और जुल्म समझते हो, और उनसे बचना चाहते हों तो जैसे हम कहें,वैसा करने की प्रतीक्षा करें, परन्तु समय पड़ने पर धोखा न देना। हम औरंगजेब को पकड़कर शाहजादे को गद्दी पर बिठा देंगे। इनका जैसा नाम है, वैसा ही बादशाह अकबर के-से गुण भी हैं। यदि ऐसा करना चाहते हों, तो सरदार मुहमद खाँ को बुला लो, मैं उपाय बताता हूँ।

जब तक चौकीदार मुहम्मद खाँ को बुलाकर लाये, इतनी देर में मन-ही-मन शाहजादा न जाने क्या-क्या सोच गया। मुहम्मत खाँ के आ जाने के बाद शाहजादे ने कहा — भाई दुर्गादास! आप जो कुछ करना चाहते हैं, इसमें कोई सन्देह तो नहीं कि इससे बढ़कर कोई उपाय नहीं जिसमें हम दोनों की भलाई हो, परन्तु भाई! राज के लिए मैं ऐसा पाप नहीं कर सकता।

मुहम्मद खाँ ने कहा — शाहजादा! अभी आप बालक हैं, राजनीति नहीं जानते। बहुत पापों से बचने के लिए यदि एक पाप किया जाय, तो वह पाप नहीं, पुण्य है। इतना तो आप ही समझ सकते हैं, कि आपके गद्दी पर बैठने के बाद ये जुल्म, जो अभी हो रहे हैं,

क्या बन्द न हो जायेंगे? फिर राजपूतों की जो शिकायत है, वह दूर हो जायगी। परस्पर मेल हो जाने पर प्रजा कितने सुख से रहे; इसलिए हमें तो ऐसा करने में कोई पाप नहीं मालूम होता। अब रहा यह कि औरंगजेब ने अपने बाप को कारागार में रखकर बड़ा कष्ट दिया था।, आप ऐसा न करना। चलो, बस हो चुका। अगर आप इतने पर भी राजी नहीं, तो राजकुल में वृथा। ही जन्म लिया था।, कहीं फकीर होते जाके।

तैवर खाँ ने कहा — इसमें आपको करना ही क्या है? हम कैदियों की अदला-बदली के बहाने अपनी मुगल-सेना लेकर जायेंगे, और पीछे से राजपूत सेना एकाएकी घावा कर देगी! बादशाह अपनी सेना समझकर हमारी ओर अवश्य भागेगा, बस हमारा काम बन जायगा। बादशाह को पकड़कर वीर दुर्गादास को सौंप देंगे, और आपको शाही तख्त पर बिठा देंगे।

अकबरशाह की नीयत बिगड़ी! संसार में ऐसा कौन है, जो लक्ष्मी का तिरस्कार करे? अब रात भी आधी बीत चुकी थी और सब सरदार भी दुर्गादास की राय पर सहमत थे। बातचीत बन्द हुई, सब लोग अपने-अपने डेरे में विश्राम करने चले गये। शाहजादा अपनी सेज पर पड़ा-पड़ा अपने भविष्य पर विचार करता रहा। सवेरा हुआ और कूच का डंका बजा। सरदारों ने अपनी-अपनी सेनाएं संभाली और बुधावाड़ी के मैदान की तरफ रवाना हुए।

यहाँ से अजमेर केवल डेढ़-दो कोस रह जाता है। लड़ाई के लिए मैदान भी अच्छा था।, और सेना के लिए भी सब प्रकार की सुविधा थी। दुर्गादास ने पड़ाव के लिए यही जगह उचित समझी। इनके दोनों तरफ पहाड़ी प्रदेश था। यहाँ युद्ध को किसी प्रकार की होने से प्रजा हानि नहीं पहुँच सकती थी। और वीर दुर्गादास का मतलब भी यही था।, नहीं तो आगे ही से बस्ती के बाहर मोर्चाबन्दी क्यों करता? अस्तु,वीर दुर्गादास के आज्ञानुसार पड़ाव यहीं पड़ा। सरदारों ने सेना के भोजन तथा। विश्राम का पूरा प्रबन्ध किया।

शाम को जयसिंह तथा। दुर्गादास आदि मुगल सरदारों से मिलकर औरंगजेब के लिए जो षडयंत्र रचा गया था।, उस पर विचार करने लगे। दुर्गादास ने कहा — खाँ साहब, देखो, धोखा न देना! नहीं तो बेचारे अकबरशाह के अरमान खाक में मिल जायेंगे। अगर धोखा दिया भी,तो हमारा क्या जायेगा? हम तो लड़ाई के लिए घर से निकले ही हैं, जहाँ एक से निपटना है, वहाँ दो से सही!

मुहम्मद खाँ ने कहा — वाह! हम मुसलमान हैं, बात कहकर बदलते नहीं। आगे बढ़कर पीछे नहीं हटते। फिर यह तो अपने मतलब की बात है। इसी तरह अपनी-अपनी उड़ा रहे थे। अकबरशाह तो इतने प्रसन्न थे, मानो बादशाह ही बने बैठे हैं।

परन्तु यह अभी किसी को नहीं मालूम कि बना बनाया खेल बिगड़ गया। मनुष्य लाख सिर मारे; जो ईश्वर चाहता है, वही होता है। उसके सभी काम विलक्षण हैं, कौन जान सकता है कि कब क्या होगा। चाहे जितनी गुप्त रीति से बातचीत क्यों न की जाय, भेद खुल ही जाता है। बड़े-बड़े लोगों ने कहा — है कि कान दीवार के भी होते हैं। जब देसुरी में शाहजादे के खेमे में इस पर बातचीत हो रही थी उस समय एक मुगल सिपाही शमशेर बाहर पहरे पर था। वह बात सुन रहा था। यह था। मौलवी; कट्टर मुसलमान। अकबर और शाहजहाँ को भी काफिर ही कहता था। वह रोजा और नमाज से बढ़कर सबाब हिन्दुओं को दुख देने ही में समझता था। उसने सोचा कि काफिरों ने एक कट्टर मुसलमान बादशाह के विरुद्ध षडयंत्र रचा है, और वह मुझे मालूम हो गया है। अगर मैंने कोई उपाय न किया तो मैं भी खुदावन्द करीम की नजरों में काफिर ही बनूंगा; इसलिए यहाँ से निकलना चाहिए, देर करने में काम बिगड़ता है। और काम बिगड़ने पर केवल पछतावा ही साथ रहेगा। पछता ही के क्या करूंगा? फिर यहाँ किसलिए ठहरूं? अगर बच निकला तो एक मुसलमान को काफिरों के पंजे से छुड़ा सकूंगा, और अगर पकड़ा गया, तो इस्लाम के नाम कुरबान हो जाऊं। अस्तु; मौलवी साहब को किसी तरह का कष्ट न उठाना पड़ा। सुगमता से निकल

गये, क्योंकि वीर दुर्गादास ने अपने मुगल कैदियों पर कड़ा पहरा न रखा था। दूसरे दिन मौलवी साहब अजमेर पहुंचे और बादशाह से कच्चा चिट्ठा कह सुनाया। औरंगजेब था। बड़ा ही धूर्त, तुरंत ही एक चिट्ठी अकबरशाह के नाम लिखवाकर एक फकीर को दी, कि इसे दुर्गादास के खेमे में डाल दे। फकीर को इनाम दिया गया। फकीर को कहीं रोक-टोक तो थी नहीं, मांगता-जांचता लश्कर में पहुंचा और अवसर पाकर पत्र दुर्गादास के डेरे में फेंक दिया। दैवयोग से वह पत्र सन्तरी के हाथ लगा, उठाकर दुर्गादास के पास लाया। दुर्गादास ने देखा तो उस पर शाही मुहर थी, और शहजादे के नाम था। खोलकर पढ़ने लगा

'बेटा अकबरशाह! मैं तुम्हारे मुँह पर तुम्हारी बड़ाई नहीं करना चाहता, नहीं तो जितनी बड़ाई की जाय, वह थोड़ी ही है। तुमने काफिरों को फंसाने के लिए अच्छी युक्ति निकाली; मगर देखो, सावधान रहना। दुर्गादास बड़ा ही चालाक है। कहीं काम बिगड़ने न पावे। तैवर खाँ से सलाह लेते रहना, वह बड़ा पक्का मुसलमान है। बेटा! मैं तुम्हारे पत्र का उत्तार कभी न देता; क्योंकि दूसरे के हाथ में पड़ जाने से काम में बाधा पड़ने का अंदेशा था।; परन्तु फिर यह सोचा कि कदाचित तुम्हें सन्देश बना रहे, कि तुम्हारा पत्र हम तक पहुंचा या नहीं और मैं हो गया या नहीं? इसलिए विवश हुआ।

तुम्हारा पिता।'

यह पत्र पढ़कर दुर्गादास को अकबरशाह पर सन्देह उत्पन्न हो गया। पत्र लिए हुए सीधा जयसिंह के पास पहुंचा। पत्र तो उनके हाथ में दे दिया और पलंग पर बैठकर पापियों के विश्वासघात से होनेवाले परिणाम पर विचार करने लगा। जयसिंह ने पत्र पढ़ा और म्यान से तलवार खींच ली। दुर्गादास ने कहा — यह क्या? जयसिंह ने कहा — भाई! आप तो क्षमा के अवतार हैं। किसी ने कैसा ही अपराधा क्यों न किया हो आप क्षमा कर देते हैं, परन्तु मुझमें यह दैवी गुण नहीं। दुष्टों को विश्वासघात का मजा चखाऊंगा। दुर्गादास ने कहा — भाई! यह राजपूतों का धार्म नहीं। वे हमारे बन्दी हैं, और इसके अतिरिक्त आज तक उनसे हमारा भाई-चारे का बर्ताव रहा। अब आप उन्हें बिना किसी अपराधा के मारना चाहते हैं, यह अनुचित कार्य करने की मेरी इच्छा नहीं।

जयसिंह ने शान्त होकर पूछा अच्छा! तो बताइये आपकी इच्छा क्या है?

दुर्गादास ने कहा — अगर मेरी इच्छा पूछते हो, तो इन्हें इसी प्रकार सोते ही छोड़ दिया जाय और हम अपनी सेना को देववाड़ी की पहाड़ियों में छिपा दें। औरंगजेब की सेना के आने पर दोनों

तरफ से साथ ही धावा बोल दिया जाय। हमें विश्वास है; वह दुतरफा मार कभी न सह सकेगा। अगर भागना चाहेगा, तो सामनेवाले दर्रे के सिवा और दूसरा रास्ता न होगा। और जब दर्दे में फंसा तो उबरना कठिन होगा। फिर या तो हमारी शरण आयेगा या बेमौत मरेगा।

यह सलाह जयसिंह के मन में बैठ गई। धीरे-धीरे राजपूत सरदारों को सचेत किया। सबों ने अपनी-अपनी सेना संभाली और रात के पिछले पहर तक देववाड़ी के पहाड़ी प्रदेश में जा पहुंचे। सवेरा हुआ। तारों की चमक फीकी पड़ने लगी, प्रकाश का रंग बदलने लगा। अपने-अपने घोंसलों से निकलकर पक्षियों ने शाखाओं पर ईश्वर का गुणगान प्रारम्भ किया। अजान सुनकर मुगल सरदारों ने भी नमाज की तैयारी की। खेमे से बाहर निकले थे कि बस, जान सूख गई। कहाँ की नमाज; और कहाँ का रोजा! यहाँ तो प्राणों पर आ बनी। अकबरशाह की तो कुछ पूछो ही न। जो कल बादशाह बने बैठे थे, आज भागने का रास्ता न पाते थे। चेहरे पर जो शाही झलक थी, आज फीकी पड़ गई। सोचने लगा या खुदा! माजरा क्या है! राजपूत सेना थी, कि इन्द्रजाल का तमाशा?

तैवर खाँ से बोला हमें दुर्गादास के चले जाने का दुःख नहीं। दुःख तो यह है कि चोरी से क्यों चले गये? क्या हम लोग उन्हें

रोक लेते?हम लोग तो खुद ही उनके बन्दी थे, फिर छिपकर जाने का कारण क्या था।? तैवर खाँ ने कहा — शाहजादा! इसमें दुख की कौन बात है?हम लोगों पर दुर्गादास को विश्वास नहीं आया और ठीक भी है! विश्वास कैसे आता? एक मछली सारे ताल को गन्दा कर देती है। फिर बादशाह ने छल-पर-छल किये हैं। यह दुर्गादास की भलमंसी थी, कि हम लोगों को बिना किसी प्रकार का दुःख पहुंचाये ही छोड़कर चला गया। नहीं जान से मार डालता तो हम उसका क्या बना लेते आखिर थे तो उसी के अधीन! जो चाहता, करता।

मुहम्मद खाँ ने कहा — भाई! दुर्गादास ने जो कुछ किया, अच्छा किया। अब हम लोगों को चाहिए कि दुर्गादास को दिखा दें कि सब आदमी एक-से नहीं होते। अगर कुछ मुसलमान झूठे होते हैं, तो कुछ अपनी प्रतिज्ञा के सच्चे भी होते हैं। इसलिए शाहजादे को जाने दो कि वह दुर्गादास की तलाश करें। हम लोग अपना लश्कर लेकर मोर्चे पर चलें और बादशाह से लोहा लें, मरें या मारें। अपनार् कत्ताव्य पालन करें। यह खबर पाकर दुर्गादास अपनी करतूत पर लज्जित होगा।

तैवर खाँ को यह सलाह पसन्द आई। अकबरशाह को विदा किया और अपना लश्कर लेकर औरंगजेब के मुकाबिले पर चला। रास्ते ही में औरंगजेब की सेना से मुठभेड़ हो गई। यह

लश्कर मुअज्जम और अजीम की सरदारी में था। ये दोनों ही अकबरशाह को अपने पथ का कण्टक समझते थे, परन्तु उन्हें रास्ता साफ करने की घात न मिलती थी। आज मुँहमांगी मुराद मिली। जी तोड़कर लड़ने लगे। पहले तो तैवर खाँ के सिपाहियों ने बड़ी बहादुरी दिखाई; मगर फिर मौलवी साहब का फतवा सुनते ही तोते की भांति आँखें बदल दीं और अपने दोनों सरदारों को घेरकर खुद ही मार डाला।

मुहम्मद खाँ और तैवर खाँ के मारे जाने के पश्चात अजीम ने अकबरशाह की बहुत खोज की, परन्तु पता न चला। विवश होकर अजमेर लौट पड़ा, क्योंकि सेना आधी से अधिक घायल हो गई थी, इसलिए वीर दुर्गादास का सामना करने की हिम्मत न रही। नहीं तो विजय के घमण्ड में आगे जरूर बढ़ता। घमण्ड तो दुर्गादास चूर ही कर देता; मगर बेचारे अकबरशाह के प्राण न बचते। किसी-न-किसी की दृष्टि पड़ ही जाती क्योंकि वह वीर दुर्गादास की खोज में देववाड़ी की पहाड़ियों पर इधर-उधर भटकता फिरता था। संयोगवश शामलदास के भेंट हो गई, जो पांच सौ सवार लिये देववाड़ी के मार्ग की चौकसी कर रहा था। पहले तो शामलदास को सन्देह हुआ कि कदाचित भेद लेने आया हो; लेकिन बातचीत होते ही सन्देह जाता रहा, और उसे वीर दुर्गादास के पास भेज दिया। शाहजादे को देखकर दुर्गादास लज्जित होकर

बोला शाहजादा! मुझे क्षमा करना, मुझसे अपनी इतनी आयु में पहली ही भूल हुई है। आज तक मैंने किसी के साथ विश्वासघात नहीं किया और न किसी निर्दोष पर तलवार ही उठाई है। आपके साथ जो मुझसे चूक हुई; वह धोखे में हुई। लीजिए यह अपने पिता का पत्र पढ़िए और आप ही कहिए,ऐसी स्थिति में हमारा कर्तव्य क्या होना चाहिए था।?

शाहजादे ने पत्र पढ़कर कहा — भाई दुर्गादास, इसमें तुम्हारा दोष नहीं, यह हमारी कम्बख्ती थी। मृत्यु की सामग्री तो पत्र ही में थी,परन्तु न जाने अभी भाग्य में क्या, जो जीवित रहे? खुदा जाने, तैवर खाँ पर कैसी गुजरी? दुर्गादास ने कहा — शाहजादा! मुझे दुःख इस बात का है, कि भूल की मैंने और मारे गये मुहम्मद खाँ और तैवर खाँ।

दुर्गादास का यह अन्तिम वाक्य पूरा भी न हुआ था। कि 'अल्लाहो अकबर' की आवाज कानों में सुनाई दी। शाहजादे पर फिर सन्देह उत्पन्न हुआ, मगर आगे बढ़कर पहाड़ी से जो नीचे झांका तो औरंगजेब की सेना दर्रे में फंसी देखी। फिर क्या था।, राजपूतों को लेकर टूट पड़ा! लगी दुतरफा मार पड़ने। मुगल सेना जिस तरह भागती थी, उसी तरफ अपने को राजपूतों से घिरा पाती थी। दुर्गादास ने सिवा एक पहाड़ी दर्रे के चारों तरफ से देववाड़ी की पहाड़ियां घेर रखी थीं। इस दर्रे के तीनों तरफ

ऊंची-ऊंची पहाड़ियां थीं और एक तरफ रास्ता था।; वह भी छोटा-सा। औरंगजेब यह क्या जाने की हमारे बचने का रास्ता नहीं, चूहादान है? पिल पड़ा। पीछे-पीछे लश्कर भी पहुँच गया। राजपूतों ने ऐसा पीछा किया, जैसे चरवाहे भेड़ों को बाड़े में हांकते हैं। जब सारा लश्कर दर्रे में चला गया, तो राजपूतों ने खिलवाड़ की तरह वह भी रास्ता पत्थरों से बन्द कर दिया। पहाड़ियां इतनी ऊंची और इतनी कठिन न थीं कि कोई चढ़ न सके; परन्तु कठिनाई अवश्य थी। रात अभी एक पहर से अधिक तो बीती न थी, लेकिन अंधियारा हो चुका था। और चन्द्रमा का प्रकाश भी इतना न था। उस पर राजपूत ऊपर से पत्थर ढकेल रहे थे। सारांश यह है कि सब ढंग बेमौत मरने के ही थे। फल यह हुआ कि कुछ तो पत्थरों से घायल मर गये और कुछ जीते रहे; परन्तु वे भी मृतकों से किसी दशा में अच्छे न थे। उपाय तो राजपूतों ने यही सोचा था। कि एक भी मुगल जीवित न बचे, और दर्रा भी आधो के लगभग पाट दिया था।, परन्तु औरंगजेब के भाग्य को क्या करते। उसे एक छोटी-सी खोह मिल गई। बाप-बेटे दोनों बड़ी सावधानी से उसी में दुबक रहे।

जब राजपूतों का उपद्रव शान्त हुआ, तो दोनों दबे पांव बाहर निकले। रात का पिछला पहर था। चन्द्रदेव अस्त हो चुके थे। हाँ, चारों तरफ आकाश पर तारे जरूर झिलमिला रहे थे।

दुर्गादास अपना लश्कर लेकर बुधाबाड़ी लौट आया, मैदान साफ था।, इसलिए औरंगजेब को ऊंची-ऊंची पहाड़ियों पर चढ़ने के सिवा और कोई अड़चन न पड़ी। कोई कहीं देख न ले! शत्रु के हाथ फिर न पड़ जायें! केवल यही भय था। इसलिए अपने को छिपाता हुआ बड़ी सावधानी से इधर-उधर पहाड़ियों में भटकने लगा। जैसे-तैसे भूखा-प्यासा तीसरे दिन अजमेर पहुंचा। अजीम उससे पहले ही वहाँ पहुँच गया था। औरंगजेब उस पर बहुत झुंझला गया और गुस्सा कुछ अजीम ही पर न था। वह जिसे पाता था।, फाड़ खाता था। जलपान के पश्चात जरा जी ठिकाने हुआ, तो सरदारों को बुलाया। जब किसी में वीर दुर्गादास का सामना करने का साहस न देखा तो अपने राज्य के कोने-कोने से मुसलमानी सेना भेजने के लिए सूबेदारों को आज्ञा-पत्र लिखवाये। फिर भी सन्तोष न हुआ। सोचने लगा कि इतनी मुगल सेना,जिसे दुर्गादास का सामना करने को भेज सकूं; एक सप्ताह में एकत्र होना असम्भव है और दुर्गादास का कुछ ठीक नहीं, न जाने कब अजमेर पर धावा बोल दे? इसलिए कोई जाल फेंकना चाहिए।

दूसरे दिन सरदार जुल्फिकार खाँ को चालीस हजार अशर्फियां देकर वीर दुर्गादास के पास भेजा। यह सरदार भी बड़ा चतुर था। शाम को दुर्गादास की छावनी में पहुंचा। सवेरे आज्ञा पाकर वीर दुर्गादास के पास गया। सलाम किया और अशर्फियां सामने

रखकर बोला ठाकुर साहब! हमारे बादशाह सलामत ने आपको सलाम कहा — है; और ये चालीस हजार अशर्फियां भेंट में भेजी हैं। ठाकुर साहब, अब आपको चाहिए कि बादशाह की भेंट को खुशी के साथ स्वीकार करें, और ईश्वर को धान्यवाद दें; क्योंकि बादशाह जल्द किसी पर प्रसन्न नहीं होते। न जाने क्यों आज आपकी बहादुरी पर खुश हो गये! पुरस्कार में ये चालीस हजार अशर्फियां ही नहीं भेजी, साथ ही साथ यह भी कहला भेजा है कि तेजकरण को पांच हजार सवारों का नायक बनाऊंगा और मारवाड़ के सरदारों के अधिकार जैसे राजा यशवन्तसिंह के सामने थे वैसे ही रहेंगे। जिसकी जागीर जब्ती की गई है, वह लौटा दी जायगी। और लौट जाने पर, सब राजपूत बन्दी भी छोड़ दिये जायेंगे। इसलिए कृपा कर मुझे शीघ्र ही लौट जाने की आज्ञा दे और शाहजादे को सादर मेरे साथ कर दें। बादशाह अकबरशाह के वियोग से दुखी हैं। उसे देखते ही बड़ा प्रसन्न होगा; ईश्वर जाने आपके साथ और क्या भलाई करे? अच्छे कामों में देर न करनी चाहिए। शंका विनाश का कारण है। शंका करने से बने-बनाये काम बिगड़ते हैं। अगर मैं खाली हाथ लौटा तो समझे रहिए, राजाओं की प्रसन्नता उतना सुख नहीं देती, जितना कि अप्रसन्नता दुःख देती है। ईश्वर न करे, कहीं बादशाह आपके बर्ताव से चिढ़ जाय, तो यह जान लीजिएगा कि पलक मारते ही

जोधपुर का सत्यानाश कर डालेगा। जो बादशाह क्षण-मात्र में बीस लाख सेना इकट्ठी कर सकता है, उसका सामना आप मुट्ठी भर राजपूत लेकर क्या कर सकते हैं? मैं आपकी भलाई के लिए आया हूँ, बुराई के लिए नहीं। अगर आप अपने धार्म को, अपनी बहन-बेटियों की, अपने भोले भाइयों की और देव-मंदिरों की भलाई चाहते हों, तो शाहजादे को हमारे साथ कर दें। ठाकुर साहब, एक के लिए बहुतों को दुःख में डालना चतुराई नहीं।

दुर्गादास चुपचाप सरदार जुल्फिकार खाँ की बातें सुन रहा था। और सोच रहा था। कि क्या उत्तार दिया जाय? अगर हाँ, करता हूँ, तो अधार्म होता है। अभयदान देकर शाहजादे को फिर क्योंकर मौत के मुँह में डाल दूँ। अगर न करता हूँ तो न जाने सरदारों के मन में क्या हो। दुर्गादास इसी सोच-विचार में पड़ा था। शाहजादा बड़ी देर से दुर्गादास की तरफ देख रहा था। क्या उत्तार देते हैं? जब देखा कि दुर्गादास बोलते ही नहीं, मौनव्रत ही धारण कर लिया है, तो शाहजादे को चिन्ता ने घेर दबाया। उदास मन विचारने लगा कि कदाचित वीर दुर्गादास अपने प्राणों के लालच से मुझे न त्यागा; परन्तु अब तो अपने देश, धार्म और जाति का प्रश्न है। देश की भलाई के निमित्ता मुझे अवश्य त्याग देगा; क्योंकि अपनी जाति वालों के आगे मुझ मुगल के प्राणों की उसे क्या परवाह होगी? और उचित भी ऐसा ही है। जहाँ एक के

बलिदान से अनेकानेकों की रक्षा होती हो, इसमें विलम्ब न करना चाहिए। तब दुर्गादास जुल्फिकार खाँ की बातों का उत्तार क्यों नहीं देता कदाचि असमंजस में पड़ा हो कि जिसको अभयदान दे चुका है, उसे किस प्रकार त्याग दे? मेरी तो मृत्यु आ ही गई, तब अपने शुभचिन्तक को अधिक कष्ट क्यों पहुंचाऊं?

यह विचार कर शाहजादा उठ खड़ा हुआ और कहने लगा वीर दुर्गादास! मैं आपकी नहीं, बल्कि अपनी इच्छा से सरदार जुल्फिकार खाँ के साथ जा रहा हूँ। इसमें आपका कुछ दोष नहीं; क्योंकि जहाँ तक हो सका, आपने मेरी रक्षा की। मनुष्य अपनी शक्ति के बाहर क्या कर सकता है? कोई किसी का भाग्य नहीं पलट सकता।

वीर दुर्गादास ने शाहजादे का हाथ पकड़कर अपने पास बिठा लिया और बोला, शाहजादे! मैं चालीस हजार क्या, अगर बादशाह अपना राज्य भी देकर तुम्हें लेना चाहे तब भी तुम्हें अब मृत्यु के मुख में नहीं डाल सकता। मैं अपने कुल और जाति को कलंकित नहीं करना चाहता। राजपूतों के मुख में एक ही जिह्ना होती है। शाहजादा, कदाचित तुमने यह सोचा हो कि मेरे एक के लिए दुर्गादास अपने देश भर को विपत्ति में क्यों डालेगा? तो यह तुम्हारी भूल है। देखो, केवल महासिंह के लिए हमारे मारवाड़-वासियों ने कितना कष्ट भोगा; परन्तु उसका फल कैसा मिला?

कहना व्यर्थ है, हाथकंगन को आरसी क्या। देखो, मारवाड़ स्वतंत्र हुआ। बादशाह ने सलाम के साथ-साथ चालीस हजार की भेंट भेजी है। अब यदि तुम्हारे लिए कष्ट उठाना पड़ेगा तो उससे भी अच्छे फल की आशा है। अंधोरे के बाद ही उजाला होता है। दुःख भोगने के पश्चात् ही सुख का आनन्द मिलता है। मिट्टी में मिल जाने के पश्चात् ही बीज हरा-भरा वृक्ष बनता है।

दुर्गादास को इस प्रकार शाहजादे को तसल्ली देते देख, जयसिंह को अब सरदार जुल्फिकार खाँ की बातों का जवाब देने में सहायता मिली। बड़ी नरमी के साथ बोला जुल्फिकार खाँ। तुम्हारे बादशाह ने आज तक राजपूत के लिए कौन ऐसा कष्ट पहुंचाने वाला काम था।, जो न किया हो? अब उससे अधिक कष्ट देने वाला कौन-सा उपाय सोच रखा है, जिसकी धामकी देता है। देव-मन्दिरों को तोड़कर मसजिदें बनवाईं, धार्म-पुस्तकों को जलवाया, ब्राह्मण्ों के जनेऊ तुड़वाये, सती अबलाओं का सतीत्व नष्ट कराया, तीर्थयात्रियों पर जजिया नामक कर लगाया और बिना अपराध ही के बेचारे निर्दोष राजपूतों को बन्दी-गृह का कष्ट भुगवाया। बहुतों को फांसी दिलाई अब तुम्हीं कहो, प्राण-दण्ड से अधिक और कौन दण्ड होगा। भाई, हम राजपूतों के साथ यदि वह न्याय का बर्ताव करता, तो हम लोग काले सर्प के समान उसे कभी न डसते, वरन् श्वान के समान उसकी सेवा करते। यह

नौबत कभी न आती कि इतना बड़ा बादशाह एक राजद्रोही के लिए प्रजा को झुककर सलाम करे! चालीस हजार अशर्फियों का लोभ दिलाये।

दुर्गादास ने कहा — भाई जयसिंह, आप ऐसी बातें किससे और किसलिए कर रहे हैं? मैं अभी तक इसलिए मौन बैठा रहा कि जुल्फिकार खाँ ने वृथा। बातें करके अपना समय क्यों नष्ट करूं? इनसे बातें करने में कोई लाभ तो है ही नहीं, उत्तार देकर क्या करें। इन्हें जो कुछ कहना है, कह लेने दो। बादशाह ने न धामकी दी है और न लालच, यह धोखेबाजी और जाल है। सरदार जुल्फिकार खाँ, आप अपनी ये अशर्फियां लीजिए, क्योंकि पाप से कमाये हुए धान की भेंट राजपूत कभी स्वीकार नहीं कर सकते! और न शरण में आये हुए को अपने प्राण रहते त्याग ही सकते हैं। इसलिए आप खुशी से लौट जाइए, और बादशाह के सलाम के जवाब में सलाम कहिए। जुल्फिकार खाँ ने अब भी बहुत कुछ कहा — सुना; परन्तु राजपूती हठ (प्राण जाहिं बरु वचन न जाहीं) कब छूट सकता है। अन्त में लाचार होकर जुल्फिकार खाँ को लौटना ही पड़ा।

जुल्फिकार खाँ के चले जाने के थोड़ी देर बाद उदयपुर के राणा का छोटा बेटा भीमसिंह आया। सब सरदारों से मिल-भेंटकर दुर्गादास के पास बैठ गया। जयसिंह ने पूछा भैया भीमसिंह! घुड़ाये

से क्यों हो! क्या कोई नई बात है? भीमसिंह ने कहा — घबराहट नहीं; परन्तु आश्चर्य अवश्य है। वह यह कि आप सबको नि्रूश्चत देख रहा हूँ। अभी तक आप लोगों ने अजमेर पर चढ़ाई क्यों न की? अवसर अच्छा था।, अब वह समय हाथ से निकल गया। औरंगजेब ने चारों तरफ लड़ाई बन्द करवा दी और सब मुगल-सेवा अजमेर बुला ली है। ईश्वर ही जाने अब मारवाड़ी की क्या दशा होने वाली है।

केसरीसिंह सबसे वृद्ध सरदार था।, बोला भाइयो! हमें अपनी या मारवाड़ की कोई चिन्ता नहीं। हमारा पहला धर्म है कि शाहजादे की रक्षा का प्रबन्ध किया जाय, पश्चात् औरंगजेब से लोहा लें। यह बात सब राजपूत सरदारों के मन में बैठ गई। वे सोचने लगे कि शाहजादे को कहाँ भेजा जाय, जहाँ उनकी रक्षा में किसी प्रकार की त्रुटि न हो? भीमसिंह ने कहा — महाराज, शिवाजी का पुत्र वीर शम्भा जी इनकी रक्षा कर सकेगा; क्योंकि एक तो वह वीर पुरुष है, दूसरे औरंगजेब का कट्टर शत्रु है, तीसरे अब वहाँ मुगल सेना नहीं है। लड़ाई बन्द है, सब तरह की सुविधा है। वीर दुर्गादास तथा। शाहजादे ने स्वयं शम्भाजी के पास जाना पसन्द किया।

शाम को दुर्गादास थोड़े-से सवारों को साथ लेकर शम्भाजी के पास चला और चलते समय सेना को मोर्चे पर ले जाने के लिए

सरदारों को आज्ञा देता गया। शहजादे को साथ लिए एक बहुतेक जंगल-पहाड़ पार करता हुआ तीसरे दिन शम्भाजी के यहाँ पहुंचा। शम्भा जी ने देखते ही शाहजादे को पहचान लिया और बड़े आदर-भाव से मिला। निश्चिन्त होने के पश्चात् दुर्गादास ने उससे अपने आने का कारण कह सुनाया। शम्भाजी ने अपना हार्दिक हर्ष प्रकट किया और कहा — भाई दुर्गादास! हम लोगों का मुख्य धार्म ही है कि शरणागत की रक्षा करें। फिर शहजादे ने तो हमारे साथ बड़ा उपकार किया है। जब दिल्ली के कारागार में मैं और मेरे पूज्य पिताजी दोनों बन्दी थे, उस समय शहजादे ने हमारी बड़ी सहायता की। इनका दिया हुआ घोड़ा अभी तक हमारे पास है। मैं इनकी रक्षा अपने प्राणों के समान करूंगा। अब आप इनसे निश्चिन्त रहिए।

रात को दुर्गादास ने वहीं विश्राम किया, दूसरे दिन शम्भा जी से विदा हो मारवाड़ की तरफ चल दिया। गुजरात के आगे एक पहाड़ी पर खड़े शामलदास मेड़तिया से भेंट हुई। यह अपनी सेना लेकर जयसिंह के आज्ञानुसार दक्षिण प्रान्त से आने वाली मुगल-सेना रोकने के लिए रास्ते में आ डटा था। यह हाल दुर्गादास को मालूम न था।; इसलिए शामलदास ने कहा — महाराज! आपके चले जाने के पश्चात् सब सरदारों ने यह सलाह की कि मुगल-सेना जो हम लोगों की असावधानी के कारण अजमेर आ चुकी सो

आ चुकी परन्तु अब दूर से आने वाली सेना के सब मार्ग रोक दिये जायें। नहीं तो स्वप्न में भी जय पाना कठिन होगा। यह सोचकर सरदारों ने कुछ सेना बंगाल, मद्रास और पंजाब की तरफ भेद दी है। अब जहाँ तक हो सके शीघ्र ही पहुंचिए। कदाचित् आज ही आपका रास्ता देखकर सरदार शोनिंगजी अजमेर पर चढ़ाई कर दें।

यह सुनकर वीर दुर्गादास शामलदास को युद्ध के विषय में कुछ समझा-बुझाकर घोड़े पर सवार हुआ। लगाम खींचते ही घोड़ा हवा से बातें करता हुआ चल दिया। रात के पिछले पहर बुधावाड़ी पहुंचा, मालूम हुआ सेना मोर्चे पर गई है। यद्यपि वीर दुर्गादास और घोड़ा दोनों ही लस्त हो चुके थे; परन्तु दुर्गादास तो देश-सेवा के लिए अपना शरीर अर्पण कर चुका था। बिना मारवाड़ स्वतन्त्रा किये उसे चैन कब था।, सीधा अजमेर भाग और पौ फटने के पहले अपनी सेना में पहुँच गया। यह सब समाचार औरंगजेब को मिला तो वह घबड़ा उठा; क्योंकि अजमेर में अभी तक मुगल सेना के दो ही भाग आ सके थे। बाकी सेना की प्रतीक्षा की जा रही थी। बादशाह को अपनी आधी सेना पर काफी भरोसा न था। इसलिए दूसरा जाल रचा और सवेरा होते ही सरदार दिलेर खाँ के हाथ सन्धि का सन्देश भेजा। वीर दुर्गादास ने कहा — सरदार दिलेर खाँ! भोले राजपूतों ने बहुत

धोखे खाये। अब हम लोग तुम्हारे बादशाह की जबानी बातचीत पर विश्वास नहीं करेंगे; अगर वह सचमुच सन्धि करना चाहता है तो बादशाही मुहर लगाकर पत्र लिखे कि हमारे धर्म पर आक्षेप न करेंगे, हिन्दू और मुसलिम में कोई अन्तर न समझेंगे,योग्यता पर ही ओहदे दिये जायेंगे; यदि तुम्हारा बादशाह ऐसा स्वीकार करता है तो हम लोग भी सन्धि को तैयार हैं। नहीं तो हाथ में ली हुई तलवारें मारने के बाद ही हाथ से छूटेंगी। बस जाओ, हमें जो कुछ कहना था।, कह चुके, अब हमारे कहने के विरुद्ध यदि उत्तार लाना हो तो युद्ध-स्थल में तलवार लेकर आना।

दिलेर खाँ कोरा उत्तार पाकर औरंगजेब के पास लौट गया और दो की चार बताई। सुनते ही औरंगजेब जल उठा। और तुरन्त ही युद्ध की तैयारी के लिए डंका बजवा दिया। मुगल-सेना मैदान में एकत्र हुई। उस समय एक ऊंचे स्थान पर खड़े होकर औरंगजेब ने धार्म उपदेश किया और सैनिकों को यहाँ तक उत्तेजित किया कि धर्मान्ध मुगलों को लड़ाई की दाव-घात की सुधि न रही। जिस प्रकार लहरें किनारे की चट्टानों से टकराकर फिर जाती हैं, उसी प्रकार मुगल सेना राजपूतों से टक्कर लेने लगी। वीर राजपूतों ने बड़ी सावधानी से हमलों को रोका और देखते-देखते आधी मुगल सेना काट डाली। धर्मान्ध औरंगजेब की आँखें खुलीं। सारा धर्म का घमण्ड जाता रहा। प्राणों के लाले

पड़े। दायें-बायें झांकने लगा और मौका पाकर प्राण ले भाग। सेना की भी हिम्मत टूट गई। पैर उखड़ गये। बादशाह के भागते ही सेना भी भाग खड़ी हुई। किले के अलावा दूसरी तरफ मार्ग न मिला; क्योंकि राजपूतों ने अपूर्व व्यूह-रचना की थी। जब मुगल-सेना किले में जा घुसी तो राजपूतों ने चारों तरफ से किला घेर लिया। उसी समय एक भेदिये ने बादशाह को खबर पहुंचाई कि शामलदास और दयालदास ने दक्षिण से आने वाली सेना का एक भी सिपाही जीवित नहीं छोड़ा और मालवे में भी राजपूतों ने बड़ा उपद्रव मचा रखा है। यह समाचार सुनकर औरंगजेब घबड़ा गया और राजपूतों से सन्धि कर लेने का निश्चय किया। अपने बड़े बेटे मुअज्जम को बुलाकर राजपूतों की मांगें सन्धि-पत्र पर लिखाकर बादशाही मोहर लगाई और दुर्गादास को भेज दिया। वीर दुर्गादास ने सन्धि-पत्र पढ़कर अपने सरदारों को सुनाया। किले का द्वार खोल दिया। बादशाही झण्डे की जगह राजपूती झण्डा फहराया गया। मारवाड़ की सब छोटी-बड़ी रियासतों को विलय-समाचार भेजा गया। और कुंवर अजीतसिंह ने राज्यभिषेक में सम्मिलित होने के लिए उन्हें निमन्त्रित किया गया।

वीर दुर्गादास ने कुंवर अजीतसिंह का राजतिलक औरंगजेब के हाथों करवाना निश्चिन्त किया था।, इसलिए उसे दिल्ली जाने से रोक लिया। दूसरे दिन वीर दुर्गादास अपने साथ करणसिंह,

गंभीरसिंह तथा। थोड़े-से सवार लेकर आबू की घनी पहाड़ियों में बसे हुए डुडंवा गाँव में पहुंचे। जयदेव ब्राह्मण के द्वार पर भीलों के लड़कों के साथ आनन्द से खेलते हुए कुंवर अजीतसिंह को देखा। यद्यपि अजीत अब आठ वर्ष का हो चुका था।;परन्तु राजचिह्नों को देखकर दुर्गादास ने पहचान लिया। आंखों में आनन्द के आँसू भर आये। अजीत को गोद में उठा लिया। उसी समय आनन्ददास खेंची भी आ पहुंचे। बड़े प्रेम से एक दूसरे के गले मिले। दुर्गादास ने खेंची महाशय को आठ वर्ष के अच्छे-बुरे समाचार कह सुनाये। अजमेर की विजय और कुंवर अजीतसिंह की राजगद्दी सुनकर सबको बड़ा ही आनन्द हुआ। यह शुभ समाचार वायु के समान क्षण भर में सारे गाँव में फैल गया।

नगरवासी तथा राजकुमार के साथ खेलने वाले सब साथी इकट्ठे हो गये। अब राजकुमार के भोले-भाले मुख पर अलबेली राजश्री प्रकाश था।छोटे-छोटे लड़के आपस में कहते थे भाई!हम लोगों ने अनजाने में बड़े अपराध किये हैं। हजारों बार खेल में राजकुमार को मारा होगा। भाई,एक दिन वह था। कि राजकुमार हम लोगों के साथ धूल में खेलते थे। अब कल वह दिन होगा कि सारे मारवाड़ देश के स्वामी बनकर राज-सिंहासन पर शोभा पायेंगे। राजमद में चूर होकर हम दीन-सखाओं की ओर फिर कृपा-दृष्टि क्यों करने लगे?इसी प्रकार अपनी-अपनी कहते थे

और राजकुमार के मुख की ओर एकटक देख रहे थे। राजकुमार भी अपने प्यारे मित्रों की तरफ बड़े प्रेम से देख रहा था। और सोच रहा था। कि चाचाजी इन सबको हमारे साथ ले चलेंगे या नहीं? एक बार अपने मित्रों की तरफ देखकर आनन्ददास खेंची की ओर देखा। खेंची महाशय ने राजकुमार का अभिप्राय समझकर बालकों से कहा — जाओ, अपने-अपने पिता को लेकर राजकुमार के साथ चलो, तुम लोगों के लिए इससे बढ़कर आनन्द का समय और कब होगा, कि तुम्हारे साथ खेलने वाला आज मारवाड़ देश का स्वामी हो!

थोड़ी ही देर में सारे नगर-निवासी राजकुमार का राजतिलक देखने के लिए साथ चलने के लिए तैयार होकर पहुंचे। जिससे जो हो सका,राजा को भेंट की सामग्री भी अपने साथ ले चला।
राजकुमार अपने मित्रों को अपने साथ चलते देख बड़ा मगन था। उमर ही अभी खेल-कूद की थी। था। तो केवल आठ वर्ष का! क्या जाने राज्य किसको कहते हैं? राजतिलक क्या होता है? वह तो यह सब खेल समझता था। आज तक उस बेचारे के सामने कभी पूज्य पिता का भी नाम न लिया गया था। वह संसार में किसी को अपना जानता था।, तो आनन्ददास खेंची को और देव शर्मा तथा। देव शर्मा की स्त्री को, जिन्हें वह चाचा-चाची कह कर बुलाता था। ।

गीदड़ों में पला हुआ सिंह का बच्चा चाहे उसके स्वाभाविक गुण नष्ट न हुए हों अपने को सिंह नहीं समझता, जब तक सिंहों के साथ न पड़े। यही बात राजकुमार अजीत के साथ थी। भीलों के साथ पाला गया था। फिर राज्य करना क्या जाने? अपने मित्रों से हंसता-बोलता दूसरे दिन यात्रा समाप्त कर दो-पहर दिन ढलते अजमेर आ पहुंचा। यहाँ भारी भीड़ थी। एक ओर मुगल सेना दूसरी ओर राजपूत सेना, सुन्दर वस्त्रों से विभूषित, राजकुमार का स्वागत करने के लिए खड़ी थी। स्थान-स्थान पर बाजे बज रहे थे, नाच-गान हो रहा था। ऐसा कोई भी घर न था।, जिसके द्वार पर बन्दनवार न बंधी हो, मंगलकलश न धरे हों। घर-घर आनन्द मनाया जा रहा था।, और जय-धवनि आकाश में गूंज रही थी। मारवाड़ की छोटी-बड़ी सब रियासतों के सरदार उपस्थित थे। राजकुमार का स्वागत बड़ी धूम-धाम से किया गया, और शुभ मुहूर्त में उसे सोने के सिंहासिन पर बैठाकर औरंगजेब के हाथों तिलक कराया गया। सरदारों ने राजकुमार के चरणों पर शीश झुकाया और यथा।शक्ति नजरें दी। उसी समय वृद्ध नाथू को साथ लिए हुए बाबा महेन्द्रनाथ जी पधारे। उपस्थित जनता ने उनका बड़ा सत्कार किया। नाथू ने स्वामी को महाराज यशवन्तसिंह की दी हुई लोहे की सन्दूकची सौंपी, जिसे वीर दुर्गादास ने भरे दरबार में महाराज अजीतसिंह को सर्मपण कर

दिया; और महाराज यशवन्तसिंह जी ने जिस अवस्था में और जो कुछ कहकर शोनिंग जी चम्पावत को सन्दूकची सौंपी थी, वह कह सुनाई। अजीतसिंह ने सन्दूकची बड़े मान के साथ लेकर दुर्गादास को फिर दे दी और उसे खोलकर प्रजा को दिखलाने की आज्ञा दी। सन्दूकची दरबार में खोली गई। उसमें महाराज यशवन्तसिंह का राजमुकुट राजकुमार को पहना दिया और जनता के सामने खड़े होकर राजकुमार अजीतसिंह के जन्म से लेकर राजतिलक-पर्यन्त जो-जो घटनाएं हुई थीं, कह सुनाई। दैवयोग वह मुसलमान मदारी भी मिल गया, जो खेंची महाशय और अजीत को छिपाकर लाया था। उसकी गवाही ने प्रजा का सन्देश समूल नष्ट कर दिया! वीर दुर्गादास को प्रजा ने कोटिश: धान्यवाद दिये, क्योंकि महाराज यशवन्तसिंह जी के वंश तथा। राज्य के रक्षक ये ही थे।

राजपूतों का यह आनन्दोत्सव औरंगजेब को अच्छा न लगता था।; इसलिए केवल तीन दिन अजमेर में रहकर महाराज अजीतसिंह से विदा हो दिल्ली चला गया। जोधपुर की प्रजा राजकुमार के दर्शन के लिए बड़ी उत्सुक थी। थोड़े दिनों तक रास्ता देखती रही, जब राजकुमार को जोधपुर में न देखा, तो वृध्दों और बालकों को छोड़कर, जिनके में चलने की शक्ति न थी, बाकी सब-की-सब अजमेर को चल दी। कई एक दिन में गाते-बजाते

आनन्द मानते प्रजाजन अजमेर पहुंचे। वीर दुर्गादास ने अपने राजकुमार पर प्रजा का इतना प्रेम देखकर दरबार किया। सबने अपने इच्छानुरूप दर्शन किये और उनसे जोधपुर की सूनी गद्दी शोभित करने की प्रार्थना की। महाराज ने अपने पूज्य पिता की गद्दी पर बैठना स्वीकार किया। लगभग तीन मास अजमेर में रहकर महाराज जोधपुर चले आये। आज प्रजा को जैसा आनन्द हुआ, कदाचित् महाराज यशवन्तसिंह के शासन-समय में न हुआ हो। घर-घर हवन होता था।, द्वारे-द्वारे मंगल कलश धरे थे। बन्दनवारें बंधी थी। सुगन्धित फूलों की मालाएं लटकी थीं। शीतल वायु चल रही थी। दरबार में सुन्दर वस्त्र पहने सरदार तथा। योग्यतानुरूप जनता बैठी थी। सामने सोने के सिंहासन पर महाराज अजीतसिंह बैठे थे! पास ही वीर दुर्गादास खड़ा हुआ महाराज के आज्ञानुसार, सहायता करने वाले राजपूतों को उनकी जागीरों में कुछ बढ़ती करता और पट्टे बांट रहा था। वृद्ध महासिंह को कोषाधयक्ष बनाया, गुलाबसिंह तथा। गम्भीरसिंह को महाराज का रक्षक नियुक्त किया। करणसिंह को सेना-नायक बनाया। और दरबारियों की अनुमति से अपने ऊपर राज्य-भार लिया। अन्त में महासिंह की कन्या लालवा की बारी आई। दुर्गादास ने उसको सबसे अच्छा और अमूल्य पुरस्कार दिया; अर्थात राणा राजसिंह जी के ज्येष्ठ पुत्र जयसिंह के साथ विवाह निश्चित

कराया और राज्य की ओर से ही बड़ी धू-धाम के साथ विवाह कर दिया।

इन सब आवश्यक कामों से छुट्टी पाने के बाद एक दिन दुर्गादास को शाहजादे अकबरशाह की याद आई; परन्तु शाहजादा वहाँ न मिला। पता लगाने पर मालूम हुआ कि दक्षिण में औरंगजेब की सहायता के लिए जब मुगल सेना जाने लगी तो शाहजादे ने शम्भाजी को उसके रोकने की अनुमति दी, परन्तु शम्भा जी ने सुनी अनसुनी कर दी। इस बात पर शहाजाद रुष्ट होकर मक्का चला गया और थोड़े दिनों के बाद वहीं उसका देहान्त हो गया। इस समाचार से दुर्गादास को बड़ा दुःख हुआ; परन्तु करता क्या? ईश्वरेच्छा समझकर मन को शान्त किया। खुदाबख्श तथा। मुसलमान मदारी को महाराज ने अपने दरबार में रखा और सदैव उनका मान करते रहे। अपने साथ खेलने वाले भील बालकों की शिक्षा का जोधपुर में ही प्रबन्धा कराया और उनके पिताओं को बड़ी-बड़ी जागीरें प्रदान की। दुर्गादास ऐसी नीति से राज्य था। कि किसी प्रकार कष्ट न था। शेर-बकरी एक ही घाट पानी पीते थे। चोरी-चमारी का मारवाड़ देश में नाम भी न था।; प्रजा निश्चिन्त और सुख से रहती थी। खजाना उदारता के साथ लुटाने पर भी बढ़ता ही था। टूटे-फूटे किलों की उचित रूप से दुरुस्ती कराई गयी। जहाँ कहीं नये किले की आवश्यकता हुई, तो नया

बनवाया गया। महाराज ने उजड़ा हुआ कल्याणगढ़ फिर से बसाने की आज्ञा दी।

अब महाराज अजीतसिंह की आयु अठारह वर्ष की थी। धीरे-धीरे राज्य का काम समझ गये थे, और इस योग्य हो गये थे कि दुर्गादास की सहायता बिना ही राज्य-भार वहन कर सकें। यह देखकर वीर दुर्गादरास ने संवत् 1758 वि. में महाराज अजीत को भार सौंप दिया। जरूरत पड़ने पर अपनी सम्मति दे दिया करता था। जब 1765 वि. में औरंगजेब दक्षिण में मारा गया तो उसका ज्येष्ठ पुत्र मुअज्जम गद्दी पर बैठा और अपने पूर्वज बादशाह अकबर की भांति अपनी प्रजा का पालन करने लगा। हिन्दू-मुसलमान में किसी प्रकार का भेदभाव न रखा। यह देख दुर्गादास ने निश्चिन्त होकर पूर्ण रूप से राज्यभार अजीतसिंह को सौंप दिया, किन्तु स्वतन्त्र होकर अजीतसिंह के स्वभाव में बहुत परिवर्तन होने लगा। फूटी हुई क्यारी के जल के समान स्वच्छन्द हो गया। अपने स्वेच्छाचारी मित्रों के कहने से प्रजा को कभी-कभी न्याय विरुद्ध भारी दण्ड दे देता था। क्रमश: अपने हानि-लाभ पर विचार करने की शक्ति क्षीण होने लगी। जो जैसी सलाह देता था।, करने पर तैयार हो जाता था। स्वयं कुछ न देखता था।, कानों ही से सुनता था। जिसने पहले कान फूंके, उसी की बात सत्य समझता था। धीरे-धीरे प्रजा भी निन्दा करने लगी।

दुर्गादास ने कई बार नीति-उपदेश किया, बहुत कुछ समझाया-बुझाया, परन्तु कमल के पत्ते पर जिस प्रकार जल की बूंद ठहर जाती है,और वायु के झकोरे से तुरन्त ही गिर जाती है, उसी प्रकार जो कुछ अजीतसिंह के हृदय-पटल पर उपदेश का असर हुआ, तुरन्त ही स्वार्थी मित्रों ने निकाल फेंका और यहाँ तक प्रयत्न किया कि दुर्गादास की ओर से महाराज का मनमालिन्य हो गया। धीरे-धीरे अन्याय बढ़ता ही गया। विवश होकर दुर्गादास ने अपने परिवार को उदयपुर भेज दिया और अकेला ही जोधपुर में रहकर अन्याय के परिणाम की प्रतीक्षा करने लगा।

मनुष्य अपने हाथ से सींचे हुए विष-वृक्ष को भी जब सूखते नहीं देख सकता, तो यह तो वीर दुर्गादास के पूज्य स्वामी श्री महाराज यशवन्तसिंह जी का पुत्र था।, उसका नाश होते वह कब देख सकता था। परन्तु करता क्या? स्वार्थी मित्रों के आगे उसकी दाल न गलती थी,अतएव जोधपुर से बाहर ही चला जाना निश्चित किया। अवसर पाकर एक दिन महाराज से विदा लेने के लिए दरबार जा रहा था। रास्ते में एक वृद्ध मनुष्य मिला, जो दुर्गादास का शुभचिन्तक था। कहने लगा भाई दुर्गादास! अच्छा होता, यदि आप आज राज-दरबार न जाते; क्योंकि आज दरबार जाने में आपकी कुशल नहीं। मुझे जहाँ तक पता चला है वह यह कि महाराज ने अपने स्वार्थी मित्रों की सलाह से आपके मार डालने

की गुप्त रूप से आज्ञा दी है। दुर्गादास ने कहा — भाई! अब मैं वृद्ध हुआ, मुझे मरना तो है ही फिर क्षत्रिय होकर मृत्यु से क्यों डरूं? राजपूती में कलंक लगाऊं; मौत से डरकर पीछे लौट जाऊँ! इस प्रकार कहता हुआ निर्भय सिंह के समान दरबार में पहुंचा और हाथ जोड़कर महाराज से तीर्थयात्रा के लिए विदा मांगी। महाराज ने ऊपरी मन से कहा — चाचाजी! आपका वियोग हमारे लिए बड़ा दुखद होगा; परन्तु अब आप वृद्ध हुए हैं, और प्रश्न तीर्थयात्र का है; इसलिए नहीं भी नहीं की जाती। अच्छा तो जाइए, परन्तु जहाँ तक सम्भव हो शीघ्र ही लौट आइए। दुर्गादास ने कहा — महाराज की जैसी आज्ञा और चल दिया; परन्तु द्वार तक जाकर लौटा। महाराज ने पूछा चाचा जी, क्यों? दुर्गादास ने कहा — 'महाराज, अब आज न जाऊँगा; मुझे अभी याद आया कि महाराज यशवन्तसिंह जी मुझे एक गुप्त कोश की चाबी दे गये थे, परन्तु अभी तक मैं न तो आपको गुप्त खजाना ही बता सका और न चाबी ही दे सका; इसलिए वह भी आपको सौंप दूँ, तब जाऊं? क्योंकि अब मैं बहुत वृद्ध हो गया हूँ, न-जाने कब और कहाँ मर जाऊं? तब तो यह असीम धान-राशि सब मिट्टी में मिल जायेगी। यह सुनकर अजीतसिंह को लोभ ने दबा लिया। संसार में ऐसा कौन है, जिसे लोभ ने न घेरा हो? किसने लोभ देवता की आज्ञा का उल्लंघन किया है? सोचने लगा; यदि मेरे आज्ञानुसार दुर्गादास

कहीं मारा गया, तो यह सम्पत्ति अपने हाथ न आ सकेगी। क्या और अवसर न मिलेगा? फिर देखा जायगा। यह विचार कर अपने मित्रों को संकेत किया। इसका आशय समझ कर एक ने आगे बढ़कर नियुक्त पुरुष को वहाँ से हटा दिया। इस प्रकार धोखे से धान का लालच देकर चतुर दुर्गादास ने अपने प्राणों की रक्षा की। घर आया, हथियार लिये, घोड़े पर सवार हुआ और महाराज को कहला भेजा कि दुर्गादास कुत्ते की मौत मरना नहीं चाहता था। रण-क्षेत्र में जिस वीर की हिम्मत हो आये। अजीतसिंह यह सन्देश सुनकर कांप गया। बोला दुर्गादास जहाँ जाना चाहे, जाने दो। जो औरंगजेब सरीखे बादशाह से लड़कर अपना देश छीन ले, हम ऐसे वीर पुरुष का सामना नहीं करते।

वीर दुर्गादास इस प्रकार महाराज अजीतसिंह से विरक्त होकर और अपनी उज्ज्वल कीर्ति के फलस्वरूप अनादर और उपेक्षा पाकर उदयपुर चला गया। यहाँ उस समय राणा जयसिंह अपने पूज्य पिता राणा राजसिंह के बाद गद्दी पर बैठे थे। अजीतसिंह का ऐसा बुरा बर्ताव सुनकर उन्हें बड़ा क्रोध आया। परस्पर का मित्र-भाव छोड़ दिया। वीर दुर्गादास को अपने परिवार के मनुष्यों की भांति मानकर जागीर प्रदान की। थोड़े दिन तक दुर्गादास महाराज के दरबार में रहा, फिर आज्ञा लेकर एकान्तवास के लिए उज्जैन चला गया। वहाँ महाकलेश्वर का पूजन करता रहा। संवत्

1765 वि. में वीर दुर्गादास का स्वर्गवास हुआ। जिसने यशवन्तसिंह के पुत्र की प्राण-रक्षा की और मारवाड़ देश का स्वामी बनाया, आज उसी वीर का मृत शरीर क्षिप्रा नदी की सूखी झाऊ की चिता में भस्म किया गया। विधाता! तेरी लीला अद्भुत है।

ooo

रामचर्चा

जन्म

प्यारे बच्चो! तुमने विजयदशमी का मेला तो देखा ही होगा। कहीं-कहीं इसे रामलीला का मेला भी कहते हैं। इस मेले में तुमने मिट्टी या पीतल के बन्दरों और भालुओं के से चेहरे लगाये आदमी देखे होंगे। राम, लक्ष्मण और सीता को सिंहासन पर बैठे देखा होगा और इनके सिंहासन के सामने कुछ फासले पर कागज और बाँसों का बड़ा पुतला देखा होगा। इस पुतले के दस सिर और बीस हाथ देखे होंगे। वह रावण का पुतला है। हजारों बरस हुए, राजा रामचन्द्र ने लंका में जाकर रावण को मारा था। उसी कौमी फतह की यादगार में विजयदशमी का मेला होता है और हर साल रावण का पुतला जलाया जाता है। आज हम तुम्हें उन्हीं राजा रामचन्द्र की जिंदगी के दिलचस्प हालात सुनाते हैं।

गंगा की उन सहायक नदियों में, जो उत्तर से आकर मिलती हैं, एक सरजू नदी भी है। इसी नदी पर अयोध्या का मशहूर कस्बा

आबाद है। हिन्दू लोग आज भी वहाँ तीर्थ करने जाते हैं। आजकल तो अयोध्या एक छोटासा कस्बा है; मगर कई हजार साल हुए, वह हिन्दुस्तान का सबसे बड़ा शहर था। वह सूर्यवंशी खानदान के नामीगिरामी राजाओं की राजधानी थी। हरिश्चन्द्र जैसे दानी, रघु जैसे ग़रीब परवर, भगीरथ जैसे वीर राजा इसी सूर्यवंश में हुए। राजा दशरथ, इसी प्रसिद्ध वंश के राजा थे। रामचन्द्र राजा दशरथ के बेटे थे।

उस जमाने में अयोध्या नगरी विद्या और कला की केन्द्र थी। दूरदूर के व्यापारी रोजगार करने आते थे। और वहाँ की बनी हुई चीजें खरीदकर ले जाते थे। शहर में विशाल सड़कें थीं। सड़कों पर हमेशा छिड़काव होता था। दोनों ओर आलीशान महल खड़े थे। हर किस्म की सवारियाँ सड़कों पर दौड़ा करती थीं। अदालतें, मदरसे, औषधालय सब मौजूद थे। यहाँ तक कि नाटकघर भी बने हुए थे, जहाँ शहर के लोग तमाशा देखने जाते थे। इससे मालूम होता है कि पुराने जमाने में भी इस देश में नाटकों का रिवाज था। शहर के आसपास बड़े-बड़े बाग थे। इन बागों में किसी को फल तोड़ने की मुमानियत न थी। शहर की हिफाजत के लिए मजबूत चहारदीवारी बनी हुई थी। अंदर एक किला भी था। किले के चारों ओर गहरी खाई खोदी गयी थी, जिसमें हमेशा पानी लबालब भरा रहता था। किले के बुर्जों पर

तोपें लगी रहती थीं। शिक्षा इतनी प्रचलित थी कि कोई जाहिल आदमी ढूँढ़ने से भी न मिलता था। लोग बड़े अतिथि का सत्कार करने वाले, ईमानदार, शांतिप्रेमी, विद्याभ्यासी, धर्म के पाबन्द और दिल के साफ थे। अदालतों में आजकल की तरह झूठे मुकदमे दायर नहीं किये जाते थे। हर घर में गायें पाली जाती थीं। घी-दूध की इफरात थी। खेतों में अनाज इतना पैदा होता था कि कोई भूखा न रहने पाता था। किसान खुशहाल थे। उनसे लगान बहुत कम लिया जाता था। डाके और चोरी की वारदातें सुनाई भी न देती थीं। और ताऊन, हैजा वगैरा बीमारियों का नाम तक न था। वह सब राजा दशरथ की बरकत थी।

एक रोज राजा दशरथ शिकार खेलने गये और घोड़ा दौड़ाते हुए एक नदी के किनारे जा पहुंचे। नदी दरख्तों की आड़ में थी। वहीं जंगल में अन्धक मुनि नामक एक अन्धा रहता था। उसकी स्त्री भी अंधी थी। उस वक्त उनका नौजवान बेटा श्रवण नदी में पानी भरने गया हुआ था। उसके कलशे के पानी में डूबने की आवाज सुनकर राजा ने समझा कि कोई जंगली हाथी नहा रहा है। तुरत शब्दवेधी बाण चला दिया। तीर नौजवान के सीने में लगा। तीर का लगना था कि वह जोर से चिल्लाकर गिर पड़ा। राजा घबराकर वहाँ गये तो देखा कि एक नौजवान पड़ा तड़प रहा है। उन्हें अपनी भूल मालूम हुई। बेहद अफसोस हुआ।

नौजवान ने उनको लज्जित और दुःखित देखकर समझाया — अब रंज करने से क्या फायदा! मेरी मौत शायद इसी तरह लिखी थी। मेरे माँ-बाप दोनों अंधे हैं। उनकी कुटी वह सामने नजर आ रही है। मेरी लाश उनके पास पहुँचा देना। यह कहकर वह मर गया।

राजा ने नौजवान की लाश को कन्धे पर रखा और अंधे के पास जाकर यह दुःखद समाचार सुनाया। बेचारे दोनों बुड्ढे, तिस पर दोनों आँखों के अंधे, और यही इकलौता बेटा उनकी जिंदगी का सहारा था'इसके मरने का समाचार सुनकर फूटकर रोने लगे। जब आँसू जरा थमे तो उन्हें राजा पर गुस्सा आया। उनको खूब जी भरकर कोसा और यह शाप देकर कि जिस तरह बेटे के शोक में हमारी जान निकल रही है उसी तरह तुम भी बेटे ही के शोक में मरोगे, दोनों मर गये। राजा दशरथ भी रो-धोकर यहाँ से विदा हुए।

राजा दशरथ के अब तक कोई संतान न थी। संतान ही के लिए उन्होंने तीन शादियाँ की थीं। बड़ी रानी का नाम कौशल्या था, मँझली रानी का सुमित्रा और छोटी रानी का कैकेयी। तीनों रानियाँ भी संतान के लिए तरसती रहती थीं। अंधे का शाप राजा के लिये वरदान हो गया। चाहे बेटे के शोक में मरना ही पड़े, बेटे का मुँह तो देखेंगे। ताज और तख्त का वारिस तो पैदा

होगा। इस ख्याल से राजा को बड़ी तसकीन हुई। इसके कुछ ही दिन बाद अपने गुरु वशिष्ठ के मशविरे से राजा ने एक यज्ञ किया। इसमें बहुत से ऋषि-मुनि जमा हुए और सबने राजा को आशीर्वाद दिया। यज्ञ के पूरे होते ही तीनों ही रानियाँ गर्भवती हुईं और नियत समय के बाद तीनों रानियों के चार राजकुमार पैदा हुए। कौशल्या से रामचन्द्र हुए, सुमित्रा से लक्ष्मण और शत्रुघ्न और कैकेयी से भरत। सारे राज में मंगल-गीत गाये जाने लगे। परजा ने खूब उत्सव मनाया। राजा ने इतना सोना-चाँदी दान किया कि राज में कोई निर्धन न रह गया। उनकी दिली कामना पूर्ण हुई। कहाँ एक बेटे का मुँह देखने को तरसते थे, कहाँ चार-चार बेटे हो गये। घर गुलजार हो गया। ज्योतिहीन आँखें रोशन हो गयीं।

चारों लड़कों का लालन-पालन होने लगा। जब वह जरा सयाने हुए तो गुरु वशिष्ठ ने उन्हें शिक्षा देना शुरू किया। चारों लड़के बहुत ही जहीन थे, थोड़े ही दिनों में वेद-शास्त्र सब खत्म कर लिये और रण-विद्या में भी खूब होशियार हो गये। धनुविद्या में, भाला चलाने में, कुश्ती में, किसी फन में इनका समान न था। मगर उनमें घमण्ड नाम को भी न था। चारों बुजुर्गों का अदब करते थे। छोटों को भी वह सख्त-सुस्त न कहते। उनमें आपस में बड़ी गहरी मुहब्बत थी। एक दूसरे के लिए जान देते थे।

चारों ही सुन्दर, स्वस्थ और सुशील थे। उन्हें देखकर सबके मुँह से आशीर्वाद निकलता था। सब कहते थे, यह लड़के खानदान का नाम रोशन करेंगे। यों तो चारों में एक-सी मुहब्बत थी, मगर लक्ष्मण को रामचन्द्र से, शत्रुघ्न को भरत से खास प्रेम था। राजा दशरथ मारे खुशी के फूले न समाते थे।

ताड़का और मारीच का वध

एक दिन राजा दशरथ दरबार में बैठे हुए मन्त्रियों से कुछ बातचीत कर रहे थे कि ऋषि विश्वामित्र पधारे। विश्वामित्र उस समय के बहुत बड़े तपस्वी थे। वह क्षत्रिय होकर भी केवल अपनी आराधना के बल से ब्रह्मर्षि के पद पर पहुँच गये थे। सभी ऋषि उनके सामने आदर से सिर झुकाते थे। मगर ज्ञानी होने पर भी वह किसी हद तक क्रोधी थे। किसी ने उनकी मर्जी के खिलाफ काम किया और उन्होंने शाप दिया। इससे सभी राजे-महाराजे उनसे डरते थे; क्योंकि उनके शाप को कोई रद्द न कर सकता था। लड़ाई की विद्या में भी वह अद्वितीय थे। राजा दशरथ ने सिंहासन से उतर कर उनका स्वागत किया और उन्हें अपने सिंहासन पर बिठाकर बोले — आज इस गरीब के घर को

अपने चरणों से पवित्र करके आपने मुझ पर बड़ा एहसान किया। मेरे योग्य कोई सेवा हो तो बताइये; वह सर आंखों पर बजा लाऊँ।

विश्वामित्र ने आशीर्वाद देकर कहा — महाराज! हम तपस्वियों को राज-दरबार की याद उसी समय आती है, जब हमें कोई तकलीफ होती है, या जब हमारे ऊपर कोई अत्याचार करता है। मैं आजकल एक यज्ञ कर रहा हूँ; किन्तु राक्षस लोग उसे अपवित्र करने की कोशिश करते हैं। वह यज्ञ की वेदी पर रक्त और हड्डियाँ फेंकते हैं। मारीच और सुबाहु दो बड़े ही विद्रोही राक्षस हैं। यह सारा फिसाद उन्हीं लोगों का है। मुझमें अपनी तपस्या का इतना बल है कि चाहूँ तो एक शाप देकर उनकी सारी सेना को जलाकर राख कर दूँ; पर यज्ञ करते समय क्रोध को रोकना पड़ता है। इसलिए मैं आपके पास फरियाद लेकर आया हूँ। आप राजकुमार रामचन्द्र और लक्ष्मण को मेरे साथ भेज दीजिये, जिससे वह मेरे यज्ञ की रक्षा करें और उन राक्षसों को शिथिल कर दें। दस दिन में हमारा यज्ञ पूरा हो जायगा। राम के सिवा और किसी से यह काम न होगा।

राजा दशरथ बड़ी मुश्किल में पड़ गये। राम का वियोग उन्हें एक क्षण के लिये सह्य न था। यह भय भी हुआ कि लड़के अभी अनुभवी नहीं हैं, डरावने राक्षसों से भला क्या मुकाबला कर

सकेंगे। डरते हुए बोले — हे पवित्र ऋषि! आपकी आज्ञा शिरोधार्य है; किन्तु इन अल्पवयस्क लड़कों को राक्षसों के मुकाबले में भेजते मुझे भय होता है। उन्हें अभी तक युद्धक्षेत्र का अनुभव नहीं है। मैं स्वयं अपनी सारी सेना लेकर आपके यज्ञ की रक्षा करने चलूँगा। लड़कों को साथ भेजने के लिए मुझे विवश न कीजिये।

विश्वामित्र हँसकर बोले — महाराज! आप इन लड़कों को अभी नहीं जानते। इनमें शेरों की-सी हिम्मत और ताकत है। मुझे पूरा विश्वास है कि ये राक्षसों को मार डालेंगे। इनकी तरफ से आप निडर रहिये। इनका बाल भी बांका न होगा।

राजा दशरथ फिर कुछ आपत्ति करना चाहते थे; मगर गुरु वशिष्ठ के समझाने पर राजी हो गये। और दोनों राजकुमारों को बुलाकर ऋषि विश्वामित्र के साथ जाने का आदेश दिया। रामचन्द्र और लक्ष्मण यह आज्ञा पाकर दिल में बहुत खुश हुये। अपनी वीरता को दिखाने का ऐसा अच्छा अवसर इन्हें पहले न मिला था। दोनों ने युद्ध में जाने के कपड़े पहने, हथियार सजाये और अपनी माताओं से आशीर्वाद लेने के बाद राजा दशरथ के चरणों पर गिरकर खुशी-खुशी बिदा हुए। विश्वामित्र ने दोनों भाइयों को एक ऐसा मन्त्र बताया कि जिसको पढ़ने से थकावट पास नहीं आती।

नये-नये बहुत अद्भुत हथियारों का उपयोग करना सिखाया, जिनके मुकाबले में कोई ठहर न सकता था।

कई दिन के बाद तीनों आदमी गंगा को पार करके घने जंगल में जा पहुंचे। विश्वामित्र ने कहा 'बेटा! इस जंगल में ताड़का नाम की दानवी रहती है। वह इस रास्ते से गुजरने वाले आदमी को पकड़कर खा डालती है। पहले यहाँ एक अच्छा नगर बसा हुआ था; पर इस दावनी ने सारे आदमियों को खा डाला। अब वही बसा हुआ नगर घना जंगल है। कोई आदमी भूलकर भी इधर नहीं आता। हम लोगों की आहट पाकर वह दानवी आती होगी। तुम तुरन्त उसे तीर से मार डालना।

विश्वामित्र अभी यह वाकया बयान कर ही रहे थे कि हवा में जोर की सनसनाहट हुई और ताड़का मुँह खोले दौड़ती हुई आती दिखायी दी। उसकी सूरत इतनी डरावनी और डील इतना बड़ा था कि कोई कम साहसी आदमी होता तो मारे डर के गिर पड़ता। उसने इन तीनों आदमियों के सामने आकर गरजना और पत्थर फेंकना शुरू किया। विश्वामित्र ने रामचन्द्र को तीर चलाने का इशारा किया। रामचन्द्र एक औरत पर हथियार चलाना नियम के विरुद्ध समझते थे। ताड़का दानवी थी तो क्या, थी तो औरत। मगर ऋषि का संकेत पाकर उन्हें क्या आपत्ति हो सकती थी। ऐसा तीर चलाया कि वह ताड़का की छाती में चुभ

गया। ताड़का जोर से चीखकर गिर पड़ी और एक क्षण में तड़प-तड़पकर मर गयी।

तीनों आदमी फिर आगे चले और कई दिनों बाद विश्वामित्र के आश्रम में पहुँच गये। था तो यह भी जंगल; पर इसमें अधिकतर ऋषि लोग रहा करते थे। शेर, नीलगाय, हिरन निडर घूमा करते थे। इस तपोभूमि के प्रभाव से शिकार खेलने वाले भी शिकार की तरफ प्रवृत्त न होते थे।

दूसरे दिन से विश्वामित्र ने यज्ञ करना शुरू किया। राम और लक्ष्मण कमर में तलवार लटकाये, धनुष और बाण हाथ में लिये जंगल के चारों ओर गश्त लगाने लगे। न खाने-पीने की फिक्र थी, न सोने-लेटने की। रात-दिन बिना सोये और बिना खाये पहरा देते थे। इस प्रकार पांच दिन कुशल से बीत गये। मगर छठे दिन क्या देखते हैं कि मारीच और सुबाहु राक्षसों की सेना लिये यज्ञ को अपवित्र करने चले आ रहे हैं। दोनों भाई तुरन्त संभल गये। ज्योंही मारीच सामने आया, रामचन्द्र ने ऐसा तीर मारा कि वह बड़ी दूर जाकर गिर पड़ा। सुबाहु बाकी था। उसे भी एक अग्निबाण में ठंडा कर दिया। फिर तो राक्षसी सेना के पैर उखड़ गये। दोनों भाइयों ने दूर तक उनका पीछा किया और कितनों ही को मार डाला। इस प्रकार यज्ञ सुन्दर रीति से पूरा हो गया।

किसी प्रकार की रुकावट न हुई। विश्वामित्र ने दोनों भाइयों की खूब प्रशंसा की।

विवाह

राम और लक्ष्मण अभी विश्वामित्र के आश्रम में ही थे कि मिथिला के राजा जनक ने विश्वामित्र को अपनी लड़की सीता के स्वयंवर में सम्मिलित होने के लिए नवेद भेजा। उस समय में प्रायः विवाह स्वयंवर की रीति से होते थे, लड़की का पिता एक उत्सव करता था, जिसमें दूर-दूर से आकर लोग सम्मिलित होते थे। उत्सव में साहस या युद्ध के कौशल की परीक्षा होती थी। जो युवक इस परीक्षा में सफल होता था, उसी के गले में कन्या जयमाला डाल देती थी। उसी से उसका विवाह हो जाता था। विश्वामित्र की हार्दिक इच्छा थी कि सीता का विवाह राम से हो जाय। वह यह भी जानते थे कि राम परीक्षा में अवश्य सफल होंगे। इसलिए जब वह मिथिला जाने लगे, तो राम और लक्ष्मण को भी साथ लेते गये। राजा दशरथ से आज्ञा लेने के लिए अयोध्या जाने और वहाँ से मिथिला आने के लिए काफी वक्त न

था। मिथिला वहाँ से करीब ही थी। इसलिए विश्वामित्र ने सीधे वहाँ जाने का निश्चय किया।

आजकल जिस प्रान्त को हम बिहार कहते हैं, वही उस जमाने में मिथिला कहलाता था। मिथिला के राजा जनक बड़े विद्वान और ज्ञानी पुरुष थे, बड़े-बड़े ऋषि-मुनि उनसे ज्ञान की शिक्षा लेने आते थे। कई साल पहिले मिथिला में बड़ा भारी अकाल पड़ा था। उस वक्त ऋषियों ने मिलकर फैसला किया कि यह काल यज्ञ ही से दूर हो सकता है। इस यज्ञ को पूरा करने की एक शर्त यह भी थी कि राजा जनक खुद हल चलायें। राजा जनक को अपनी परजा अपने प्राण से भी अधिक प्रिय थी। इसके सिर से इस संकट को दूर करने के लिए उन्होंने इस यज्ञ को शुरू कर दिया। जब वह हल-बैल लेकर खेत में पहुंचे और हल चलाने लगे तो क्या देखते हैं कि फल की नोक से जो जमीन खुद गयी है उसमें एक चाँद-सी लड़की पड़ी हुई है। राजा के कोई सन्तान न थी; तुरन्त इस लड़की को गोद में उठा लिया और घर लाये। उसका नाम सीता रखा, क्योंकि वह फल की नोक से निकली थी। फल को संस्कृत में सित कहते हैं। इस ईश्वरीय देन को राजा जनक ने बड़े लाड़ और प्यार से पाला। और अच्छे-अच्छे विद्वानों से शिक्षा दिलवायी। इसी सीता के विवाह पर यह स्वयंवर रचा गया था।

राम, लक्ष्मण और विश्वामित्र सोन, गंगा इत्यादि नदियों को पार करते हुए चौथे दिन मिथिला पहुँचे। सारे शहर के लोग इन राजकुमारों की सुन्दरता और डीलडौल देखकर उन पर मोहित हो गये। सबके मुँह से यही आवाज निकलती थी कि सीता के योग्य कोई है तो यही राजकुमार है; जैसी सुन्दर वह है वैसे ही खूबसूरत रामचन्द्र हैं। मगर देखना चाहिये, इनसे शिव का धनुष उठता है या नहीं।

राजा जनक को विश्वामित्र के आने की खबर हुई तो उन्होंने उनका बड़ा आदर सत्कार किया। जब उन्हें मालूम हुआ कि वह दोनों नौजवान राजा दशरथ के बेटे हैं, तब उनके दिल में भी यही ख्वाहिश हुई कि काश सीता का ब्याह राम से हो जाता; मगर स्वयंवर की शर्त से लाचार थे।

विश्वामित्र ने राजा से पूछा — महाराज, आपने स्वयंवर के लिए कौनसी परीक्षा चुनी है?

जनक ने उत्तर दिया — भगवन्! क्या कहूँ, कुछ कहा नहीं जाता। सैकड़ों बरस गुजर गये, एक बार शिवजी ने मेरे किसी पूर्वज को अपना धनुष दिया था। वह धनुष तब से मेरे घर में रखा हुआ था। एक दिन मैंने सीता से अपनी पूजा की कोठरी को लीप डालने के लिए कहा‘उसी कोठरी में वह पुराना धनुष रखा हुआ

था। सैकड़ों बरस से कोई उसे उठा न सका था। सीता ने जाकर देखा तो उसके आसपास बहुत कूड़ा जमा हो गया था। उसने धनुष को उठकर एक ओर रख दिया। मैं पूजा करने गया तो धनुष को हटा हुआ देखकर मुझे बड़ा आश्चर्य हुआ। जब मालूम हुआ कि सीता ने उसे उठाकर जमीन साफ की है, तब मैंने शर्त की कि ऐसी वीर कन्या का विवाह उसी वर से करूँगा, जो धनुष को चढ़ाकर तोड़ देगा। अब देखूँ, लड़की के भाग्य में क्या है।

दूसरे दिन स्वयंवर की तैयारियाँ शुरू हुईं। मैदान में एक बड़ा शामियाना ताना गया। सैकड़ों सूरमा जो अपने बल के घमंड में दूर-दूर से आये हुए थे, आ-आकर बैठे। शहर के लाखों स्त्री-पुरुष एकत्रित हुए। शिवजी के धनुष को बहुतसे आदमी उठाकर सभा में लाये। जब सब लोग आ गये तो राजा जनक ने खड़े होकर कहा — ऐ भारतवर्ष के वीरो! यह शिवजी का धनुष आप लोगों के सामने रखा है। जो इसे तोड़ देगा, उसी के गले में सीता जयमाल डालेगी।

यह सुनते ही सूरमाओं और वीरों ने धनुष के पास जा-जाकर जोर लगाना शुरू किया। सभी राजकुमार सीता से विवाह करने का स्वप्न देख रहे थे। कमर कस-कसकर घमंड से ऐंठते-अकड़ते धनुष के पास जाते, और जब वह तिल भर भी न हिलता तो

अपमान से गर्दन झुकाये अपना-सा मुँह लिये लौट आते थे। सारी सभा में एक भी ऐसा योद्धा न निकला जो धनुष को उठा सकता, तोड़ने का तो जिक्र ही क्या।

राजा जनक ने यह दशा देखी तो उन्हें बड़ा भय हुआ। सभा में खड़े होकर निराशा-सूचक स्वर में बोले — शायद यह वीरभूमि अब वीरों से खाली हो गयी। जभी तो इतने आदमियों में एक भी ऐसा न निकला जो इस धनुष को तोड़ सकता। यदि मैं ऐसा जानता तो स्वयंवर के लिए यह शर्त न रखता। ऐसा प्रतीत होता है कि सीता अविवाहित रहेगी। यही इसके भाग्य में है तो मैं क्या कर सकता हूँ। आप लोग अब शौक से जा सकते हैं। इस हौसले और ताकत पर आप लोगों को यहाँ आने की जरूरत ही क्या थी?

लक्ष्मण बड़े जोशीले युवक थे। जनक की यह बातें सुनकर उनसे सहन न हो सका! जोश से बोला — महाराज! ऐसा अपनी जबान से न कहिये। जब तक राजा रघु का वंश कायम है, यह देश वीरों से खाली नहीं हो सकता। मैं डींग नहीं मारता। सच कहता हूँ कि अगर खाली भाई साहब की आज्ञा पाऊँ तो एकदम में इस धनुष के पुरजे-पुरजे कर दूँ। मेरे भाई साहब चाहें तो इसे एक हाथ से तोड़ सकते हैं। इसकी हकीकत ही क्या है। लक्ष्मण की यह जोशपूर्ण बातें सुनकर सारे सूरमा दंग रह गये। रामचन्द्र

छोटे भाई की तबियत से परिचित थे। उनका हाथ पकड़कर खींच लिया और बोले — भाई, यह समय इस तरह की बातें करने का नहीं है। जब तक तुम्हारे बड़े मौजूद हैं, तुम्हें जबान खोलना, उचित नहीं।

लक्ष्मण बैठ गये तो विश्वामित्र ने रामचन्द्र से कहा — बेटा, अब तुम जाकर इस धनुष को तोड़ो, जिसमें राजा जनक को तस्कीन हो। रामचन्द्र सीता को पहले ही दिन एक बाग में देख चुके थे। दोनों भाई बाग में सैर करने गये थे और सीता देवी की पूजा करने आयी थीं। वहीं दोनों की आँखें मिली थीं। उसी वक्त से रामचन्द्र को सीता से प्रेम हो गया था। वह इसी समय की प्रतीक्षा में थे। विश्वामित्र की आज्ञा पाते ही उन्होंने प्रणाम किया और धनुष की ओर चले। सूरमाओं ने अपना अपमान कम करने के विचार से उन पर आवाज़ें कसना शुरू किया। एक ने कहा — जरा संभले हुए जाइयेगा, ऐसा न हो, अपने ही जोर में गिर पड़िये। दूसरा बोला — इस पुराने धनुष पर दया कीजिये, कहीं पुरजे-पुरजे न कर दीजियेगा। तीसरा बोला — जरा धीरे-धीरे कदम रखिये, जमीन हिल रही है। किन्तु रामचन्द्र ने इस तीनों की तरफ तनिक भी ध्यान न दिया। धनुष को इस तरह उठा लिया जैसे कोई फूल हो और इतनी जोर से चढ़ाया कि बीच से उसके दो टुकड़े हो गये। इसके टूटने से ऐसी आवाज हुई कि

लोग चौंक पड़े। धनुष ज्योंही टूटकर गिरा, वह सफलता की प्रसन्नता से उछलकर दौड़े। राजा जनक सभा के बाहर चिन्तापूर्ण दृष्टि से यह दृश्य देख रहे थे। रामचन्द्र को गले लगा लिया और सीताजी ने आकर उसके गले में जयमाल डाल दी। नगर वालों ने प्रसन्न होकर जयजयकार करना शुरू किया। मंगलगान होने लगा, बन्दूकें छूटने लगीं। और सूरमा लोग एक-एक करके चुपके-चुपके सरकने लगे। शहर के छोटे-बड़े धनी-निर्धन, सब खुशी से फूले न समाते थे। सभी ने मुँह-मांगी मुराद पायी। सलाह हुई कि राजा दशरथ को शुभ समाचार की सूचना देनी चाहिये। कई ऊँट के सवार तुरन्त कौशल की ओर रवाना किये गये। विश्वामित्र राजकुमारों के साथ राजभवन में जाना ही चाहते थे कि मंडप के बाहर शोर और गुल सुनायी देने लगा। ऐसा मालूम होता था कि बादल गरज रहा है। लोग घबड़ा-घबड़ाकर इधर-उधर देखने लगे कि यह क्या आफत आने वाली है। एक क्षण के बाद भेद खुला कि परशुराम ऋषि क्रोध से गरजते चले आ रहे हैं। देवों का-सा कद, अंगारे-सी लाल-लाल आँखें, क्रोध से चेहरा लाल, हाथ में तीर-कमान, कंधे पर फरसा — यह आपका रूप था। मालूम होता था, सबको कच्चा ही खा जायँगे। आते ही गरजकर बोले — किसने मेरे गुरु शिवजी का धनुष तोड़ा है, निकल आये मेरे सामने, जरा मैं भी देखूँ वह कितना वीर है?

रामचन्द्र ने बहुत नम्रता से कहा'महाराज! आपके किसी भक्त ने ही तोड़ा होगा और क्या। परशुराम ने फरसे को घुमाकर कहा — कदापि नहीं, यह मेरे भक्त का काम नहीं। यह किसी शत्रु का काम है। अवश्य मेरे किसी वैरी ने यह काम किया है। मैं भी उसका सिर तन से अलग कर दूँगा। किसी तरह क्षमा नहीं कर सकता। मेरे गुरु का धनुष और उसे कोई क्षत्रिय तोड़ डाले? मैं क्षत्रियों का शत्रु हूँ। जानी-दुश्मन! मैंने एक-दो बार नहीं, इक्कीस बार क्षत्रियों के रक्त की नदी बहायी है। अपने बाप के खून का बदला लेने के लिये मैंने जहाँ क्षत्रियों को पाया है, चुन-चुनकर मारा है। अब फिर मेरे हाथों क्षत्रियों पर वही आफत आने वाली है। जिसने यह धनुष तोड़ा हो, मेरे सामने निकल आवे।

दिलेर और मनचले लक्ष्मण यह ललकार सुनकर भला कब सहन कर सकते थे। सामने आकर बोले'आप एक सड़े-से धनुष के टूटने पर इतना आपे से क्यों बाहर हो रहे हैं? लड़कपन में ऐसे कितने धनुष खेल-खेलकर तोड़ डाले, तब तो आपको तनिक भी क्रोध न आया। आज इस पुराने, बेदम धनुष के टूट जाने से आप क्यों इतना कुपित हो रहे हैं? क्या आप समझते हैं कि इन गीदड़ भभकियों से कोई डर जायगा?

जैसे घी पड़ जाने से आग और भी तेज हो जाती है, उसी तरह लक्ष्मण के ये शब्द सुनकर परशुराम और भी भयावने हो गये।

फरसे को हाथ में लेकर बोले — तू कौन है जो मेरे साथ इस धृष्टता से व्यवहार करता है? तुझे क्या अपनी जान जरा भी प्यारी नहीं है, जो इस तरह मेरे सामने जबान चलाता है? क्या यह धनुष भी वैसा ही था, जैसे तुमने लड़कपन में तोड़े थे? यह शिवजी का धनुष था।

लक्ष्मण बोले — किसी का धनुष हो, मगर था बिल्कुल सड़ा हुआ। छूते ही टूट गया। जोर लगाने की जरूरत ही न पड़ी। इस जरा-सी बात के लिए व्यर्थ आप इतना बिगड़ रहे हैं।
परशुराम और भी झल्लाकर बोले — अरे मूर्ख, क्या तू मुझे नहीं पहचानता? मैं तुझे लड़का समझकर अभी तरह दिये जाता हूँ, और तू अपनी धृष्टता नहीं छोड़ता। मेरा क्रोध बुरा है। ऐसा न हो, मैं एक बार में तेरा काम तमाम कर दूँ।

लक्ष्मण — मेरा काम तो तमाम हो चुका! हाँ, मुझे डर है कि कहीं आपका क्रोध आपको हानि न पहुँचाये। आप जैसे ऋषियों को कभी क्रोध न करना चाहिये।

परशुराम ने फरसा संभालते हुए दांत पीसते हुए कहा — क्या कहूँ, तेरी उमर तुझे बचा रही है, वरना अब तक तेरा सिर तन से जुदा कर देता।

लक्ष्मण — कहीं इस भरोसे मत रहियेगा। आप फूँककर पहाड़ नहीं उड़ा सकते। आप ब्राह्मण हैं इसलिए आपके ऊपर दया आती है। शायद अभी तक आपका किसी क्षत्रिय से पाला नहीं पड़ा। जभी आप इतना बर्फा रहे हैं।

रामचन्द्र ने देखा कि बात बढ़ती जा रही है, तो लक्ष्मण का हाथ पकड़कर बिठा दिया और परशुराम से हाथ जोड़कर बोले — महाराज! लक्ष्मण की बातों का आप बुरा न मानें। यह ऐसा ही धृष्ट है। यह अभी तक आपको नहीं जानता, वरना यों आपके मुँह न लगता। इसे क्षमा कीजिये, छोटों का कुसूर बड़े माफ किया करते हैं। आपका अपराधी मैं हूँ, मुझे जो दण्ड चाहें, दें। आपके सामने सिर झुका हुआ है।

रामचन्द्र की यह आदरपूर्ण बातचीत सुनकर परशुराम कुछ नर्म पड़े कि एकाएक लक्ष्मण को हँसते देखकर फिर उनके बदन में आग लग गयी। बोले — राम! तुम्हारा यह भाई अति धृष्ट है। विनय और शील तो इसे छू तक नहीं गया। जो कुछ मुँह में आता है, बक डालता है। रंग इसका गोरा है। पर दिल इसका काला है। ऐसा अशिष्ट लड़का मैंने नहीं देखा।

अभी तक तो लक्ष्मण, परशुराम को केवल छेड़ रहे थे, किन्तु ये बातें सुनकर उन्हें क्रोध आ गया। बोले — सुनिये महाराज! छोटों

का काम बड़ों का आदर करने का है, किन्तु इसकी भी सीमा होती है। आप अब इस सीमा से बढ़े जा रहे हैं। आखिर आप क्यों इतना अप्रसन्न हो रहे हैं? आपके बिगड़ने से तो धनुष जुड़ न जायगा। हाँ, जग-हँसाई अवश्य होगी। अगर यह धनुष आपको ऐसा ही प्रिय है, तो किसी कारीगर से जुड़वा दिया जायगा। इसके अतिरिक्त और हम क्या कर सकते हैं। आपका क्रोध बिलकुल व्यर्थ है।

मारे क्रोध के परशुराम की आँखें बीरबहूटी की तरह लाल हो गयीं। वह थरथर काँपने लगे। उनके नथने फड़कने लगे। रामचन्द्र ने उनकी यह दशा देखकर लक्ष्मण को वहाँ से चले जाने का इशारा किया और अत्यन्त विनीत भाव से बोले — महाराज! बड़ों को छोटे, कम-समझ आदमियों की बातों पर ध्यान नहीं देना चाहिये। इसके बकने से क्या होता है। हम सब आपके सेवक हैं। धनुष मैंने तोड़ा है। इसका दोषी मैं हूँ। इसका जो दण्ड आप उचित समझें मुझे दें। आप इसका जो दण्ड मांगें, मैं देने को तैयार हूँ।

परशुराम ने नर्म होकर कहा — तावान मैं तुमसे क्या लूँगा। मुझे यही भय है कि इस धनुष के टूट जाने से क्षत्रियों को फिर घमण्ड होगा और मुझे फिर उनका अभिमान तोड़ना पड़ेगा। यह

शिव का धनुष नहीं टूटा है, ब्राह्मणों के तेज और बल को धक्का लगा है।

रामचन्द्र ने हंसकर कहा — ऋषिराज! क्षत्रिय ऐसे नीच नहीं हैं कि इस जरा-से धनुष के टूट जाने से उन्हें घमण्ड हो जाय। अगर आप मेरी वीरता की विशेषता देखना चाहते हैं तो इससे भी बड़ी परीक्षा लेकर देखिए।

परशुराम — तैयार है?

राम — जी हाँ, तैयार हूँ।

परशुराम ने अपना तीर और कमान रामचन्द्र के समीप फेंककर कहा — अच्छा, इस धनुष पर प्रत्यंचा चढ़ा। देखूँ तो कितना वीर है।

रामचन्द्र ने धनुष उठा लिया और बड़ी आसानी से प्रत्यंचा चढ़ाकर बोले — कहिए, अब क्या करूँ? तोड़ दूँ इस धनुष को?

परशुराम का सारा क्रोध शान्त हो गया। उन्होंने बढ़कर रामचन्द्र को हृदय से लगा लिया और उन्हें आशीर्वाद देते हुए अपना धनुषबाण लेकर बिदा हो गये। राजा जनक की जान सूख रही थी कि न जाने क्या विपदा आने वाली है। परशुराम के चले जाने से जान में जान आयी। फिर मंगलगान होने लगे।

राजा दशरथ रामचन्द्र और लक्ष्मण का समाचार न पाने से बहुत चिन्तित हो रहे थे। यह शुभ-समाचार मिला तो बड़े प्रसन्न हुए। अयोध्या में भी उत्सव होने लगा। दूसरे दिन धूमधाम से बारात सजा कर वह मिथिला चले।

राजा जनक ने बारात का खूब सेवा-सत्कार किया और शास्त्रविधि से सीता जी का विवाह रामचन्द्र से कर दिया। उनकी एक दूसरी लड़की थी जिसका नाम उर्मिला था। उसकी शादी लक्ष्मण से हो गयी। राजा जनक के भाई के भी दो लड़कियां थीं। वे दोनों भरत और शत्रुघ्न से ब्याही गयीं। कई दिन के बाद बारात बिदा हुई। राजा जनक ने अनगिनती सोने-चाँदी के बर्तन, हीरे-जवाहर, जड़ाऊ झूलों से सजे हुए हाथी, नागौरी बैलों से जुते हुए रथ, अरब जाति के घोड़े दहेज में दिये।

वनवास

राजा दशरथ कई साल तक बड़ी तनदेही से राज करते रहे, किन्तु बुढ़ापे के कारण उनमें अब पहले-सा जोश न था, इसलिए उन्होंने रामचन्द्र जी से राज्य के कामों में मदद लेना शुरू किया। इसमें

एक गुप्त युक्ति यह भी थी कि रामचन्द्र को शासन का अनुभव हो जाय। यों केवल नाम के लिए, वह स्वयं राजा थे, किन्तु अधिकतर काम रामजी के हाथों से ही होते थे। राम के सुन्दर प्रबन्ध की सारे राज्य में प्रशंसा होने लगी। जब राजा दशरथ को विश्वास हो गया कि राम अब शासक के धर्मों से भली प्रकार अवगत हो गये हैं और उन पर योग्यता से आचरण भी कर सकते हैं तो एक दिन उन्होंने अपने दरबार के प्रमुख व्यक्तियों को तथा नगर के प्रतिष्ठित पुरुषों को बुलाकर कहा — मुझे आप लोगों की सेवा करते एक समय बीत गया। मैंने सदा न्याय के साथ राज करने की कोशिश की। अब मैं चाहता हूँ कि राज्य रामचन्द्र के सिपुर्द कर दूँ और अपने जीवन के अन्तिम दिन किसी एकान्त स्थान में बैठकर परमात्मा की याद में बिताऊँ।

यह प्रस्ताव सुनकर लोग बहुत प्रसन्न हुए और बोले — महाराज! आपकी शरण में हम जिस सुख और चैन से रहे उनकी याद हमारे दिलों से कभी न मिटेगी। जी तो यही चाहता है कि आपका हाथ हमारे सिर पर हमेशा रहे। लेकिन अब आपकी यही इच्छा है कि आप परमात्मा की याद में जिन्दगी बसर करें तो हम लोग इस शुभ काम में बाधक न होंगे। आप खुशी से ईश्वर की उपासना करें। हम जिस तरह आपको अपना मालिक और संरक्षक समझते थे, उसी तरह रामचन्द्र को समझेंगे।

इसी बीच में गुरु वशिष्ठ जी भी आ गये। उन्हें भी यह प्रस्ताव पसन्द आया। राजा ने कहा'जब आप लोग राम को चाहते हैं तो फिर अच्छी साइत देखकर उनका राजतिलक कर देना चाहिये। जितनी ही जल्दी मुझे अवकाश मिल जाय उतना ही अच्छा। सब लोगों ने इसे बड़ी खुशी से स्वीकार किया। तिलक की साइत निश्चित हो गयी। नगर में ज्योंही लोगों को ज्ञात हुआ कि रामचन्द्र का तिलक होने वाला है, उत्सव मनाने की तैयरियाँ होने लगीं। जिस दिन तिलक होने वाला था, उसके एक दिन पहले से शहर की सजावट होने लगी। घरों के दरवाजों पर बन्दनवारें लटकाई जाने लगीं, बाजारों में झण्डियाँ लहराने लगीं, सड़कों पर छिड़काव होने लगा, बाजे बजने लगे।

रानी कैकेयी की एक दासी मन्थरा थी। वह अति कुरूप, कुबड़ी औरत थी। कैकेयी के साथ मायके से आयी थी, इसलिए कैकेयी उसे बहुत चाहती थी। वह किसी काम से रनिवास के बाहर निकली तो यह धूमधाम देखकर एक आदमी से इसका कारण पूछा। उसने कहा — तुझे इतनी खबर भी नहीं! अयोध्या ही में रहती है या कहीं बाहर से पकड़कर आयी है? कल श्रीरामचन्द्र का तिलक होने वाला है। यह सब उसकी तैयारियाँ हैं।

यह समाचार सुनते ही मन्थरा को जैसे कम्प आ गया। मारे डाह के जल उठी। उसकी हार्दिक इच्छा थी कि कैकेयी के

राजकुमार भरत गद्दी पर बैठें और कैकेयी राजमाता हों, तब मैं जो चाहूँगी, करूँगी फिर तो मेरा ही राज होगा और रानियों की दासियों पर धाक जमाऊँगी। सिर से पैर तक गहनों से लदी हुई निकलूँगी तो लोग मुझे देखकर कहेंगे, वह मन्थरा देवी जाती हैं। फिर मुझे किसी ने कुबड़ी कहा तो मजा चखा दूंगी। इसी तरह के मनसूबे उसने दिल में बांध रखे थे। इस खबर ने उसके सारे मनसूबे धूल में मिला दिये। जिस काम के लिये जाती थी उसे बिल्कुल भूल गयी। बदहवास दौड़ी हुई महल में गयी और कैकेयी से बोली — महारानी जी! आपने कुछ और सुना? कल राम का तिलक होने वाला है।

तीनों रानियों में बड़ा प्रेम था। उनमें नाम को भी सौतिया-डाह न था। जिस तरह कौशल्या भरत को राम की ही तरह प्यार करती थीं, उसी तरह कैकेयी भी राम को प्यार करती थीं। रामचन्द्र सबसे बड़े थे इसलिए यह मानी हुई बात थी कि वही राजा होंगे। मन्थरा से यह खबर सुनकर कैकेयी बोली — मैं यह खबर पहले ही सुन चुकी हूँ, लेकिन तूने सबसे पहले मुझसे कहा, इसलिए यह सोने का हार तुझे इनाम देती हूँ। यह ले।

मन्थरा ने सिर पर हाथ मारकर कहा — महारानी! यह इनाम में शौक से लेती अगर राम की जगह राजकुमार भरत के तिलक की

खबर सुनती। यह इनाम देने की बात नहीं है, रोने की बात है। आप अपना भला-बुरा कुछ नहीं समझतीं।

कैकेयी — चुप रह डाइन! तुझे ऐसी बातें मुँह से निकालते लाज भी नहीं आती? रामचन्द्र मुझे भरत से भी प्यारे हैं। तू देखती नहीं कि वह मेरा कितना आदर करते हैं? बिना मुझे सलाह लिये कोई काम नहीं करते! फिर यह सबसे बड़े हैं। गद्दी पर अधिकार भी तो उन्हीं का है! फिर जो ऐसी बात मुँह से निकाली, तो जबान खिंचवा लूँगी।

मन्थरा — हाँ, जबान क्यों न खिंचवा लोगी! जब बुरे दिन आते हैं, तो आदमी की बुद्धि पर इसी प्रकार पर्दा पड़ जाता है। तुम जैसी भोली-भाली, नेक हो, वैसा ही सबको समझती हो। राम को बेटा-बेटा कहते यहाँ तुम्हारी जबान सूखती है, वहाँ रानी कौशल्या चुपके-चुपके तुम्हारी जड़ खोद रही हैं। चार दिन में वही रानी होंगी। तुम्हारी कोई बात भी न पूछेगा। बस, महाराज के पूजा के बर्तन धोया करना। मेरा काम तुम्हें समझाना था, समझा दिया। तुम्हारा नमक खाती हूँ, उसका हक अदा कर दिया। मेरे लिये जैसे राम, वैसे भरत। मैं दासी से रानी तो होने की नहीं। हाँ, तुम्हारे विरुद्ध कोई बात होते देखती हूँ तो रहा नहीं जाता। मेरे मुँह में आग लगे कहाँ से कहाँ मैंने यह जिक्र छेड़ दिया कि

सबेरे-सबेरे डाइन, चुड़ैल बनना पड़ा। तुम जानो, तुम्हारा काम जाने।

इन बातों ने आखिर कैकेयी पर असर किया। समझी, ठीक ही तो है, रामचन्द्र राजा होकर भरत को निकाल दें या मरवा ही डालें तो कौन उनका हाथ पकड़ेगा। मैं भी दूध की मक्खी की तरह निकाल दी जाऊँगी। बहुत होगा रोटी, कपड़ा मिल जायगा। राज्य पाकर सभी की मति बदल जाती है। राम को भी अभिमान हो जाय तो क्या आश्चर्य है। जभी कौशल्या मेरी इतनी खातिर करती हैं। यह सब मुझे तबाह करने की चालें हैं। यह सोचकर उसने मन्थरा से कहा — मन्थरा, देख, मेरी बातों को बुरा न मान। मैं क्या जानती थी कि मुझे और भरत को तबाह करने के लिए कौशल रचा जा रहा है। मैं तो सीधी-सादी स्त्री हूँ, छक्का-पंजा क्या जानूँ। अब तूने यह बात सुनायी तो मुझे सचाई मालूम हो रही है; मगर अब तो तिलक की साइत निश्चित हो चुकी। कल सबेरे तिलक हो जायगा। अब हो ही क्या सकता है।

मन्थरा — होने को तो बहुत कुछ हो सकता है। बस जरा स्त्री-हठ से काम लेना पड़ेगा। मैं सारी तरकीबें बतला दूंगी। जरा इन लोगों की चालाकी देखो कि तिलक की साइत उस समय ठीक की, जब राजकुमार भरत ननिहाल में हैं। सोचो, अगर दिल साफ होता तो दसपांच दिन और न ठहर जाते! भरत के आ जाने

पर तिलक होता तो क्या बिगड़ जाता। मगर वहाँ तो दिलों में मैल भरा हुआ है। उनकी अनुपस्थिति में चुपके से तिलक कर देना चाहते हैं।

कैकेयी — हाँ, यह बात भी तुझे खूब सूझी। शायद इसीलिए भरत को पहले यहाँ से खिसका दिया है, पहले से ही यह बात सधी-बदी थी। खेद है, मुझे मिट्टी में मिलाने के लिए ऐसे-ऐसे षड्यंत्र रचे जाते रहे और मैं बेखबर बैठी रही। बतला, अब मैं क्या करूँ? मेरी तो बुद्धि कुछ काम नहीं करती।

मन्थरा ने अपना कूबड़ हिलाकर कहा — वारी जाऊँ महारानी! आप भी क्या बातें करती हैं। आपको ईश्वर ने ऐसा रूप दिया है और महाराज को आपसे ऐसा प्रेम है कि रात भर में आप न जाने क्या-क्या कर सकती हैं। आप तो सारी बातें भूल जाती हैं। ऐसी भुलक्कड़ न होतीं तो बैरियों को ऐसे षड्यंत्र करने का मौका ही क्यों मिलता। अब तक तो भरत का कभी तिलक हो गया होता। तुम्हीं ने एक बार मुझसे कहा था कि महाराज ने तुम्हें दो वरदान देने का वचन दिया है। क्या वह बात भूल गयीं?

कैकेयी — हाँ, भूल तो गयी थी, पर अब याद आ गया। एक बार महाराज लड़ाई के मैदान से घायल होकर आये थे और मैंने मरहमपट्टी करके रात भर में उन्हें अच्छा कर दिया था। उसी

समय उन्होंने मुझे दो वरदान दिये थे। मैंने कहा था, मुझे आपकी दया से किस बात की कमी है। जब आवश्यकता होगी, मांग लूँगी।

मन्थरा — बस, फिर तो सारी बात बनी-बनायी है। आज तुम कोपभवन में जाकर बैठ जाओ। आभूषण इत्यादि सब उतार फेंको। केवल एक मैली-कुचैली साड़ी पहन लेना, और सिर के बाल खोलकर ज़मीन पर पड़ रहना। महाराज तुम्हारी यह दशा देखते ही घबरा जायेंगे। बस उसी समय दोनों वचन की याद दिलाकर कहना कि अब उन्हें पूरा कीजिये'एक यह कि राम के बदले भरत का तिलक हो, दूसरे यह कि राम को चौदह वर्ष के लिए वनवास दिया जाय। महाराज वचन के पक्के हैं, अवश्य ही मान जायँगे। फिर आनन्द से राज्य करना।

दिन तो उत्सव की तैयारियों में गुजरा। रात को जब राजा दशरथ कैकेयी के महल में पहुंचे तो चारों तरफ अंधेरा छाया हुआ, न कहीं गाना, न बजाना, न राग, न रंग। घबराकर एक दासी से पूछा — यह अंधेरा क्यों छाया हुआ है, चारों तरफ उदासी क्यों फैली हुई है? तू जानती है, महारानी कैकेयी कहाँ हैं? उनकी तबियत तो अच्छी है?

दासी ने कहा — महारानी जी ने गाने-बजाने का निषेध कर दिया है। वह इस समय कोपभवन में हैं।

महाराजा का माथा ठनका। यह रंग में क्या भंग हुआ। अवश्य कोई न कोई विपत्ति आने वाली है। उनका दिल धड़कने लगा। घबराये हुए कोपभवन में गये तो देखा, कैकेयी भूमि पर पड़ी सिसकियाँ भर रही हैं।

राजा दशरथ कैकेयी को बहुत प्यार करते थे। उनकी यह दशा देखते ही उनके हाथों के तोते उड़ गये। भूमि पर बैठकर बोले — महारानी! कुशल तो है? तुम्हारी तबियत कैसी है? शीघर बतलाओ, वरना मैं पागल हो जाऊँगा। क्या बात हुई है? तुम्हें किसी ने कुछ ताना दिया है? कोई बात तुम्हारी इच्छा के विरुद्ध हुई है? जिसने तुमसे यह धृष्टता की हो, उसको इसी समय दण्ड दूँगा।

कैकेयी ने आँसू पोंछते हुए कहा — मुझे कुछ नहीं हुआ। बहुत भली प्रकार हूँ। खाने को रोटियाँ, पहनने को कपड़े, रहने को मकान मिल ही गया है, अब और किस बात की कमी हो सकती है? आप भी प्रेम करते ही हैं। जाइये, उत्सव मनाइये। मुझे पड़ी रहने दीजिए। जिसका भाग्य ही बुरा है, उसे आप क्या करेंगे।

राजा ने कैकेयी को भूमि से उठाने की चेष्टा करते हुए कहा — महारानी, ऐसी बातें न करो। मुझे दुःख होता है। तुम्हें ज्ञात है, मैं तुमसे कितना प्रेम करता हूँ। मैंने कभी तुम्हारी इच्छा के विरुद्ध कोई काम नहीं किया। तुम्हें जो शिकायत हो, साफसाफ कह दो। मैं प्रतिज्ञा करता हूँ कि इसी समय उसे पूरा करूँगा।

कैकेयी ने त्योरियाँ बदलकर कहा — आप जितना मुझसे कहते हैं, उसका एक हिस्सा भी करते, तो मेरी हालत आज ऐसी खराब न होती। अब मुझे मालूम हुआ है कि आपका यह प्रेम केवल बातों का है। आप बातों से पेट भरना खूब जानते हैं। दुनिया आपको वचन का पक्का कहती है। आपके वंश में लोग वचन के पीछे जान देते चले आये हैं; मगर मुझसे तो आपने जितने वादे किये, उनमें एक भी पूरा न किया। अब और किस मुँह से माँगूँगी।

राजा — मुझे यह सुनकर अत्यन्त आश्चर्य हो रहा है। जहाँ तक मुझे याद है, मैंने तुम्हारे साथ जितने वादे किये, वे सब पूरे किये। वह कौन-सा वादा है, जिसे मैंने नहीं पूरा किया? इसी समय पूरा करूँगा। बस तनिक-सी बात के लिए तुम्हें कोपभवन में बैठने की क्या जरूरत थी?

कैकेयी भूमि से उठकर बैठी और बोली — याद कीजिये, एक बार आपने मुझे दो वरदान दिये थे, जिस दिन आप लड़ाई में घायल होकर लौटे थे।

राजा — हाँ, याद आ गया। ठीक है। मैंने दो वरदान दिये थे। मगर तुमने ही तो कहा था कि जब मुझे जरूरत होगी, मैं लूँगी।

कैकेयी — हाँ, मैंने ही कहा था। अब वह समय आ गया है। आप उन्हें पूरा करने को तैयार हैं?

राजा — मन और प्राण से। यदि तुम जान भी माँगो तो निकालकर दे दूँगा।

कैकेयी ने जमीन की तरफ ताकते हुए कहा — तो सुनिये। मेरा पहला वरदान यह है कि राम के बदले भरत का तिलक हो, दूसरा यह कि राम को चौदह वर्ष के लिए वनवास दिया जाय।

ओह निष्ठुर कैकेयी! तूने यह क्या किया? तुझे अपने वृद्ध पति पर तनिक भी दया न आयी? क्या तुझे ज्ञात नहीं कि रामचन्द्र ही उनके जीवनाधार हैं! राजा के चेहरे का रंग पीला पड़ गया। मालूम हुआ, सांप ने काट लिया। ठंडी सांस भरकर बोले — कैकेयी क्या तुम्हारे मुँह से विष की बूँदें टपक रही हैं? क्या तुम्हारे हृदय में राम की ओर से इतना मालिन्य है? राम का आज संसार में कोई बुरा चाहने वाला नहीं। वह सबकी आंखों का

तारा है। तुम्हारा वह जितना आदर करता है, उतना अपनी शायद माँ का नहीं करता। तुमने आज तक उसकी शिकायत न की, बल्कि हमेशा उसके शील-विनय की तारीफ किया करती थी! आज यह कायापलट क्यों हो गया? अवश्य किसी शत्रु ने तुम्हारे कान भरे हैं और राम की बुराइयाँ की हैं।

कैकेयी ने तिनककर कहा — कान तुम्हारे भरे हैं, मेरे कान नहीं भरे गये हैं। अपना लाभ और हानि जानवर तक समझते हैं। क्या मैं जानवरों से भी गयी-बीती हूँ? निश्चय देख रही हूँ कि मेरा बाग उजाड़ किया जा रहा है। क्या उसकी रक्षा न करूँ? अपनी गर्दन पर तलवार चल जाने दूँ? आपको अब तक मैं निर्मल-हृदय समझती थी। मगर अब मालूम हुआ कि आप भी केवल बातों से प्रेम के हरे-भरे बाग दिखाकर मुझे नष्ट करना चाहते हैं। कौशल्या रानी ने आपको खूब मन्त्र पढ़ाया है। उस नागिन के काटे की दवा नहीं। अब मैं दिखा दूँगी कि कैकेयी भी राजा की लड़की है, किसी शूद्र, चमार की नहीं कि इन चालों को न समझे।

राजा — कैकेयी, मैं कभी झूठ नहीं बोला, मैं तुमसे सच कहता हूँ कि मैंने राम के तिलक का निश्चय स्वयं किया। कौशल्या ने इस विषय में मुझसे एक शब्द भी नहीं कहा। तुम्हारा उन पर सन्देह करना अन्याय है। राम ने भी भरत के विरुद्ध एक शब्द

नहीं कहा। मेरे लिए राम और भरत दोनों बराबर हैं। किन्तु अधिकार तो बड़े लड़के का ही है। यदि मैं भरत का तिलक करना भी चाहूँ, तो तुम समझती हो, भरत उसे स्वीकार करेंगे? कदापि नहीं। भरत के लिए यह असम्भव है कि वह राम का अधिकार छीनकर प्रसन्न हों। राम और भरत एक प्राण दो शरीर हैं। तुमने इतने दिनों के बाद वरदान भी मांगे तो ऐसे, जो इस घर को नष्ट कर देंगे'शायद इस राज्य का अंत ही कर दें। खेद!

कैकेयी ने उंगली नचाकर कहा — अच्छा! तो क्या आपने समझा था कि मैं आपसे खेलने के लिए गुड़िया माँगूँगी? क्या किसी मजदूर की लड़की हूँ? अब इन चिकनी-चुपड़ी बातों में आप मुझे न फंसा सकेंगे। आपको और इस घर के आदमियों को खूब देख चुकी। आँखें खुल गयीं। यदि आपको वचन के सच्चे बनने का दावा है तो मेरे दोनों वरदान पूरे कीजिये। अन्यथा फिर रघुवंशी होने का घमण्ड न कीजियेगा। यह कलंक सदैव के लिए अपने माथे पर लगा लीजिए कि रघुकुल के राजा दशरथ ने वादे किये थे, पर जब उन्हें पूरा करने का समय आया तो साफ निकल गये।

राजा ने तिलमिलाकर कहा — कैकेयी, क्यों जले पर नमक छिड़कती हो! मैं अपने वचन से कभी न फिरुँगा, चाहे इसमें मेरा

जीवन, मेरे वंश और मेरे राज्य का अन्त ही क्यों न हो जाय। शायद ब्रह्मा ने राम के भाग्य में वनवास ही लिखा हो। शायद इसी बहाने से इस वंश का नाश लिखा हो। किन्तु इसका अपयश सदा के लिए तुम्हारे नाम के साथ लगा रहेगा। मैं तो शायद यह चोट खाकर जीवित न रहूँगा। मगर मेरी यह बात गिरह बांध लो कि राम को वनवास देकर तुम भरत के राज्य का सुख न देख सकोगी।

कैकेयी ने झल्लाकर कहा — यह आप भरत को शाप क्यों देते हैं? भरत राजा होंगे। आपको उन्हें राज्य देना पड़ेगा। वह राजा हो जायँ यही मेरी अभिलाषा है। मैं सुख देखने के लिए जीवित रहूँगी या नहीं, इसका हाल ईश्वर जाने।

राजा — यह तो मैं बड़ी प्रसन्नता से करने को तैयार हूँ मेरे लिए राम और भरत में कोई अन्तर नहीं। मैं इसी समय भरत को बुलाने के लिए आदमी भेज सकता हूँ। ज्योंही वह आ जायँगे, उनका तिलक हो जायगा। किन्तु राम को वनवास देते हुए मेरे हृदय के टुकड़े हुए जाते हैं। हाय! मेरा प्यारा राजकुमार चौदह वर्ष तक जंगलों में कैसे रहेगा? जो सदा फूलों के सेज पर सोया, वह पत्थर की चट्टानों पर घासपात का बिछौना बिछाकर कैसे सोयेगा? कैकेयी ईश्वर के लिए मुझ पर दया करो, इस वंश पर

दया करो। अपना दूसरा वरदान पूरा करने के लिए मुझे विवश न करो।

कैकेयी ने राजा की ओर देखकर आँखें नचायीं और बोलीं — साफ-साफ क्यों नहीं कहते कि मैं अपने वचन पूरे न करूँगा। क्या मैं इतना भी नहीं समझती कि राम के रहते बेचारा भरत कभी आराम से न बैठने पायेगा। राम अपनी मीठी-मीठी बातों से परजा का हृदय वश में करके राज्य में क्रान्ति करा देंगे। भरत का जीवित रहना कठिन हो जायगा। मेरे दोनों वरदान आपको पूरे करने पड़ेंगे। अब आपके धोखे में न आऊँगी।

राजा समझ गये कि कैकेयी को समझाना अब बेकार है। मैं जितना ही समझाऊँगा, उतना ही यह झल्लायेगी। सिर थामकर सोचने लगे कि क्या जवाब दूँ। मालूम होता है, आंखों में अंधेरा छा गया है। कोई हृदय को चीरे डालता है। हाय! जीवन की सारी अभिलाषाएँ धूल में मिली जा रही हैं। ईश्वर! यदि तुम्हें यही करना था तो बेटे दिये ही क्यों। बला से नि:संतान रहता। युवा बेटे का दु:ख तो न देखना पड़ता। यह तीन-तीन विवाह करने का फल है! बुढ़ापे में विवाह करने का यह फल! उससे अधिक मूर्ख दुनिया में कोई नहीं जो बुढ़ापे में विवाह करता है। वह जान-बूझकर विष का प्याला पीता है। हाय! सुबह होते ही राम मुझसे अलग हो जायँगे। मेरा प्यारा हृदय का टुकड़ा जंगल की

राह लेगा। भगवान्! इसके पहले कि इसके वनवास की आज्ञा मेरे मुँह से निकले — तुम मुझे इस दुनिया से उठा लेना। इसके पहले मैं उसे साधुओं के भेष में वन की ओर जाते देखूँ, तुम मेरी आंखों को निस्तेज कर देना। हाय! ईश्वर करता राम इतना आज्ञाकारी न होता। क्या ही अच्छा होता कि वह मेरी आज्ञा मानना अस्वीकार कर देता। कैकेयी राजा को चिंता में डूबे हुए देखकर बोली'आप सोच क्या रहे हैं? बोलिये, मेरी बातें स्वीकार करते हैं या नहीं?

राजा ने आँसुओं से भरी हुई आंखों से कैकेयी को देखकर कहा — रानी! यह पूछने की बात नहीं। अपने वचन से न फिरुँगा। तुम्हारी दोनों बातें स्वीकार हैं। तुम इतनी सुन्दर होकर हृदय से इतनी कलुषपूर्ण हो, इसका मुझे अनुमान, विचार तक न था। मैं न जानता था कि तुम मेरे दोनों वरदानों का यह परयोग करोगी। खैर, तुम्हारा राज्य तुमको सुखी करे। प्यारे राम! मुझे क्षमा करना। तुम्हारा पिता जिसने तुम्हें गोद में खिलाया, आज एक स्त्री के छल में पड़कर तुम्हारी गर्दन पर तलवार चला रहा है। किन्तु बेटा! देखना, रघुकुल के नाम पर कलंक न लगने पाये....

यह कहते-कहते राजा मूर्च्छित हो गये। कैकेयी दिल में प्रसन्न हो रही थी, कल से अयोध्या में मेरे नाम का डंका बजेगा। वह सबेरे किसी दूत को कश्मीर भेजकर भरत को बुलाने का निश्चय कर

रही थी। अहा! वह घड़ी कितनी शुभ होगी, जब भरत अयोध्या के राजा होंगे! राजा थोड़ी-थोड़ी देर के बाद करवट बदलते और कराहते थे। हाय राम! हाय राम! इसके अतिरिक्त उनके मुँह से कोई शब्द न निकलता था।

इस प्रकार सारी रात बीत गयी। सुबह को शहर के धनी मानी, विद्वान्, ऋषि-मुनि और दरबार के सभासद तिलक का अनुष्ठान करने के लिए उपस्थित हुए। हवनकुण्ड में आग जलाई गयी। आचार्य लोग वेदमन्त्रों का पाठ करने लगे। भिक्षुओं का एक दल दान के रुपये लेने के लिये फाटक पर एकत्रित हो गया। लोगों की आँखें राजमहल के द्वार की ओर लगी हुई हैं। राजा साहब आज क्यों इतना विलम्ब कर रहे हैं। हर आदमी अपने पास बैठे आदमी से यही प्रश्न कर रहा है। शायद राजसी पोशाक पहन रहे हों। किन्तु नहीं, वह तो बहुत तड़के उठा करते हैं। अन्दर से कोई समाचार भी नहीं आता। रामचन्द्र स्नान-पूजा से निवृत्ति होकर बैठे हैं। कौशल्या की प्रसन्नता का अनुमान कौन कर सकता है? प्रासाद में मंगल-गीत गाये जा रहे हैं। द्वार पर नौबत बज रही है, पर दशरथ का पता नहीं।

अन्त में गुरु वशिष्ठ ने साइत टलते देखकर मन्त्री सुमन्त्र को महल में भेजा कि जाकर महाराज को बुला लाओ।

सुमन्त्र अन्दर गये तो क्या देखते हैं कि महाराज भूमि पर पड़े कराह रहे हैं। और कैकेयी द्वार पर खड़ी है। सुमन्त्र ने रानी कैकेयी को प्रणाम किया और बोले — महाराज की नींद अभी नहीं टूटी? बाहर गुरु वशिष्ठ जी बैठे हुए हैं। तिलक का मुहूर्त्त टला जाता है आप तनिक उन्हें जगा दें।

कैकेयी बोली — महाराज को प्रसन्नता के मारे आज रात भर नींद नहीं आयी। इस समय तनिक आँख लग गयी है। अभी जगा दूँगी तो उनका सिर भारी हो जायेगा। तुम तनिक जाकर रामचन्द्र को अन्दर भेज दो। महाराज उनसे कुछ कहना चाहते हैं।

सुमन्त्र ने यह दृश्य देखकर ताड़ लिया कि अवश्य कोई षड्यंत्र उठ खड़ा हुआ है। जाकर रामचन्द्र जी से यह सन्देश कहा। रामचन्द्र जी तुरन्त अन्दर आकर राजा दशरथ के सामने खड़े हो गये और प्रणाम करके बोले — पिताजी मैं उपस्थित हूँ, मुझे क्यों स्मरण किया है?

दशरथ ने एक बार विवश निगाहों से रामचन्द्र को देखा और ठंडी सांस भर कर सिर झुका लिया। उनकी आंखों से आँसू जारी हो गये। रामचन्द्र को सन्देह हुआ कि सम्भवतः आज महाराज

मुझसे अप्रसन्न हैं। बोले — माता जी! पिता जी ने मेरी बातों का कुछ भी उत्तर न दिया, शायद वह मुझसे नाराज हैं।

कैकेयी बोली — नहीं बेटा, वह तुमसे नाराज नहीं हैं। तुमसे वह इतना प्रेम करते हैं, तुमसे क्यों नाराज होने लगे। वह तुमसे कुछ कहना चाहते हैं। किन्तु इस भय से कि शायद तुम्हें बुरा मालूम हो, या तुम उनकी आज्ञा न मानो, कहते हुए झिझकते हैं। इसलिये अब मुझी को कहना पड़ेगा। बात यह है, महाराज ने मुझे दो वचन दिये थे। आज वह उन वचनों को पूरा करना चाहते हैं। यदि तुम उन्हें पूरा करने को तैयार हो, तो मैं कहूँ।

राम ने निडर भाव से कहा — माता जी, मेरे लिये पिता की आज्ञा मानना कर्तव्य है। संसार में ऐसा कोई बल नहीं जो मुझे यह कर्तव्य-पालन करने से रोक सके। आप तनिक भी विलम्ब न करें। मैं सर आंखों पर उनकी आज्ञा का पालन करूँगा। मेरे लिये इससे अधिक और क्या सौभाग्य की बात होगी।

कैकेयी — हाँ, सुपुत्र बेटों का धर्म तो यही है। महाराज ने अब तुम्हारी जगह भरत का तिलक करने का निर्णय किया है और तुम्हें चौदह बरस के लिये वनवास दिया है। महाराज ये बातें अपने मुँह से न कह सकेंगे, मगर वह जो कुछ चाहते हैं, वह मैंने तुमसे कह दिया। अब मानना तुम्हारे अधिकार में है। यह तुमने

न माना, तो दुनिया में राजा पर यह अभियोग लगेगा कि उन्होंने अपने वचन को पूरा न किया और तुम्हारे सिर यह कि पिता की आज्ञा न मानी।

रामचन्द्र यह आज्ञा सुनकर थोड़ी देर के लिये सहम उठे। क्या समझते थे क्या हुआ। सारी परिस्थिति उनकी समझ में आ गयी। यदि वह चाहते तो इस आज्ञा की चिन्ता न करते। सारी अयोध्या उनके नाम पर मरती थी। किन्तु सुशील बेटे पिता की आज्ञा को ईश्वर की आज्ञा समझते हैं।

राम ने उसी समय निश्चय कर लिया कि मुझ पर चाहे जो कुछ बीते, पिता की आज्ञा मानना निश्चित है। बोले — माता जी, मेरी ओर से आप तनिक भी चिन्ता न करें। मैं आज ही अयोध्या से चला जाऊँगा। आप किसी दूत को भेजकर भरत को बुला भेजिये। मुझे उनके राजतिलक होने का लेशमात्र भी खेद नहीं है। मैं अभी माता कौशल्या से पूछ कर और सीता जी को आश्वासन देकर जंगल की राह लूँगा।

यह कहकर रामचन्द्र जी ने राजा के चरणों पर सिर झुकाया, माता कैकेयी को प्रणाम किया और कमरे से बाहर निकले। राजा दशरथ के मुँह से दुःख या खेद का एक शब्द भी न निकला। वाणी उनके अधिकार में न थी। ऐसा मालूम हो रहा था, कि नसों

की राह जान निकली जा रही है। जी में आता था कि राम के पैर पकड़कर रोक लूँ। अपने ऊपर क्रोध आ रहा था। कैकेयी के ऊपर क्रोध आ रहा था। ईश्वर से प्रार्थना कर रहे थे कि मुझे मृत्यु आ जाय, इसी समय इस जीवन का अन्त हो जाय। छाती फटी जाती थी। आह! मेरा प्यारा बेटा इस तरह चला जा रहा है और मैं जबान से ढाढ़स का एक वाक्य भी नहीं निकाल सकता। कौन पिता इतना निर्दयी होगा? यह सोचते-सोचते राजा को मूर्छा आ गयी।

रामचन्द्र यहाँ से कौशल्या के पास पहुंचे। वे उस समय निर्धनों को अन्न और वस्त्र देने का प्रबन्ध कर रही थीं। राम को देखते ही बोलीं — क्या हुआ बेटा राजा बाहर गये कि नहीं? अब तो देर हो रही है।

रामचन्द्र ने आवाज को संभालकर कहा — माता जी, मामला कुछ और हो गया। महाराज ने अब भरत को राज देने का निर्णय किया है और मुझे चौदह बरस के बनवास की आज्ञा दी है। मैं आपसे आज्ञा लेने आया हूँ, आज ही अयोध्या से चला जाऊँगा।

रानी कौशल्या को मूर्च्छा-सी आ गयी। रामचन्द्र की ओर निस्तेज आंखों से देखती रह गयीं, जैसे कोई मिट्टी की मूर्ति हों।

लक्ष्मण भी वहीं खड़े थे। यह बात सुनते ही उनके त्योरियों पर बल पड़ गये। आंखों से चिनगारियाँ निकलने लगीं। बोले — यह नहीं हो सकता। कदापि नहीं हो सकता। भरत कभी लक्ष्मण के जीते जी अयोध्या के राजा नहीं हो सकते। आप क्षत्रिय हैं। क्षत्रिय का धर्म है, अपने अधिकार के लिये युद्ध करना। सारी अयोध्या, सारा कोशल आपकी ओर है। सेना आपका संकेत पाते ही आपकी ओर हो जायेगी। भरत अकेले कर ही क्या सकते हैं। यह सब रानी कैकेयी का षडयंत्र है।

रामचन्द्र ने लक्ष्मण की ओर प्रेमपूर्ण नेत्रों से देखकर कहा — भैया, कैसी बातें करते हो! रघुकुल में जन्म लेकर पिता की आज्ञा न मानूँ, तो संसार को क्या मुँह दिखाऊँगा। भाग्य में जो लिखा है; वह पूरा होकर रहेगा। उसे कौन टाल सकता है?

लक्ष्मण — भाई साहब! भाग्य की आड़ वे लोग लेते हैं जिनमें पराक्रम और साहस नहीं होता। आप क्यों भाग्य की आड़ लें? आप की भौंहों के एक संकेत पर सारी अयोध्या में तूफान आ जायगा। भाग्य साहस का दास है, उसका राजा नहीं! यदि आप मुझे आज्ञा दें तो मैं इस धनुष और बाण के बल से भाग्य को आपके चरणों में गिरा दूँ। फिर आपसे महाराज ने अपनी जिह्वा से तो कुछ कहा नहीं। क्या यह सम्भव नहीं कि रानी कैकेयी ने अपनी ओर से यह षडयंत्र किया हो?

रानी कौशल्या ने आँसू पोंछते हुए कहा — बेटा! मुझे इस बात की तो सच्ची खुशी है कि तुम अपने योग्यतम पिता की आज्ञा मानने के लिये अपने जीवन की बलि देने को तैयार हो, किन्तु मुझे तो ऐसा प्रतीत होता है कि लक्ष्मण का विचार ठीक है। कैकेयी ने अपनी ओर से यह छल रचा है।

रामचन्द्र ने आदर के साथ कहा — माता जी, पिताजी वहीं मौजूद थे। यदि रानी कैकेयी ने उनकी इच्छा के विरुद्ध कोई बात कही होती, तो क्या वह कुछ आपत्ति न करते? नहीं माता जी, धर्म से मुँह मोड़ने के लिये हीले ढूँढ़ना मैं धर्म के विरुद्ध समझता हूँ। कैकेयी ने जो कुछ कहा है, पिताजी की स्वीकृति से कहा है। मैं उनकी आज्ञा को किसी प्रकार नहीं टाल सकता। आप मुझे अब जाने की अनुमति दें। यदि जीवित रहा तो फिर आपके चरणों की धूलि लूँगा।

कौशल्या ने रामचन्द्र का हाथ पकड़ लिया और बोली — बेटा! आखिर मेरा भी तो तुम्हारे ऊपर कुछ अधिकार है! यदि राजा ने तुम्हें वन जाने की आज्ञा दी है, तो मैं तुम्हें इस आज्ञा को मानने से रोकती हूँ। यदि तुम मेरा कहना न मानोगे, तो मैं अन्न-जल त्याग दूँगी और तुम्हारे ऊपर माता की हत्या का पाप लगेगा।

रामचन्द्र ने एक ठंडी साँस खींचकर कहा — माताजी, मुझे कर्तव्य के सीधे रास्ते से न हटाइये, अन्यथा जहाँ मुझ पर धर्म को तोड़ने का पाप लगेगा, वहाँ आप भी इस पाप से न बच सकेंगी। मैं वन और पर्वत चाहे जहाँ रहूँ, मेरी आत्मा सदा आपके चरणों के पास उपस्थित रहेगी। आपका प्रेम बहुत रुलायेगा, आपकी प्रेममयी मूर्ति देखने के लिए आँखें बहुत रोयेंगी, पर वनवास में यह कष्ट न होते हो भाग्य मुझे वहाँ ले ही क्यों जाता। कोई लाख कहे; पर मैं इस विचार को दूर नहीं कर सकता कि भाग्य ही मुझे यह खेल खिला रहा है। अन्यथा क्या कैकेयी-सी देवी मुझे वनवास देतीं!

लक्ष्मण बोले — कैकेयी को आप देवी कहें; मैं नहीं कह सकता!

रामचन्द्र ने लक्ष्मण की ओर प्रसन्नता के भाव से देखकर कहा -- लक्ष्मण, मैं जानता हूँ कि तुम्हें मेरे वनवास से बहुत दुःख हो रहा है; किन्तु मैं तुम्हारे मुँह से माता कैकेयी के विषय में कोई अनादर की बात नहीं सुन सकता। कैकेयी हमारी माता हैं। तुम्हें उनका सम्मान करना चाहिए। मैं इसलिए वनवास नहीं ले रहा हूँ कि यह कैकेयी की इच्छा है, किन्तु इसलिए कि यदि मैं न जाऊँ, तो महाराज का वचन झूठा होता है। दो-चार दिन में भरत आ जायेंगे, जैसा मुझसे प्रेम करते हो, वैसे ही उनसे प्रेम करना। अपने वचन या कर्म से यह कदापि न दिखाना कि तुम उनके अहित की

इच्छा रखते हो, बारबार मेरी चर्चा भी न करना, अन्यथा शायद भरत को बुरा लगे।

लक्ष्मण ने क्रोध से लाल होकर कहा — भैया, बारबार भरत का नाम न लीजिए। उनके नाम ही से मेरे शरीर में आग लग जाती है। किसी प्रकार क्रोध को रोकना चाहता हूँ, किन्तु अधिकार को यों मिटते देखकर हृदय वश से बाहर हो जाता है। भरत का राज्य पर कोई अधिकार नहीं। राज्य आपका है और मेरे जीते जी कोई आपसे उसे नहीं छीन सकता। क्षत्रिय अपने अधिकार के लिये लड़ कर मर जाता है। मैं रक्त की नदी बहा दूँगा।

लक्ष्मण का क्रोध बढ़ते देखकर राम ने कहा — लक्ष्मण, होश में आओ। यह क्रोध और युद्ध का समय नहीं है। यह महाराज दशरथ के वचन निभाने की बात है। मैं इस कर्तव्य को किसी भी दशा में नहीं तोड़ सकता। मेरा वन जाना निश्चित है। कर्तव्य के मुकाबले में शारीरिक सुख का कोई मूल्य का नहीं।

लक्ष्मण को जब ज्ञात हो गया कि रामचन्द्र ने जो निश्चित किया है उससे टल नहीं सकते तो बोले — अगर आपका यही निर्णय है तो मुझे भी साथ लेते चलिये। आपके बिना मैं यहाँ एक दिन भी नहीं रह सकता। जब आप वन में घूमेंगे तो मैं इस महल में क्योंकर रह सकूँगा। आपके बिना यह राज्य मुझे श्मशान-सा

लगेगा। जब से मैंने होश संभाला, कभी आपके चरणों से विलग नहीं हुआ। अब भी उनसे लिपटा रहूँगा।

रामचन्द्र ने लक्ष्मण को प्रेमपूर्ण नेत्रों से देखा। छोटे भाई को मुझसे कितना प्रेम है! मेरे लिए जीवन के सारे सुख और आनन्द पर लात मारने के लिए तैयार है। बोले — नहीं लक्ष्मण, इस विचार को त्याग दो। भला सोचो तो, जब तुम भी मेरे साथ चले जाओगे, तो माता सुमित्रा और कौशल्या किसका मुँह देखकर रहेंगी? कौन उनके दुःख के बोझ को हल्का करेगा? भरत के राजा होने पर रानी कैकेयी सफेद और काले की मालिक होंगी। सम्भव है वह हमारी माताओं को किसी प्रकार का कष्ट दें। उस समय कौन उनकी सहायता करेगा? नहीं, तुम्हारा मेरे साथ चलना उचित नहीं।

लक्ष्मण — नहीं भाई साहब! मैं आपके बिना किसी प्रकार नहीं रह सकता। भरत की ओर से इस प्रकार का भय नहीं हो सकता। वह इतना डरपोक और नीच नहीं हो सकता। रघु के वंश में ऐसा मनुष्य पैदा ही नहीं हो सकता। आपका साथ मैं किसी तरह नहीं छोड़ सकता।

रामचन्द्र ने बहुत समझाया, किन्तु जब लक्ष्मण किसी तरह न माने तो उन्होंने कहा — अच्छा, यदि तुम नहीं मानते तो मैं तुम्हारे

साथ अत्याचार नहीं कर सकता। किन्तु पहले जाकर सुमित्रा से पूछ आओ।

लक्ष्मण ने सुमित्रा से बन जाने की अनुमति माँगी तो उन्होंने उसे हृदय से लगाकर कहा — शौक से बन जाओ बेटा! मैं तुम्हें खुशी से आज्ञा देती हूँ। दुःख में भाई ही भाई के काम आता है। राम से तुम्हें जितना प्रेम है, उसकी मांग यही है कि तुम इस कठिन समय में उनका साथ दो। मैं सदा तुम्हें आशीर्वाद देती रहूँगी।

इसी समय में सीता जी को भी रामचन्द्र के वनवास का समाचार मिला। वह अच्छे-अच्छे आभूषणों से सज्जित होकर राजतिलक के लिए तैयार थीं। एकाएक यह दुःखद समाचार मिला और मालूम हुआ कि राम अकेले जाना चाहते हैं, तो दौड़ी हुई आकर उनके चरणों पर गिर पड़ी और बोलीं — स्वामी, आप बन जाते हैं तो मैं यहाँ अकेले कैसे रहूँगी। मुझे भी साथ चलने की अनुमति दीजिये। आपके बिना मुझे यह महल फाड़ खायेगा, फूलों की सेज कांटों की तरह गड़ेगी। आपके साथ जंगल भी मेरे लिए बाग है, आपके बिना बाग भी जंगल है।

कौशल्या ने सीता को गले से लगाकर कहा — बेटी ! तुम भी चली जाओगी, तो मैं किसका मुँह देखकर जिऊँगी। फिर तो घर ही सूना हो जायगा। सोचती थी कि तुम्हीं को देखकर मन में

सन्तोष करूँगी। किन्तु अब तुम भी वन जाने को प्रस्तुत हो। ईश्वर! अब कौन-सा दुःख दिखाना चाहते हो? क्यों इस अभागिन को नहीं उठा लेते?

रामचन्द्र को यह विचार भी न हुआ कि सीताजी उनके साथ चलने को तैयार होंगी। समझाते हुए बोले — सीता, इस विचार का त्याग कर दो। जंगल में बड़ी-बड़ी कठिनाइयां हैं पग-पग पर जन्तुओं का भय, जंगल के डरावने आदमियों से वास्ता, रास्ता कांटों और कंकड़ों से भरा हुआ'भला तुम्हारा कोमल शरीर यह कठिनाइयां कैसे झेल सकेगा? पत्थर की चट्टानों पर तुम कैसे सोओगी? पहाड़ों का पानी ऐसा खराब होता है कि तरह-तरह की बीमारियाँ पैदा हो जाती हैं। तुम इन तकलीफों को कैसे बर्दाश्त कर सकोगी?

सीता आंखों में आँसू भरकर बोलीं — स्वामी! जब आप मेरे साथ होंगे तो मुझे किसी बात का भय न होगा। वह खुशी सारी तकलीफों को मिटा देगी। यह कैसे हो सकता है कि आप जंगलों में तरह-तरह की कठिनाइयाँ झेलें और मैं राजमहल में आराम से सोऊँ। स्त्री का धर्म अपने पति का साथ देना है, वह दुःख और सुख हर दशा में उसकी संगिनी रहती है। यही उसका सबसे बड़ा कर्तव्य है। यदि आप सैर और मनबहलाव के लिए जाते होते, तो मैं आपके साथ जाने के लिए अधिक आग्रह न करती।

किन्तु यह जानकर कि आपको हर तरह का कष्ट होगा, मैं किसी तरह नहीं रुक सकती। मैं आपके रास्ते से कांटे चुनूँगी, आपके लिए घास और पत्तों की सेज बनाऊँगी, आप सोयेंगे, तो आपको पंखा झलूँगी। इससे बढ़कर किसी स्त्री को और क्या सुख हो सकता है?

रामचन्द्र निरुत्तर हो गये। उसी समय तीनों आदमियों ने राजसी पोशाकें उतार दीं और भिक्षुकों का-सा सादा कपड़ा पहनकर कौशल्या से आकर बोले — माताजी! अब हमको चलने की अनुमति दीजिये।

कौशल्या फूट-फूटकर रोने लगीं — बेटा, किस मुँह से जाने को कहूँ ! मन को किसी प्रकार सन्तोष नहीं होता। धर्म का प्रश्न है, रोक भी नहीं सकती। जाओ ! मेरा आशीर्वाद सदा तुम्हारे साथ रहेगा। जिस तरह पीठ दिखाते हो, उसी तरह मुँह भी दिखाना। यह कहते-कहते कौशल्या रानी दुःख से मूर्छा खाकर गिर पड़ीं। यहाँ से तीनों आदमी सुमित्रा के पास गये और उनके चरणों पर सिर झुकाकर रानी कैकेयी के कोपभवन में महाराज दशरथ से विदा होने गये। राजा मृतक शरीर के समान निष्पराण और निःस्पंद पड़े थे। तीनों आदमियों ने बारी-बारी से उनके चरणों पर सिर झुकाया। तब राम बोले — महाराज ! मैं तो अकेला ही जाना चाहता था, किन्तु लक्ष्मण और जानकी किसी प्रकार मेरा

साथ नहीं छोड़ते, इसलिए इन्हें भी लिये जाता हूँ। हमें आशीर्वाद दीजिये।

यह कहकर जब तीनों आदमी वहाँ से चले तो राजा दशरथ ने जोर से रोकर कहा'हाय राम! तुम कहाँ चले? उन पर एक पागलपन की-सी दशा आ गयी। भले और बुरे का विचार न रहा। दौड़े कि राम को पकड़कर रोक लें, किन्तु मूर्च्छा खाकर गिर पड़े। रात ही भर में उनकी दशा ऐसी खराब हो गयी थी कि मानो बरसों के रोगी हैं।

अयोध्या में यह खबर मशहूर हो गयी थी। लाखों आदमी राजभवन के दरवाजों पर एकत्रित हो गये थे। जब ये तीनों आदमी भिक्षुकों के वेश में रनिवास से निकले तो सारी परजा फूट-फूटकर रोने लगी। सब हाथ जोड़-जोड़कर कहते थे, महाराज! आप न जायँ। हम चलकर महारानी कैकेयी के चरणों पर सिर झुकायेंगे, महाराज से प्रार्थना करेंगे। आप न जायँ। हाय ! अब कौन हमारे साथ हमदर्दी करेगा, हम किससे अपना दुःख कहेंगे, कौन हमारी सुनेगा, हम तो कहीं के न रहे।

रामचन्द्र ने सबको समझाकर कहा — दुःख में धैर्य के सिवा और कोई चारा नहीं। यही आपसे मेरी विनती है। मैं सदा आप लोगों को याद करता रहूँगा।

राजा ने समुन्त्र को पहले ही से बुलाकर कह दिया था कि जिस प्रकार हो सके, राम, सीता और लक्ष्मण को वापस लाना।

सुमन्त्र रथ तैयार किये खड़ा था। रामचन्द्र ने पहले सीता जी को रथ पर बैठाया, फिर दोनों भाई बैठे और सुमन्त्र को रथ चलाने का आदेश दिया। हजारों आदमी रथ के पीछे दौड़े और बहुत समझाने पर भी रथ का पीछा न छोड़ा। आखिर शाम को जब लोग तमसा नदी के किनारे पहुंचे, तो राम ने उन्हें दिलासा देकर विदा किया।

इधर अयोध्या में कुहराम मचा हुआ था। मालूम होता था, सारा शहर उजाड़ हो गया है। जहाँ कल सारा शहर दीपकों से जगमगा रहा था, वहाँ आज अंधेरा छाया हुआ था। सुबह जहाँ मंगल-गीत हो रहे थे, वहाँ इस समय हर घर से रोने की आवाजें आती थीं। दुकानें बन्द थीं। जहाँ दो आदमी मिल जाते, यही चर्चा होने लगती। बेटा हो तो ऐसा हो ! पिता की आज्ञा पाते ही राजपाट पर लात मार दी। संसार में ऐसा कौन होगा। बड़े-बड़े राजा एक बालिश्त जमीन के लिए लड़ते-मरते हैं। भाई, भी तो ऐसा हो। सबसे अधिक प्रशंसा सीताजी की हो रही थी। पुरुषों के लिए जंगल की कठिनाइयां सहना कोई असाधारण बात नहीं, स्त्री के लिए असाधारण बात थी। सती स्त्रियाँ ऐसी होती हैं। जिसने कभी पृथ्वी पर पाँव नहीं रखा, वह जंगल में चलने के लिए

तैयार हो गयी। सच है, कुसमय में ही स्त्री और मित्र की परख होती है।

उधर रनिवास शोकगृह बना हुआ था। किसी को तन-बदन की सुध न थी।

राजा दशरथ की मृत्यु

तमसा नदी को पार करके पहर रात जाते-जाते रामचन्द्र गंगा के किनारे जा पहुँचे। वहाँ भील सरदार गुह का राज्य था। रामचन्द्र के आने का समाचार पाते ही उसने आकर प्रणाम किया। रामचन्द्र ने उसकी नीच जाति की तनिक भी चिन्ता न करके उसे हृदय से लगा लिया और कुशलक्षेम पूछा। गुह सरदार बाग़-बाग़ हो गया — कौशल के राजकुमार ने उसे हृदय से लगा लिया! इतना बड़ा सम्मान उसके वंश में और किसी को न मिला था। हाथ जोड़कर बोला‘आप इस निर्धन की कुटिया को अपने चरणों से पवित्र कीजिये। इस घर के भी भाग्य जागें। जब मैं आपका सेवक यहाँ उपस्थित हूँ तो आप यहाँ क्यों कष्ट उठायेंगे।

रामचन्द्र ने गुह का निमन्त्रण स्वीकार न किया। जिसे वनवास की आज्ञा मिली हो, वह नगर में किस प्रकार रहता। वहीं एक पेड़ के नीचे रात बितायी। दूसरे दिन प्रातःकाल रामचन्द्र ने सुमन्त्र से कहा — अब तुम लौट जाओ, हम लोग यहाँ से पैदल जायँगे। माताजी से कह देना कि हम लोग कुशल से हैं, घबराने की कोई बात नहीं।

सुमन्त्र ने रोकर कहा'महाराज दशरथ ने तो मुझे आप लोगों को वापस लाने का आदेश दिया था। खाली रथ देखकर उनकी क्या दशा होगी! राम ने सुमन्त्र को समझा बुझाकर विदा किया। सुमन्त्र रोते हुए अयोध्या लौटे। किन्तु जब वह नगर के निकट पहुंचे तो दिन बहुत शेष था। उन्हें भय हुआ कि यदि इसी समय अयोध्या चला जाऊँगा तो नगर के लोग हजारों प्रश्न पूछ-पूछकर परेशान कर देंगे। इसलिये वह नगर के बाहर रुके रहे। जब संध्या हुई तो अयोध्या में प्रविष्ट हुए।

इधर राजा दशरथ इस प्रतीक्षा में बैठे थे कि शायद सुमन्त्र राम को लौटा लाये। आशा का इतना सहारा शेष था। कैकेयी से रुष्ट होकर वह कौशल्या के महल में चले गये थे और बारबार पूछ रहे थे कि सुमन्त्र अभी लौटा या नहीं। दीपक जल गये, अभी सुमन्त्र नहीं आया। महाराज की विकलता बढ़ने लगी। आखिर सुमन्त्र राजमहल में प्रविष्ट हुए। दशरथ उन्हें देखकर

दौड़े और द्वार पर आकर पूछा — राम कहाँ हैं ? क्या उन्हें वापस नहीं लाये? सुमन्त्र कुछ बोल न सके, पर उनका चेहरा देखकर महाराज की अन्तिम आशा का तार टूट गया। वह वहीं मूर्छा खाकर गिर पड़े और हाय राम! हाय राम! कहते हुए संसार से विदा हो गये। मरने से पहले उन्हें उस अन्धे तपस्वी की याद आयी जिसके बेटे को आज से बहुत दिन पहले उन्होंने मार डाला था। वह जिस प्रकार बेटे के लिये तड़प-तड़पकर मर गया, उसी प्रकार महाराज दशरथ भी लड़कों के वियोग में तड़पकर परलोक सिधारे। उनके शाप ने आज प्रभाव दिखाया।

रनिवास में शोक छा गया। कौशल्या महाराज के मृत शरीर को गोद में लेकर विलाप करने लगीं। उसी समय कैकेयी भी आ गयी। कौशल्या उसे देखते ही क्रोध से बोलीं — अब तो तुम्हारा कलेजा ठंडा हुआ! अब खुशियाँ मनाओ। अयोध्या के राज का सुख लूटो। यही चाहती थीं न? लो, कामनाएँ फलीभूत हुई। अब कोई तुम्हारे राज में हस्तक्षेप करने वाला नहीं रहा। मैं भी कुछ घड़ियों की मेहमान हूँ; लड़का और बहू पहले ही चले गये। अब स्वामी ने भी साथ छोड़ दिया। जीवन में मेरे लिए क्या रखा है। पति के साथ सती हो जाऊँगी।

कैकेयी चित्रलिखित-सी खड़ी रही। दासियों ने कौशिल्या की गोद से महाराज का मृत शरीर अलग किया और कौशल्या को दूसरी

जगह ले जाकर आश्वासन देने लगीं। दरबार के धनी-मानियों को ज्योंही खबर लगी, सबके-सब घबराये हुये आये और रानियों को धैर्य बँधाने लगे। इसके उपरान्त महाराज के मृत शरीर को तेल में डुबाया गया जिसमें सड़ न जाय और भरत को बुलाने के लिए एक विश्वासी दूत प्रेषित किया गया। उनके अतिरिक्त अब क्रियाकर्म और कौन करता?

भरत की वापसी

जिस दिन महाराज दशरथ की मृत्यु हुई उसी दिन रात को भरत ने कई डरावने स्वप्न देखे। उन्हें बड़ी चिन्ता हुई कि ऐसे बुरे स्वप्न क्यों दिखायी दे रहे हैं। न जाने लोग अयोध्या में कुशल से हैं या नहीं। नाना की अनुमति मांगी, पर उन्होंने दो-चार दिन और रहने के लिए आग्रह किया 'आखिर जल्दी क्या है। काश्मीर की खूब सैर कर लो, तब जाना। अयोध्या में यह हृदय को हरने वाले प्राकृतिक सौन्दर्य कहाँ मिलेंगे। विवश होकर भरत को रुकना पड़ा। इसके तीसरे दिन दूत पहुंचा। उसे भली प्रकार चेता दिया गया था कि भरत से अयोध्या की दशा का वर्णन न करना, इसलिए जब भरत ने दूत से पूछा — क्यों भाई, अयोध्या में

सब कुशल है न? तो उसने कोई खास जवाब न देकर व्यंग्य से कहा — आप जिनकी कुशल पूछते हैं, वे कुशल से हैं। दूत भी हृदय से भरत से असन्तुष्ट था।

भरत जी को क्या खबर कि दूत इस एक वाक्य में क्या कह गया। उन्होंने नाना और मामा से आज्ञा ली और उसी दिन शत्रुघ्न के साथ अयोध्या के लिये प्रस्थान किया। रथ के घोड़े हवा से बातें करने वाले थे। तीसरे ही दिन वह अयोध्या में प्रविष्ट हुए। किन्तु यह नगर पर उदासी क्यों छायी हुई है ? नगर श्रीहीन सा क्यों हो रहा है ? गलियों में धूल क्यों उड़ रही है? बाजार क्यों बन्द हैं ? रास्ते में जो भरत को देखता था, बिना इनसे कुछ बातचीत किये, बिना कुशलक्षेम पूछे या प्रणाम किये कतरा कर निकल जाता था। उनके आगे बढ़ आने पर लोग कानाफूसी करने लगते थे। भरत की समझ में कुछ न आता था कि भेद क्या है। कोई उनकी ओर आकृष्ट भी न होता था कि उससे कुछ पूछें। राजमहल तक पहुँचना उनके लिए कठिन हो गया। राजमहल पहुंचे तो उसकी दशा और भी हीन थी। मालूम होता था कि उसकी जान निकल गयी है, केवल मृत शरीर शेष है। खिन्नता विराज रही थी। कई दिन से दरवाजे पर झाडू तक न दी गयी थी। दो-चार सन्तरी खड़े जम्हाइयाँ ले रहे थे। वह

भी भरत को देखकर एक कोने में दुबक गये, जैसे उनकी सूरत भी नहीं देखना चाहते।

द्वार पर पहुँचते ही भरत और शत्रुघ्न ने रथ से कूदकर अंदर प्रवेश किया। महाराज अपने कमरे में न थे। भरत ने समझा, अवश्य कैकेयी माता के प्रासाद में होंगे। वह प्रायः कैकेयी ही के प्रासाद में रहते थे। लपके हुए माता के पास गये। महाराज का वहाँ भी पता न था। कैकेयी विधवाओं के से वस्त्र पहने खड़ी थी। भरत को देखते ही वह फूली न समायी। आकर भरत को गले से लगा लिया और बोली — जीते रहो बेटा। रास्तें में कोई कष्ट तो नहीं हुआ ?

भरत ने माता की ओर आश्चर्य से देखकर कहा — जी नहीं, बड़े आराम से आया। महाराज कहाँ हैं? तनिक उन्हें प्रणाम तो कर लूँ ?

कैकेयी ने ठंडी आह खींचकर कहा — बेटा, उनकी बात क्या पूछते हो। उन्हें परलोक सिधारे तो आज एक सप्ताह हो गया। क्या तुमसे अभी तक किसी ने नहीं कहा?

भरत के सिर पर जैसे शोक का पहाड़ टूट पड़ा। सिर में चक्कर-सा आने लगा। वह खड़े न रह सके। भूमि पर बैठकर रोने लगे। जब तनिक जी सँभला तो बोले — उन्हें क्या हुआ था

माता जी? क्या बीमारी थी? हाय! मुझ अभागे को उनके अन्तिम दर्शन भी प्राप्त न हुए।

कैकेयी ने सिर झुकाकर कहा — बीमारी तो कुछ नहीं थी बेटा। राम, लक्ष्मण और सीता के वनवास के शोक से उनकी मृत्यु हुई। राम पर तो वह जान देते थे।

भरत की रही-सही जान भी नहों में समा गयी। सिर पीटकर बोले — भाई रामचन्द्र ने ऐसा कौन-सा पाप किया था माता जी, कि उनको वनवास का दण्ड दिया गया? क्या उन्होंने किसी ब्राह्मण की हत्या की थी या किसी परस्त्री पर बुरी दृष्टि डाली थी? धर्म के अवतार रामचन्द्र को देश-निकाला क्यों हुआ ?

कैकेयी ने सारी कथा खूब विस्तार से वर्णन की और मन्थरा को खूब सराहा। जो कुछ हुआ, उसी की सहायता से हुआ। यदि उसकी सहायता न होती तो मेरे किये कुछ न हो सकता और रामचन्द्र का राजतिलक हो जाता। फिर तुम और मैं कहीं के न रहते। दासों की भांति जीवन व्यतीत करना पड़ता। इसी ने मुझे राजा के दिये हुए दो वरदानों की याद दिलायी और मैंने दोनों वरदान पूरे कराये। पहला था रामचन्द्र का वनवास‘वह पूरा हो गया। अकेले राम ही नहीं गये, लक्ष्मण और सीता भी उनके साथ

गये। दूसरा वरदान शेष है। वह कल पूरा हो जायगा। तुम्हें सिंहासन मिलेगा।

कैकेयी ने दिल में समझा था कि उसकी कार्यपटुता का वर्णन सुनकर भरत उसके बहुत कृतज्ञ होंगे, पर बात कुछ और ही हुई। भरत की त्योरियों पर बल पड़ गये और आँखें क्रोध से लाल हो गयीं। कैकेयी की ओर घृणापूर्ण नेत्रों से देखकर बोले' माता! तुमने मुझे संसार में कहीं मुँह दिखाने के योग्य न रखा। तुमने जो काम मेरी भलाई के लिए किया वह मेरे नाम पर सदा के लिए काला धब्बा लगा देगा। दुनिया यही कहेगी कि इस मामले में भरत का अवश्य षड्यंत्र होगा। अब मेरी समझ में आया कि क्यों अयोध्या के लोग मुझे देखकर मुँह फेर लेते थे, यहाँ तक कि द्वारपालों ने भी मेरी ओर ध्यान देना उचित न समझा। क्या तुमने मुझे इतना नीच समझ लिया कि मैं रामचन्द्र का अधिकार छीनकर प्रसन्नता से राज करूँगा ? रघुकुल में ऐसा कभी नहीं हुआ। इस वंश का सदा से यही सिद्धान्त रहा है कि बड़ा लड़का गद्दी पर बैठे। क्या यह बात तुम्हें ज्ञात न थी ? हाय! तुमने रामचन्द्र जैसे देवतातुल्य पुरुष को वनवास दिया, जिसके जूतों का बन्धन खोलने योग्य भी मैं नहीं। माता मुझे तुम्हारा आदर करना चाहिये, किन्तु जब तुम्हारे कार्यों को देखता हूँ तो अपने आप कड़े शब्द मुँह से निकल आते हैं। तुमने इस

वंश का मटियामेट कर दिया। हरिश्चन्द्र और मान्धाता के वंश की परतिष्ठा धूल में मिला दी। तुम्हीं ने मेरे सत्यवादी पिता की जान ली। तुम हत्यारिनी हो। यह राजपाट तुम्हें शुभ हो। भरत इसकी ओर आंख उठाकर भी न देखेगा।

यह कहते हुए भरत रानी कौशल्या के पास गये और उनके चरणों पर सिर रख दिया। कौशल्या को क्या मालूम था कि उसी समय भरत कैकेयी को कितना भला-बुरा कह आये हैं। बोली — तुम आ गये, बेटा ! लो, तुम्हारी माता की आशाएँ पूर्ण हुईं। तुम उन्हें लेकर आनन्द से राज्य करो, मुझे राम के पास पहुंचा दो। मैं अब यहाँ रहकर क्या करूँगी ?

ये शब्द भरत के सीने में तीर के समान लगे। आह ! माता कौशल्या भी मेरी ओर से असन्तुष्ट हैं ! रोते हुए बोले — माताजी, मैं आपसे सच कहता हूँ कि यहाँ जो कुछ हुआ है उसका मुझे लेशमात्र भी ज्ञान न था। माता कैकेयी ने जो कुछ किया, उसका फल उनके आगे आयेगा। मैं उन्हें क्या कहूँ। किन्तु मैं इसका विश्वास दिलाता हूँ कि मैं राज्य न करूँगा। राज्य रामचन्द्र का है और वही इसके स्वामी हैं। मैं उनका सेवक हूँ। क्रियाकर्म से निवृत्त होते ही जाकर रामचन्द्र को मना लाऊँगा। मुझे आशा है कि वे मेरी विनती मान जायेंगे। मैंने पूर्व जन्म में न जाने ऐसा कौन-सा पाप किया था कि यह कलंक मेरे माथे पर

लगा। मुझसे अधिक भाग्यहीन संसार में और कौन होगा जिसके कारण पिता जी की मृत्यु हुई, रामचन्द्र वन गये और सारे देश में जग-हँसाई हुई।

देवी कौशल्या के हृदय से सारा मालिन्य दूर हो गया। उन्होंने भरत को हृदय से लगा लिया और रोने लगीं।

मन्थरा उस समय किसी काम से बाहर गयी हुई थी। उसे ज्योंही ज्ञात हुआ कि भरत आये हैं, उसने सिर से पांव तक गहने पहने, एक रेशमी साड़ी धारण की और छमछम करती कूबड़ हिलाती अपनी आदर्श सेवाओं का पुरस्कार लेने के लिए आकर भरत के सामने खड़ी हो गयी। भरत ने तो उसे देखकर मुँह फेर लिया, किन्तु शत्रुघ्न अपने क्रोध को रोक न सके। उन्होंने लपक कर मन्थरा के बाल पकड़ लिये और कई लात और घूंसे जमाये। मन्थरा हाय ! हाय ! करने लगी और महारानी कैकेयी की दुहाई देने लगी। अन्त में भरत ने उसे शत्रुघ्न के हाथ से छुड़ाया और वहाँ से भगा दिया।

जब भरत महाराजा दशरथ के क्रियाकर्म से निवृत्त हुए तो गुरु वशिष्ठ, नगर के धनी-मानी, दरबार के सभासदों ने उन्हें गद्दी पर बिठाना चाहा, भरत किसी तरह तैयार न हुए। बोले'आप लोग ऐसा काम करने के लिए मुझे विवश न करें जो मेरा लोक और

परलोक दोनों मिट्टी में मिला देगा। भाई रामचन्द्र के रहते यह असम्भव है कि मैं राज्य का विचार भी मन में लाऊँ। मैं उन्हें जाकर मना लाऊँगा और यदि वह न आयेंगे तो मैं भी घर से निकल जाऊँगा। यही मेरा अन्तिम निर्णय है।

लोगों के दिल भरत की ओर से साफ हो गये। सब उनकी नेकनीयती की प्रशंसा करने लगे। यह बड़े बाप का सपूत बेटा है। भाई हो तो ऐसा हो। क्यों न हो, ऐसे नेक और धर्मात्मा लोग न होते तो संसार कैसे स्थिर रहता !

दूसरे दिन भरत अपनी तीनों माताओं को लेकर राम को मनाने चले। गुरु वशिष्ठ और नगर के विशिष्ठ जन उनके साथ-साथ चले।

चित्रकूट

राम, लक्ष्मण और सीता गंगा नदी पार करके चले जा रहे थे। अनजान रास्ता, दोनों ओर जंगल, बस्ती का कहीं पता नहीं। इस प्रकार वे प्रयाग पहुँचे। प्रयाग में भरद्वाज मुनि का आश्रम था। तीनों आदमियों ने त्रिवेणी स्नान करके भरद्वाज के आश्रम में

विश्राम किया और रात को उनके उपदेश सुनकर प्रातः उनके परामर्श से चित्रकूट के लिए प्रस्थान किया। कुछ दूर चलने के बाद यमुना नदी मिली। उस समय वह भाग बहुत आबाद न था। यमुना को पार करने के लिए कोई नाव न मिल सकी। अब क्या हो? अन्त में लक्ष्मण को एक उपाय सूझा। उन्होंने इधर-उधर से लकड़ी की टहनियाँ जमा कीं और उन्हें छाल के रेशों से बांधकर एक तख्ता-सा बना लिया। इस तख्ते पर हरी-हरी पत्तियां बिछा दीं और उसे पानी में डाल दिया। इस पर तीनों आदमी बैठ गये। लक्ष्मण ने इस तख्ते को खेकर दम के दम में यमुना नदी पार कर ली।

नदी के उस पार पहाड़ी जमीन थी। पहाड़ियां हरी-हरी झाड़ियों से लहरा रही थीं। पेड़ों पर मोर, तोते इत्यादि पक्षी चहक रहे थे। हिरनों के झुण्ड घाटियों में चरते दिखायी देते थे। हवा इतनी स्वच्छ और स्वास्थ्यकारक थी कि आत्मा को ताजगी मिल रही थी। इस हृदयग्राही दृश्य का आनन्द उठाते तीनों आदमी चित्रकूट जा पहुंचे। वाल्मीकि ऋषि का आश्रम वहीं एक पहाड़ी पर था। तीनों आदमियों ने पहले उसका दर्शन उचित समझकर उनके आश्रम की ओर प्रस्थान किया। वाल्मीकि ने उन्हें देखा तो बड़े तपाक से गले लगा लिया और रास्ते का कुशल-समाचार पूछा। उन्होंने योग के बल से उनके चित्रकूट आने का कारण

जान लिया था। बतलाने की आवश्यकता न पड़ी। बोले‘आप लोग खूब आये। आपको देखकर बड़ी प्रसन्नता हुई। आप लोगों पर जो कुछ बीता है, वह मुझे मालूम है। जीवन सुख और दुःख के मेल का ही नाम है। मनुष्य को चाहिये कि धैर्य से काम ले।

राम ने कहा‘आशीर्वाद दीजिये कि हमारे वनवास के दिन कुशल से बीतें।

वाल्मीकि ने उत्तर दिया‘राजकुमार, मेरे एक-एक रोम से तुम्हारे लिए आशीर्वाद निकल रहा है। तुमने जिस त्याग से काम लिया है, उसका उदाहरण इतिहास में कहीं नहीं मिलता। धन्य है वह माता, जिसने तुम जैसा सपूत पैदा किया। चित्रकूट तुम्हारे लिये बहुत उत्तम स्थान है। हमारी कुटी में पर्याप्त स्थान हैं। हम सब आराम से रहेंगे।

रामचन्द्र को भी चित्रकूट बहुत पसन्द आया। वहीं रहने का निश्चय किया। किन्तु यह उचित न समझा कि ऋषि वाल्मीकि के छोटे-से आश्रम में रहें। इनके रहने से ऋषि को अवश्य कष्ट होगा, चाहे वह संकोच के कारण मुँह से कुछ न कहें। अलग एक कुटी बनाने का विचार हुआ। लक्ष्मण को आज्ञा मिलने की देर थी। जंगल से लकड़ी काट लाये और शाम तक एक सुन्दर आरामदेह कुटी तैयार कर दी। इसमें खिड़कियाँ भी थीं, ताक भी

थे, सोने के अलग-अलग कमरे भी थे। राम ने यह कुटी देखी तो बहुत प्रसन्न हुए। गृहप्रवेश की रीति के अनुसार देवताओं की पूजा की और कुटी में रहने लगे।

भरत और रामचन्द्र

इधर भरत अयोध्यावासियों के साथ राम को मनाने के लिए जा रहे थे। जब वह गंगा नदी के किनारे पहुंचे, तो भील सरदार गुह को उनकी सेना देखकर सन्देह हुआ कि शायद यह रामचन्द्र पर आक्रमण करने जा रहे हैं। तुरन्त अपने आदमियों को एकत्रित करने लगा। किन्तु बाद को जब भरत का विचार ज्ञात हुआ तो उनके सामने आया और अपने घर चलने का निमन्त्रण दिया। भरत ने कहा'जब रामचन्द्र ने बस्ती के बाहर पेड़ के नीचे रात बितायी, तो मैं बस्ती में कैसे जाऊँ? बताओ, सीता और रामचन्द्र कहाँ सोये थे ? तब गुह ने उन्हें वह जगह दिखायी, तो भरत अपने आप रो पड़े'हाय, वह जिन्हें महलों में नींद नहीं आती थी, आज भूमि पर पेड़ के नीचे सो रहे हैं! यह दिनों का फेर है। मुझ अभागे के कारण इन्हें यह सारे कष्ट हो रहे हैं। इन घास के कड़े टुकड़ों से कोमलांगी सीता का शरीर छिल गया होगा।

रामचन्द्र को मच्छरों ने रात भर कष्ट दिया होगा। नींद न आयी होगी। लक्ष्मण ने जंगली जानवरों के भय से सारी रात पहरा देकर काटी होगी और मैं अभी तक राजसी पोशाक पहने हूँ। मुझे हजार बार धिक्कार है !

यह कहकर भरत ने उसी समय राजसी पोशाक उतार फेंकी और साधुओं कासा वेश धारण किया। फिर उसी पेड़ के नीचे, उसी घास-फूस के बिछावन पर रातभर पड़ रहे। उस दिन से चौदह साल तक भरत ने साधु-जीवन व्यतीत किया।

दूसरे दिन भरत भरद्वाज मुनि के आश्रम में पहुंचे। वहाँ पता लगाने पर ज्ञात हुआ कि रामचन्द्र चित्रकूट की ओर गये हैं। रातभर वहाँ ठहरकर भरत सबेरे चित्रकूट रवाना हो गये।

सन्ध्या का समय था। रामचन्द्र और सीता एक चट्टान पर बैठे हुए सूर्यास्त का दृश्य देख रहे थे और लक्ष्मण तनिक दूर धनुष और बाण लिये खड़े थे।

सीता ने पेड़ों की ओर देखकर कहा‘ऐसा प्रतीत होता है, इन पेड़ों ने सुनहरी चादर ओढ़ ली है।

राम‘पहाड़ियों की ऊदी रंग की ओस से लदी हुई चादर कितनी सुन्दर मालूम होती है। प्रकृति सोने का सामान कर रही है।

सीता‘नीचे की घाटियों में काली चादर से मुँह ढ़ँक लिया।

राम‘और पवन को देखो, जैसे कोई नागिन लहराती हुई चली जाती हो।

सीता‘केतकी के फूलों से कैसी सुगन्ध आ रही है।

लक्ष्मण खड़े-खड़े एकाएक चौंककर बोले — भैया, वह सामने धूल कैसी उड़ रही है? सारा आसमान धूल से भर गया।

राम — कोई चरवाहा भेड़ों का गल्ला लिए चला जाता होगा।

लक्ष्मण — नहीं भाई साहब, कोई सेना है। घोड़े साफ दिखायी दे रहे हैं। वह लो, रथ भी दिखायी देने लगे।

रामचन्द्र — शायद कोई राजकुमार आखेट के लिए निकला हो।

लक्ष्मण — सबके सब इधर ही चले आते हैं।

यह कहकर लक्ष्मण एक ऊँचे पेड़ पर चढ़ गये, और भरत की सेना को ध्यान से देखने लगे। रामचन्द्र ने पूछा — कुछ साफ दिखायी देता है?

लक्ष्मण — जी हाँ, सब साफ दिखायी दे रहा है। आप धनुष और बाण लेकर तैयार हो जायँ। मुझे ऐसा मालूम हो रहा है कि भरत सेना लेकर हमारे ऊपर आक्रमण करने चले आ रहे हैं। इन डालों के बीच से भरत के रथ की झंडी साफ दिखायी दे रही है।

भली प्रकार पहचानता हूँ, भरत ही का रथ है। वही सुरंग घोड़े हैं। उन्हें अयोध्या का राज्य पाकर अभी सन्तोष नहीं हुआ। आज सारे झगड़े का अन्त ही कर दूँगा।

रामचन्द्र — नहीं लक्ष्मण, भरत पर सन्देह न करो। भरत इतना स्वार्थी, इतना संकोचहीन नहीं है। मुझे विश्वास है कि वह हमें वापस ले चलने आ रहा है। भरत ने हमारे साथ कभी बुराई नहीं की।

लक्ष्मण — उन्हें बुराई करने का अवसर ही कब मिला, जो उन्होंने छोड़ दिया? आप अपने हृदय की तरह औरों का हृदय भी निर्मल समझते हैं। किन्तु मैं आपसे कहे देता हूँ कि भरत विश्वासघात करेंगे। वह यहाँ इसी उद्देश्य से आ रहे हैं कि हम लोगों को मार कर अपना रास्ता सदैव के लिए साफ कर लें।

रामचन्द्र — मुझे जीते जी भरत की ओर से ऐसा विश्वास नहीं हो सकता। यदि तुम्हें भरत का राजगद्दी पर बैठना बुरा लगता हो, तो मैं उनसे कहकर तुम्हें राज्य दिला सकता हूँ। मुझे विश्वास है कि भरत मेरा कहना न टालेंगे।

लक्ष्मण ने लज्जित होकर सिर झुका लिया। रामचन्द्र का व्यंग्य उन्हें बुरा मालूम हुआ। पर मुँह से कुछ बोले नहीं। उधर भरत को ज्योंही ऋषियों की कुटियाँ दिखायी देने लगीं, वह रथ से उतर

पड़े और नंगे पांव रामचन्द्र से मिलने चले। शत्रुघ्न और सुमन्त्र भी उनके साथ थे। कई कुटियों के बाद रामचन्द्र की कुटी दिखायी दी। रामचन्द्र कुटी के सामने एक पत्थर की चट्टान पर बैठे थे। उन्हें देखते ही भरत भैया! भैया! कहते हुए बच्चों की तरह रोते दौड़े और रामचन्द्र के पैरों पर गिर पड़े। रामचन्द्र ने भरत को उठा कर छाती से लगा लिया। शत्रुघ्न ने भी आगे बढ़कर रामचन्द्र के चरणों पर सिर झुकाया। चारों भाई गले मिले। इतने में कौशल्या, सुमित्रा, कैकेयी भी पहुँच गयीं। रामचन्द्र ने सब को प्रणाम किया। सीता जी ने भी सासों के पैरों को आंचल से छुआ। सासों ने उन्हें गले से लगाया। किन्तु किसी के मुँह से कोई शब्द न निकलता था। सबके गले भरे हुए थे और आंखों में आँसू भरे हुए थे। वनवासियों का यह साधुओं कासा वेश देखकर सबका हृदय विदीर्ण हुआ जाता था। कैसी विवशता है ! कौशल्या सीता को देखकर अपने आप रो पड़ी। वह बहू, जिसे वह पान की तरह फेरा करती थीं, भिखारिनी बनी हुई खड़ी है। समझाने लगीं — बेटा, अब भी मेरा कहना मानो। यहाँ तुम्हें बड़े-बड़े कष्ट होंगे। इतने ही दिनों में सूरत बदल गयी है। बिल्कुल पहचानी नहीं जाती। मेरे साथ लौट चलो।

सीता ने कहा — अम्मा जी, जब मेरे स्वामी वन-वन फिरते रहें तो मुझे अयोध्या ही नहीं, स्वर्ग में भी सुख नहीं मिलेगा। स्त्री का

धर्म पुरुष के साथ रहकर उसके दुःख-सुख में भाग लेना है। पुरुष को दुःख में छोड़कर जो स्त्री सुख की इच्छा करती है, वह अपने कर्तव्य से मुँह मोड़ती है। पानी के बिना नदी की जो दशा होती है, वही दशा पति के बिना स्त्री की होती है।

कौशल्या को सीता की बातों से प्रसन्नता भी हुई और दुःख भी हुआ। दुःख तो यह हुआ कि यह सुख और ऐश्वर्य में पली हुई लड़की यों विपत्ति में जीवन के दिन काट रही है। प्रसन्नता यह हुई कि उसके विचार इतने ऊँचे और पवित्र हैं। बोलीं — धन्य हो बेटी, इसी को स्त्री का पतिव्रत कहते हैं। यही स्त्री का धर्म है। ईश्वर तुम्हें सुखी रखे, और दूसरी स्त्रियों को भी तुम्हारे मार्ग पर चलने की प्रेरणा दे। ऐसी देवियां मनुष्य के लिये गौरव का विषय होती हैं। उन्हीं के नाम पर लोग आदर से सिर झुकाते हैं। उन्हीं के यश घरघर गाये जाते हैं।

चारों भाई जब गले मिल चुके, तो रामचन्द्र ने भरत से पूछ — कहो भैया, तुम काश्मीर से कब आये? पिताजी तो कुशल से हैं? तुम उनको छोड़कर व्यर्थ चले आये, वह अकेले बहुत घबरा रहे होंगे ?

भरत की आंखों से टप-टप आँसू गिरने लगे। भर्राई हुई आवाज में बोले — भाई साहब, पिताजी तो अब इस संसार में नहीं हैं।

जिस दिन सुमन्त्र रथ लेकर वापस हुए, उसी रात को वह परलोक सिधारे। मरते समय आप ही का नाम उनकी जिह्वा पर था।

यह दुःखपूर्ण समाचार सुनते ही रामचन्द्र पछाड़ खाकर गिर पड़े। जब तनिक चेतना आयी तो रोने लगे। रोते-रोते हिचकियाँ बँध गयीं। हाय! पिता जी का अन्तिम दर्शन भी प्राप्त न हुआ! अब रामचन्द्र को ज्ञात हुआ कि महाराज दशरथ को उनसे कितना प्रेम था। उनके वियोग में प्राण त्याग दिये। बोले — यह मेरा दुर्भाग्य है कि अन्तिम समय उनके दर्शन न कर सका। जीवन भर इसका खेद रहेगा। अब हम उनकी सबसे बड़ी यही सेवा कर सकते हैं कि अपने कामों से उनकी आत्मा को प्रसन्न करें। महाराज अपनी परजा को कितना प्यार करते थे! तुम भी परजा का पालन करते रहना। सेना के प्रसन्न रहने ही से राज्य का अस्तित्व बना रहता है। तुम भी सैनिकों को प्रसन्न रखना। उनका वेतन ठीक समय पर देते रहना। न्याय के विषय में किसी के साथ लेशमात्र भी पक्षपात न करना हर एक काम में मन्त्रियों से अवश्य परामर्श लेना और उनके परामर्श पर आचरण करना। निर्धनों को धनियों के अत्याचार से बचाना। किसानों के साथ कभी सख्ती न करना। खेती सिंचाई के लिए कुएं, नहरें, ताल बनवाना। लड़कों की शिक्षा की ओर से असावधान न होना।

और राज्य के कर्मचारियों की सख्ती से निगरानी करते रहना अन्यथा ये लोग परजा को नष्ट कर देंगे।

भरत ने कहा — भाई साहब! मैं यह बातें क्या जानूँ। मैं तो आपकी सेवा में इसीलिए उपस्थित हुआ हूँ कि आपको अयोध्या ले चलूँ। अब तो हमारे पिता भी आप ही हैं। आप हमें जो आज्ञा देंगे, हम उसे बजा लायेंगे। हमारी आपसे यही विनती है, इसे स्वीकार कीजिये। जब से आप आये हैं, अयोध्या में वह श्री ही न रही। चारों ओर मृत्यु की-सी नीरवता है। लोग आपको याद करके रोया करते हैं। अब तक मैं सबको यह आश्वासन देता रहा हूँ कि रामचन्द्र शीघर वापस आयेंगे। यदि आप न लौटेंगे, तो राज्य में कुहराम मच जायगा और सारा दोष और कलंक मेरे सिर पर रखा जायगा।

रामचन्द्र ने उत्तर दिया — भैया, जिन वचनों को पूरा करने के लिए पिताजी ने अपना प्राण तक दे दिया, उसे पूरा करना मेरा धर्म है। उन्हें अपना वचन अपने प्राण से भी अधिक प्रिय था। इस आज्ञा का पालन मैं न करूँ, तो संसार में कौन-सा मुँह दिखाऊँगा। तुम्हें भी उनकी आज्ञा मानकर राज्य करना चाहिये। मैं चौदह वर्ष व्यतीत होने के बाद ही अयोध्या में पैर रखूंगा।

भरत ने बहुत प्रार्थना-विनती की। गुरु वशिष्ठ और प्रतिष्ठित व्यक्तियों ने रामचन्द्र को खूब समझाया, किन्तु वह अयोध्या चलने पर किसी प्रकार सहमत न हुए। तब भरत ने रोकर कहा'भैया, यदि आपका यही निर्णय है, तो विवश होकर हमको भी मानना ही पड़ेगा। किन्तु आप मुझे अपनी खड़ाऊँ दे दीजिये। आज से यह खड़ाऊँ ही राजसिंहासन पर विराजेगी। हम सब आपके चाकर होंगे। जब तक आप लौटकर न आयेंगे, अभागा भरत भी आप ही के समान साधुओं कासा जीवन व्यतीत करेगा। किन्तु चौदह वर्ष बीत जाने पर भी आप न आये, तो मैं आग में जल मरुँगा।

यह कहकर भरत ने रामचन्द्र के खड़ाऊँ को सिर पर रखा और बिदा हुए। रामचन्द्र ने कौशल्या और सुमित्रा के पैरों पर सिर रखा और उन्हें बहुत ढाढ़स देकर बिदा किया। कैकेयी लज्जा से सिर झुकाये खड़ी थी। रामचन्द्र जब उसके चरणों पर झुके, तो वह फूट-फूटकर रोने लगी। रामचन्द्र की सज्जनता और निर्मलहृदयता ने सिद्ध कर दिया कि राम पर उसका सन्देह अनुचित था।

जब सब लोग नन्दिग्राम में पहुंचे, तो भरत ने मंत्रियों से कहा'आप लोग अयोध्या जायें, मैं चौदह वर्ष तक इसी प्रकार इस गाँव में रहूँगा। राजा रामचन्द्र के सिंहासन पर बैठकर अपना परलोक न

बिगाडूँगा। जब आपको मुझसे किसी सम्बन्ध में परामर्श करने की आवश्यकता हो मेरे पास चले आइयेगा।

भरत की यह सज्जनता और उदारता देखकर लोग आश्चर्य में आ गये। ऐसा कौन होगा, जो मिलते हुए राज्य को यों ठुकराकर अलग हो जाय! लोगों ने बहुत चाहा कि भरत अयोध्या चलकर राज करें, किन्तु भरत ने वहाँ जाने से निश्चित असहमति प्रकट कर दी। एक कवि ने ठीक कहा है कि भरत-जैसा सज्जन पुत्र उत्पन्न करके कैकेयी ने अपने सारे दोषों पर धूल डाल दी।

आखिर सब रानियाँ शत्रुघ्न और अयोध्या के निवासी, भरत को वहीं छोड़कर अयोध्या चले आये। शत्रुघ्न मन्त्रियों की सहायता से राजकार्य संभालते थे और भरत नन्दिग्राम में बैठे हुए उनकी निगरानी करते रहते थे। इस प्रकार चौदह वर्ष बीत गये।

दंडक वन

भरत के चले आने के बाद रामचन्द्र ने भी चित्रकूट से चले जाने का निश्चय कर लिया! उन्हें विचार हुआ कि अयोध्या के निवासी वहाँ बराबर आते-जाते रहेंगे और उनके आने-जाने से यहाँ के

ऋषियों को कष्ट होगा। तीनों आदमी घूमते हुए अत्रि मुनि के पास पहुंचे। अत्रि ईश्वरप्राप्त एक वृद्ध थे। उनकी पत्नी अनुसूया भी बड़ी बुद्धिमती स्त्री थीं। उन्होंने सीताजी को स्त्रियों के कर्तव्य समझाये और बड़ा सत्कार किया। तीनों आदमी यहाँ कई महीने रहकर दंडकवन की ओर चले। इस वन में अच्छे-अच्छे ऋषि रहते थे। रामचन्द्र उनके दर्शन करना चाहते थे।

दंडकवन में विराध नामक एक बड़ा अत्याचारी राजा था। उसके अत्याचार से सारा नगर उजाड़ हो गया था। उसकी सूरत बहुत डरावनी थी और डील पहाड़ का-सा था। वह रात-दिन मदिरा पीकर बेहोश पड़ा रहता था। युद्ध की कला में वह इतना दक्ष था कि साधारण अस्त्रों से उसे मारना असम्भव था। राम, लक्ष्मण और सीता इस वन में थोड़ी ही दूर गये थे कि विराध की दृष्टि उन पर पड़ी। उसे सन्देह हुआ कि यह लोग अवश्य किसी स्त्री को भगाकर लाये हैं अन्यथा दो पुरुषों के बीच में एक स्त्री क्यों होती। फिर यह दोनों आदमी साधुओं के वेश में होकर भी हाथ में धनुष और बाण लिये हुए हैं। निकट आकर बोला — तुम दोनों आदमी मुझे दुराचारी प्रतीत होते हो। तुमने यात्रियों को लूटने के लिए ही साधुओं का वेश धारण किया है। अब कुशल इसी में है कि तुम दोनों इस स्त्री को मुझे दे दो और यहाँ से भाग जाओ, अन्यथा मैं तुम्हें मार डालूँगा।

रामचन्द्र ने कहा — हम दोनों कोशल के महाराज दशरथ के पुत्र हैं और यह हमारी पत्नी है। तुमने यदि फिर इस प्रकार धृष्टता से बात की, तो मैं तुम्हें जीवित न छोड़ूँगा।

विराध ने हंसकर कहा — तुम जैसे दो क्या सौ-पचास भी मेरे सामने आ जायँ, तो मार डालूँ। संभल जाओ, अब मैं वार करता हूँ।

रामचन्द्र ने कई बाण चलाये; पर विराध के शरीर पर उसका कोई प्रभाव न हुआ। तब तो रामचन्द्र बहुत घबराये। शेर भी उनका बाण खाकर गिर पड़ते थे। किन्तु इस राक्षस पर उनका तनिक भी प्रभाव न हुआ। यह घटना उनकी समझ में न आयी तब दोनों भाइयों ने तलवार निकाली और विराध पर टूट पड़े। किन्तु तलवार के घावों का भी उस पर कुछ प्रभाव न हुआ। उसने ऐसी तपस्या की थी कि उसका शरीर लोहे के समान कड़ा और ठोस हो गया था। कुछ देर तक वह चुपचाप खड़ा तलवार के घाव खाता रहा। तब एकाएक जोर से गरजा और दोनों भाइयों को कंधे पर लेकर भागा। सीताजी रोने लगीं। किन्तु राम और लक्ष्मण उसके कन्धों पर बैठकर भी तलवार चलाते रहे। यहाँ तक कि विराध की दोनों बाहें कटकर भूमि पर गिर पड़ीं। तब दोनों भाई भूमि पर कूद पड़े। और विराध भी थोड़ी देर में तड़प-तड़प कर मर गया।

विराध का वध करके तीनों आदमी आगे बढ़े। उस समय में ऋषिगण संसार से मुँह मोड़कर वनों में तपस्या करते थे। वन के फल और कन्दमूल उनका भोजन और पेड़ों की छाल पोशाक थी। किसी झोंपड़ी में, या किसी पेड़ के नीचे वह एक मृगछाला बिछाकर पड़े रहते थे। धन और वैभव को वह लोग तिनके के समान तुच्छ समझते थे। सन्तोष और सरलता ही उनका सबसे बड़ा धन था। वह बड़े-बड़े राजाओं की भी चिन्ता न करते थे। किसी के सामने हाथ न फैलाते थे। शारीरिक आकांक्षाओं के चक्कर में न पड़कर वे लोग अपना मन और मस्तिष्क बौद्धिक और धार्मिक बातों के सोचने में लगाते थे। उन वनों में बसने वाले और जंगली फल खाने वाले पुरुषों ने जो ग्रन्थ लिखे, उन्हें पढ़कर आज भी बड़े-बड़े विद्वानों की आँखें खुल जाती हैं।
दंडकवन में कितने ही ऋषि रहते थे। तीनों आदमी एक-एक दो-दो महीने हर एक ऋषि की शरण में रहते और उनसे ज्ञान की बातें सीखते थे। इस प्रकार दंडकवन में घूमते हुए उन्हें कई वर्ष बीत गये। आखिर वे लोग अगस्त्य मुनि के आश्रम में पहुंचे। यह महात्मा और सब ऋषियों से बड़े समझे जाते थे। वह केवल ऋषि ही न थे युद्ध की कला में भी दक्ष थे। कई बड़े-बड़े राक्षसों का वध कर चुके थे। रामचन्द्र को देखकर बहुत प्रसन्न हुए और कई महीने तक अपने यहाँ अतिथि रखा। जब रामचन्द्र

यहाँ से चलने लगे तो अगस्त्य ऋषि ने उन्हें एक ऐसा अलौकिक तरकश दिया, जिसके तीर कभी समाप्त ही न होते थे।

रामचन्द्र ने पूछा — महाराज, आप तो इस वन से भली प्रकार परिचित होंगे। हमें कोई ऐसा स्थान बताइये, जहाँ हम लोग आराम से रहकर वनवास के शेष दिन पूरे कर लें।

अगस्त्य ने पंचवटी की बड़ी प्रशंसा की। यह स्थान नर्मदा नदी के किनारे स्थित था। यहाँ की जलवायु ऐसी अच्छी थी कि न जाड़े में कड़ा जाड़ा पड़ता था, न गरमी में कड़ी गरमी। पहाड़ियाँ बारहों मास हरियाली से लहराती रहती थीं। तीनों आदमियों ने इस स्थान पर जाकर रहने का निश्चय किया।

पंचवटी

कई दिन के बाद तीनों आदमी पंचवटी जा पहुँचे। प्रशंसा सुनी थी, उससे कहीं बढ़कर पाया। नर्मदा के दोनों ओर ऊंची-ऊंची पहाड़ियां फूलों से लदी हुई खड़ी थीं। नदी के निर्मल जल में हंस और बगुले तैरा करते थे। किनारे हिरनों का समूह पानी पीने आता था और खूब कुलेलें करता था। जंगल में मोर नाचा करते

थे। वायु इतनी स्वच्छ और स्फूर्तिदायक थी कि रोगी भी स्वस्थ हो जाता था। यह स्थान तीनों आदमियों को इतना पसन्द आया कि उन्होंने एक झोंपड़ा बनाया और सुख से रहने लगे। दिन को पहाड़ियों की सैर करते, प्रकृति के हृदयग्राहक दृश्यों का आनन्द उठाते, चिड़ियों के गाने सुनते, और जंगली फल खाकर कुटी में सो रहते। इस प्रकार कई महीने बीत गये।

पंचवटी से थोड़ी ही दूर पर राक्षसों की एक बस्ती थी। उनके दो सरदार थे। एक का नाम था खर और दूसरे का दूषण। लंका के राजा रावण की एक बहन शूर्पणखा भी वहीं रहती थी। यह लोग लूट-मारकर जीवन व्यतीत करते थे।

एक दिन रामचन्द्र और सीता पेड़ के नीचे बैठे हुए बातें कर रहे थे कि उधर से शूर्पणखा निकली। इन दोनों आदमियों को देखकर उसे आश्चर्य हुआ कि यह कौन लोग यहाँ आ गये! ऐसे सुन्दर मनुष्य उसने कभी न देखे थे। वह थी तो काली-कलूटी, अत्यन्त कुरूप, किन्तु अपने को परी समझती थी। इसलिए अब तक विवाह नहीं किया था, क्योंकि राक्षसों से विवाह करना उसे रुचिकर न था। रामचन्द्र को देखकर फूली न समायी। बहुत दिनों के बाद उसे अपने जोड़ का एक युवक दिखायी दिया। निकट आकर बोली‘ तुम लोग किस देश के आदमी हो? तुम जैसे आदमी तो मैंने कभी नहीं देखे।

रामचन्द्र ने कहा — हम लोग अयोध्या के रहने वाले हैं। हमारे पिताजी अयोध्या के राजा थे। आजकल हमारे भाई राज्य करते हैं।

शूर्पणखा — बस, तब तो सारी बात बन गयी। मैं भी राजा की लड़की हूँ। मेरा भाई रावण लंका में राज्य करता है। बस हमारा-तुम्हारा अच्छा जोड़ है। मैं तुम्हारे ही जैसा पति ढूँढ़ रही थी, तुम अच्छे मिले, अब मुझसे विवाह कर लो। तुम्हारा सौभाग्य है कि मुझ-जैसी सुन्दरी तुमसे विवाह करना चाहती है।

रामचन्द्र ने व्यंग्य से जवाब दिया — अवश्य मेरा सौभाग्य है। तुम्हारी जैसी परी तो इन्द्रलोक में भी न होगी। मेरा जी तो तुमसे विवाह करने के लिए बहुत व्याकुल है। किन्तु कठिनाई यह है कि मेरा विवाह हो चुका है और यह स्त्री मेरी पत्नी है। यह तुमसे झगड़ा करेगी। हाँ, मेरा छोटा भाई जो वह सामने बैठा हुआ है, यहाँ अकेला है। उसकी पत्नी साथ में नहीं है। वह चाहे तो तुमसे विवाह कर सकता है। तुम उसके पास जाओ तुम्हारा सौन्दर्य देखते ही वह मोहित हो जायगा। वही तुम्हारे योग्य भी है।

शूर्पणखा — इस स्त्री की तुम अधिक चिन्ता न करो। मैं इसे अभी मार डालूँगी। यह तुम्हारे योग्य नहीं है। मुझ-जैसी स्त्री

फिर न पाओगे। मेरी और तुम्हारी जोड़ी ईश्वर ने अपने हाथ से बनायी है।

रामचन्द्र — नहीं, तुम भूल करती हो। मैं तो तुम्हारे योग्य हूँ ही नहीं। भला कहाँ मैं और कहाँ तुम। तुम्हारे योग्य तो मेरा भाई है, जो वय में मुझसे छोटा है और मुझसे अधिक वीर है।

शूर्पणखा लक्ष्मण के पास गयी और बोली — मैं एक आवश्यकतावश इधर आयी थी। तुम्हारे भाई रामचन्द्र की दृष्टि मुझ पर पड़ गयी, तो वह मुझ पर आसक्त हो गये और मुझसे विवाह करने की इच्छा की। पर मैंने ऐसे पुरुष से विवाह करना पसन्द न किया, जिसकी पत्नी मौजूद है। मेरे योग्य तो तुम हो, तनिक मेरी ओर देखो, ऐसा कोयले कासा चमकता हुआ रंग तुमने और कहीं देखा है? मेरी नाक बिल्कुल चिलम की-सी है और होंठ कितनी सुन्दरता से नीचे लटके हुए हैं। तुम्हारा सौभाग्य है कि मेरा दिल तुम्हारे ऊपर आ गया। तुम मुझसे विवाह कर लो।

लक्ष्मण ने मुस्कराकर कहा — हाँ, इसमें तो सन्देह नहीं कि तुम्हारा सौन्दर्य अनुपम है और मैं हूँ भी भाग्यवान कि मुझसे तुम विवाह करने को प्रस्तुत हो। पर मैं रामचन्द्र का छोटा भाई और चाकर हूँ। तुम मेरी पत्नी हो जाओगी, तो तुम्हें सीता जी की सेवा

करनी पड़ेगी। तुम रानी बनने योग्य हो, जाकर भाई साहब ही से कहो। वही तुमसे विवाह करेंगे।

शूर्पणखा फिर राम के पास गयी, किन्तु वहाँ फिर वही उत्तर मिला कि तुम्हारे योग्य लक्ष्मण हैं, उन्हीं के पास जाओ। इस प्रकार उसे दोनों बातों में टालते रहे। जब उसे विश्वास हो गया कि यहाँ मेरी कामना पूरी न होगी तो वह मुँह बना-बनाकर गालियाँ बकने लगी और सीताजी से लड़ाई करने पर सन्नद्ध हो गयी। उसकी यह दुष्टता देखकर लक्ष्मण को क्रोध आ गया, उन्होंने शूर्पणखा की नाक काट ली और कानों का भी सफाया कर दिया।

अब क्या था शूर्पणखा ने वह हाय-वाय मचायी कि दुनिया सिर पर उठा ली। तीनों आदमियों को गालियाँ देती, रोती-पीटती वह खर और दूषण के पास पहुंची और अपने अपमान और अप्रतिष्ठा की सारी कथा कह गयी। 'भैया, दोनों भाई बड़े दुष्ट हैं। मुझे देखते ही दोनों मुझ पर बुरी दृष्टि डालने लगे और मुझसे विवाह करने के लिए जोर देने लगे। कभी बड़ा भाई अपनी ओर खींचता था, कभी छोटा भाई। जब मैं इस पर सहमत न हुई तो दोनों ने मेरे नाक-कान काट लिये। तुम्हारे रहते मेरी यह दुर्गति हुई। अब मैं किसके पास शिकायत लेकर जाऊँ? जब तक उन दोनों के सिर मेरे सामने न आ जायेंगे, मेरे लिए अन्न-जल निषिद्ध है।'

खर और दूषण यह हाल सुनकर क्रोध से पागल हो गये। उसी समय अपनी सेना को तैयार हो जाने का आदेश दिया। दमके-दम में चौदह हजार आदमी राम और लक्ष्मण को इस खलता का दण्ड देने चले। आगे-ओगे नकटी शूर्पणखा रोती चली जा रही थी।

रामचन्द्र ने जब राक्षसों की यह सेना आते देखी, तो लक्ष्मण को सीताजी की रक्षा के लिए छोड़कर आप उनका सामना करने के लिए तैयार हो गये। राक्षसों ने आते ही तीरों की बौछार करनी प्रारंभ कर दी। किन्तु रामचन्द्र बाणों के सम्मुख उनकी क्या चलती। सबके-सब एक साथ तो तीर छोड़ ही न सकते थे। पहले पंक्ति के लोग तीन छोड़ते, रामचन्द्र एक ही तीर से उनके सब तीरों को काट देते थे। जिस प्रकार राइफल के सामने तोड़ेदार बन्दूक बेकाम है, उसी प्रकार रामचन्द्र के अग्निवाणों के सम्मुख राक्षसों के बाण बेकाम हो गये।

एक-एक बार में सैकड़ों का सफाया होने लगा। यह देखकर राक्षसों का साहस टूट गया। सारी सेना तितर-बितर हो गयी। संध्या होते-होते वहाँ एक राक्षस भी न रहा। केवल मृत शरीर रणक्षेत्र में पड़े थे।

खर और दूषण ने जब देखा कि चौदह हजार राक्षसों की सेना बात-की-बात में नष्ट हो गयी, तो उन्हें विश्वास हो गया कि राम और लक्ष्मण बड़े वीर हैं। उन पर विजय पाना सरल नहीं। अपने पूरे बल से उन पर आक्रमण करना पड़ेगा। यह विचार भी था कि यदि हम लोग इन दोनों आदमियों को न जीत सके तो हमारी कितनी बदनामी होगी। बड़े जोर-शोर से तैयारियाँ करने लगे। रात भर में कई हजार सैनिकों की एक चुनी हुई सेना तैयार हो गयी। उनके पास मूसल, भाले, धनुषबाण, गदा, फरसे, तलवार, डंडे सभी प्रकार के अस्त्र थे। किन्तु सब पुराने ढ़ंग के। युद्ध की कला से भी वह अवगत न थे। बस, एक साथ दौड़ पड़ना जानते थे। सैनिकों का क्रम किस प्रकार होना चाहिए, इसका उन्हें लेशमात्र भी ज्ञान न था। सबसे बड़ी खराबी थी कि वे सब शराबी थे। शराब पी-पीकर बहकते थे। किन्तु सच्ची वीरता उनमें नाम को भी न थी।

सबेरे रामचन्द्र जी उठे तो राक्षसों की सेना आते देखी। आज का युद्ध कल से अधिक भीषण होगा, यह उन्हें ज्ञात था। सीता जी को उन्होंने एक गुफ़ा में छिपा दिया और दोनों आदमी पहाड़ के ऊपर चढ़कर राक्षसों पर तीर चलाने लगे। उनके तीर ऊपर से बिजली की तरह गिरते थे और एक साथ सैकड़ों को धराशायी कर देते थे। खर और दूषण अपनी सेना को ललकारते थे, बढ़ावा

देते थे, किन्तु उन अचूक तीरों के सामने सेना के कलेजे दहल उठते थे। राम और लक्ष्मण पर उनके बाणों का लेशमात्र भी प्रभाव न होता था, क्योंकि दोनों भाई पहाड़ के ऊपर थे। वह इतने वेग से तीर चलाते थे कि ज्ञात होता था कि उनके हाथों में बिजली का वेग आ गया है। तीर कब तरकश से निकलता था, कब धनुष पर चढ़ता था, कब छूटता था यह किसी को दिखायी नहीं देता था। फिर अगस्त्य ऋषि का दिया हुआ तरकश भी तो था, जिसके तीर कभी समाप्त न होते थे। फल यह हुआ कि राक्षसों के पांव उखड़ गये। सेना में भगदड़ पड़ गयी। खर और दूषण ने बहुत चाहा कि आदमियों को रोकें पर उन्होंने एक भी न सुनी। सिर पर पांव रखकर भागे। अब केवल खर और दूषण मैदान में रह गये। यह दोनों साहसी और वीर थे। उन्होंने बड़ी देर तक राम और लक्ष्मण का सामना किया, किन्तु आखिर उनकी मौत भी आ ही गयी। दोनों मारे गये। अकेली शूर्पणखा अपने भाइयों की मृत्यु पर विलाप करने को बच रही।

हिरण का शिकार

शूर्पणखा के दो भाई तो मारे गये, किन्तु अभी दो और शेष थे, उनमें से एक लंका देश का राजा था। उस समय में दक्षिण में लंका से अधिक बलवान और बसा हुआ कोई राज्य न था। रावण भी राक्षस था, किन्तु बड़ा विद्वान्, शास्त्रों का पण्डित; उसके धन की कोई सीमा न थी। यहाँ तक कि कहा जाता है, लंका शहर का नगरकोट सोने का बना हुआ था। व्यापार का बाजार गर्म था। विद्या, कला और कौशल की खूब चर्चा थी और वहाँ की कारीगरी अनुपम थी। किन्तु जैसा प्रायः होता है, धन और साम्राज्य ने रावण को दंभी, अत्याचारी और दुष्ट बना दिया था। विद्वान और गुणी होने पर भी वह बुरे से बुरा काम करने से भी न हिचकता था। शूर्पणखा रोती-पीटती उसके पास पहुंची और छाती पीटने लगी।

रावण ने उसकी यह बुरी दशा देखी तो आश्चर्य से बोला — क्या है शूर्पणखा, क्या बात है? तेरी यह दशा कैसी हुई ? यह तेरी नाक क्या हुई? इस प्रकार रो क्यों रही है?

शूर्पणखा ने आँसू पोंछकर कहा — भैया, मेरी हालत क्या पूछते हो ! मेरी जो दुर्गति हुई है, वह सातवें शत्रु की भी न हो। पंचवटी में दो तपस्वी अयोध्या से आकर ठहरे हुए हैं। दोनों राजा दशरथ के पुत्र हैं। एक का नाम राम है, दूसरे का लक्ष्मण। राम की पत्नी सीता भी उनके साथ हैं। उन लोगों ने मेरी नाक और कान

काट लिये। जब खर और दूषण इसका दण्ड देने के लिए सेना लेकर गये तो सारी सेना का वध कर दिया। एक आदमी भी जीवित न बचा। भैया ! तुम्हारे जीते जी मेरी यह दशा !

राम और लक्ष्मण का नाम सुनकर रावण के होश उड़ गये। वह भी सीता स्वयंवर में सम्मिलित हुआ था, और जिस धनुष को वह हिला भी न सका था, उसी को राम के हाथों टूटते देख चुका था। सीता का रूप भी वह देख चुका था। उसकी याद अभी तक उसको भूली न थी। मन में सोचने लगा, यदि उन भाइयों को किसी प्रकार मार ,सकूँ, तो सीता हाथ आ जाय। किन्तु इस विचार को छिपाकर बोला'हाय! तूने यह कैसा समाचार सुनाया! मेरे दोनों वीर भाई मारे गये ? एक राक्षस भी जीवित न बचा? वह दोनों लड़के आफ़त के परकाले मालूम होते हैं। किन्तु तू सन्तोष कर, दोनों को इस प्रकार मारुँगा कि वह भी समझेंगे कि किसी से पाला पड़ा था। वह कितने ही वीर हों, रावण का एक संकेत उनका अंत कर देने के लिये प्रर्याप्त है। मेरे लिए यह डूब मरने की बात है कि मेरी बहन का इतना निरादर हो, मेरे भाई मारे जायँ, और मैं बैठा रहूँ। आज ही उन्हें दण्ड देने की चिन्ता करता हूँ।

शूर्पणखा बोली — भैया ! दोनों बड़े दुष्ट हैं। मुझसे बलात विवाह करना चाहते थे। किन्तु भला मैं उन्हें कब विचार में लाती थी।

जब मैं उन्हें दुत्कार कर चली, तो छोटे भाई ने यह शरारत की। भैया, इसका बदला केवल यही है कि दोनों भाई मारे जायँ, पूरा बदला जभी होगा, जब सीताजी का भी वैसा ही अनादर और दुर्गति हो, जैसी उन्होंने मेरी की है। क्या कहूँ भैया, सीता कितनी सुन्दर है! बस, यही समझ लो कि चांद कासा मुखड़ा है। ईश्वर ने उसे तुम्हारे लिए बनाया है। राम उसके योग्य नहीं है। उससे अवश्य विवाह करना।

रावण ने बहन को सान्त्वना दी और उसी समय मारीच नामक राक्षस को बुलाकर कहा — अब अपना कुछ कौशल दिखाओ। बहुत दिनों से बैठे-बैठे व्यर्थ का वेतन ले रहे हो। रामचन्द्र और लक्ष्मण पंचवटी में आये हुए हैं। दोनों ने शूर्पणखा की नाक काट ली है, खर और दूषण को मार डाला है और सारे राक्षसों को नष्ट कर दिया है। इन दोनों से इन कुकर्मों का बदला लेना है। बतलाओ, मेरी कुछ सहायता करोगे ?

मारीच वही राक्षस था, जो विश्वामित्र का यज्ञ अपवित्र करने गया था और रामचन्द्र का एक बाण खाकर भागा था। तब से वह यहीं पड़ा था। रामचन्द्र ने उसका पुराना वैमनस्य था। यह खबर सुनकर बागबाग हो गया। बोला — आपकी सहायता करने को तन और प्राण से प्रस्तुत हूँ। अबकी उनसे विश्वासघात की लड़ाई

लड़ूँगा और पुराना बैर चुकाऊँगा। ऐसा चकमा दूँ कि एक बूंद रक्त भी न गिरे और दोनों भाई मारे जायँ।

रावण — बस, ऐसी कोई युक्ति सोचो कि सीता मेरे हाथ लग जाय। फिर दोनों भाइयों को मारना कौन कठिन काम रह जायगा।

मारीच — ऐसा तो न कहिये महाराज! वीरता में दोनों जोड़ नहीं रखते। मैं उनकी लड़कपन की वीरता देख चुका हूँ। दोनों एक सेना के लिए पर्याप्त हैं। अभी उनसे युद्ध करना उचित नहीं। मामला बढ़ जायगा और सीता को कहीं छिपा देंगे। मैं ऐसी युक्ति बता दूँगा कि सीता आपके घर में आ जायँ और दोनों भाइयों को खबर भी न हो। कुछ पता ही न चले कि कहाँ गयी। आखिर तलाश करते-करते निराश होकर बैठे रहेंगे।

रावण का मुख खिल उठा। बोला — मित्र, परामर्श तो तुम बहुत उचित देते हो। यही मैं भी चाहता हूँ। यदि काम बिना लड़ाई-झगड़े के हो जाय, तो क्या कहना। आयु-पर्यन्त तुम्हारा कृतज्ञ रहूँगा। आज ही से तुम्हारी वृद्धि कर दूँ और पद भी बढ़ा दूँ। भला बतलाओ, तो क्या युक्ति सोची है ?

मारीच — बतलाता तो हूँ; किन्तु राजन से बड़ा भारी पुरस्कार लूँगा। आप जानते ही हैं, सूरत बदलने में मैं कितना कुशल हूँ।

ऐसे सुन्दर हिरन का भेष बना लूँ, जैसा किसी ने न देखा हो, गुलाबी रंग होगा, उस पर सुनहरे धब्बे, सारा शरीर हीरे के समान चमकता हुआ। बस, जाकर रामचन्द्र की कुटी के सामने कुचालें भरने लगूँगा। दोनों भाई देखते ही मुझे पकड़ने दौड़ेंगे। मैं भागूँगा, दोनों मेरा पीछा करेंगे। मैं दौड़ता हुआ उन्हें दूर भगा ले जाऊँगा। आप एक साधु का भेष बना लीजियेगा। जिस समय सीता अकेली रह जायँ, आप जाकर उन्हें उठा लाइयेगा। थोड़ी दूर पर आपका रथ खड़ा रहेगा। सीता को रथ पर बिठाकर घोड़ों को हवा कर दीजियेगा। राम जब आयेंगे तो सीता को न पाकर इधर-उधर तलाश करेंगे, फिर निराश होकर किसी ओर चल देंगे। बोलिये, कैसी युक्ति है कि सांप भी मर जाय और लाठी न टूटे।

रावण ने मारीच की बहुत प्रशंसा की और दोनों सीता को हर लाने की तैयारियाँ करने लगे।

छल

तीसरे पहर का समय था। राम और सीता कुटी के सामने बैठे बातें कर रहे थे कि एकाएक अत्यन्त सुन्दर हिरन सामने कुलेलें करता हुआ दिखायी दिया। वह इतना सुन्दर, इतने मोहक रंग का था कि सीता उसे देखकर रीझ गयीं। ऐसा प्रतीत होता था कि इस हिरन के शरीर में हीरे जड़े हुए हैं। रामचन्द्र से बोलीं' देखिये, कैसा सुन्दर हिरन है !

लक्ष्मण को उस समय विचार आया कि हिरन इस रूपरंग का नहीं होता; अवश्य कोई न कोई छल है। किन्तु इस भय से कि रामचन्द्र शायद उन्हें शक्की समझें, मुँह से कुछ नहीं कहा। हाँ, दिल में मना रहे थे कि रामचन्द्र के दिल में भी यही विचार पैदा हो। रामचन्द्र ने हिरन को बड़ी उत्सुकता से देखकर कहा'हाँ, है तो बड़ा सुन्दर। मैंने ऐसा हिरन नहीं देखा।

सीता — इसको जीवित पकड़कर मुझे दे दीजिये। मैं इसे पालूँगी और इसे अयोध्या ले जाऊँगी। लोग इसे देखकर आश्चर्य में आ जायेंगे। देखिये, कैसा कुलाचें भर रहा है।

राम — जीवित पकड़ना तो तनिक कठिन काम है।

सीता — चाहती तो यही हूँ कि जीवित पकड़ा जाय, किन्तु मर भी गया, तो उसकी मृगछाला कितनी उत्तम श्रेणी की होगी!

रामचन्द्र धनुष और बाण लेकर चले, तो लक्ष्मण भी उनके साथ हो लिये और कुछ दूर जाकर बोले — भैया, आप व्यर्थ परेशान हो रहे हैं, यह हिरन जीवित हाथ न आयेगा। हाँ, कहिये तो मैं शिकार कर लाऊँ।

राम — इसीलिए तो मैंने तुमसे नहीं कहा। मैं जानता था कि तुम्हें क्रोध आ जायगा, तीर चला दोगे। तुम सीता के पास बैठो; वह अकेली हैं। मैं अभी इसे जीवित पकड़े लाता हूँ।

यह कहते हुए रामचन्द्र हिरन के पीछे दौड़े, लक्ष्मण को और कुछ कहने का अवसर न मिला। विवश होकर सीताजी के पास लौट आये। इधर हिरन कभी रामचन्द्र के सामने आ जाता, कभी पत्तों की आड़ में हो जाता, कभी इतने समीप आ जाता कि मानो अब थक गया है; फिर एकाएक छलांग मारकर दूर निकल जाता। इस प्रकार भुलावे देता हुआ वह रामचन्द्र को बहुत दूर ले गया, यहाँ तक कि वह थक गये, और उन्हें विश्वास हो गया कि वह हिरन जीवित हाथ न आयेगा। मारीच भागा तो जाता था, किन्तु लक्ष्मण के न आने से उसकी युक्ति सफल होती न दीखती थी। जब तक सीताजी अकेली न होंगी, रावण उन्हें हर कैसे सकेगा? यह सोचकर उसने कई बार जोर से चिल्लाकर कहा — हाय लक्ष्मण ! हाय सीता !

रामचन्द्र का कलेजा धड़क उठा। समझ गये कि मुझे धोखा हुआ। यह बनावटी हिरन है। अवश्य किसी राक्षस ने यह भेष बनाया है। वह इसीलिए लक्ष्मण का नाम लेकर पुकार रहा है कि लक्ष्मण भी दौड़ आयें और सीता अकेली रह जायँ। यह विचार आते ही उन्होंने हिरन को जीवित पकड़ने का विचार छोड़ दिया। ऐसा निशाना मारा कि पहले ही वार में हिरन गिर पड़ा। किन्तु वह निर्दय मरने के पहले अपना काम पूरा कर चुका था। रामचन्द्र तो दौड़े हुए कुटी की ओर आ रहे थे कि कहीं लक्ष्मण सीता को छोड़कर चले न आ रहे हों, उधर सीता जी ने जो 'हाय लक्ष्मण! हाय सीता!' की पुकार सुनी, तो उनका रक्त ठंडा हो गया। आंखों में अंधेरा छा गया। यह तो प्यारे राम की आवाज है। अवश्य शत्रु ने उन्हें घायल कर दिया है। रोकर लक्ष्मण से बोलीं'मुझे तो ऐसा भय होता है कि यह स्वामी की ही आवाज़ है। अवश्य उन पर कोई बड़ी विपत्ति आयी है, अन्यथा तुम्हें क्यों पुकारते? लपककर देखो तो क्या माजरा है ! मेरा तो कलेजा धकधक कर रहा है। दौड़ते ही जाओ। लक्ष्मण ने भी यह आवाज़ सुनी और समझ गये कि किसी राक्षस ने छल किया। ऐसी दशा में सीता को अकेली छोड़कर जाना वह कब सहन कर सकते। बोले'भाई साहब की ओर से आप निश्चिन्त रहें, जिसने चौदह हजार राक्षसों का अन्त कर दिया, उसे किसका भय हो

सकता है? भैया हिरन को लिये आते ही होंगे। आपको अकेली छोड़कर मैं न जाऊँगा। भाई साहब ने इस विषय में खूब चेता दिया था। सीता ने क्रोध से कहा — मेरी तुम्हें क्यों इतनी चिन्ता सवार है! क्या मुझे कोई शेर या भेड़िया खाये जाता है? अवश्य स्वामी पर कोई विपत्ति आयी है। और तुम हाथ पर हाथ रखे बैठे हो। क्या यही भाई का प्रेम है, जिस पर तुम्हें इतना घमण्ड है ?

लक्ष्मण कुछ खिन्न होकर बोले — मैंने तो कभी भाई के प्रेम का घमण्ड नहीं किया। मैं हूँ किस योग्य। मैं तो केवल उनकी सेवा करना चाहता हूँ। उन्होंने चलते-चलते मुझे चेतावनी दी थी कि यहाँ से कहीं न जाना। इसलिए मुझे जाने में सोच-विचार हो रहा है। मैं आपको विश्वास दिलाता हूँ कि भाई साहब का कोई बाल भी बांका नहीं कर सकता। उनके धनुष और बाण के सम्मुख किसका साहस है, जो ठहर सके ! आप व्यर्थ इतना डर रही हैं।

सीताजी ने मुँह फेरकर कहाँ — मैं तुम्हारा-सा हृदय कहाँ से लाऊँ, जो उनकी आवाज़ सुनकर भी निश्चिन्तता से बैठी रहूँ? सच कहा है'न भाई-सा दोस्त न भाई-सा दुश्मन। मैं तुम्हें अपना सहायक और सच्चा रक्षक समझती थी। किन्तु अब ज्ञात हुआ कि तुम भी कैकेयी से सधे-बधे हो, या फिर तुम्हें यहाँ से जाते हुए

भय हो रहा है कि कहीं किसी शत्रु से सामना न हो जाय। मैं तुम्हें न इतना कृतघ्न समझती थी और न इतना डरपोक।

यह ताना बाण के समान लक्ष्मण के हृदय में चुभ गया। उन्हें राम से सच्चा भ्रातृ-प्रेम था और सीता जी को भी वह माता के समान समझते थे। वह रामचन्द्र के एक संकेत पर जान देने को तैयार रहते थे। जहाँ राम का पसीना गिरे, वहाँ अपना रक्त बहाने में भी उन्हें खेद न था। उन्हें भय था कि कहीं मेरी अनुपस्थिति में सीता जी पर कोई विपत्ति आ गयी, कोई राक्षस आकर उन्हें छेड़ने लगा तो मैं रामचन्द्र को क्या मुँह दिखाऊँगा। उस समय जब रामचन्द्र पूछेंगे कि तुम मेरी आज्ञा के विरुद्ध सीता को अकेली छोड़कर क्यों चले गये, तो मैं क्या जवाब दूँगा। किन्तु जब सीताजी ने उन्हें कृतघ्न, डरपोक और धोखेबाज़ बना दिया, तब उन्हें अब इसके सिवा कोई चारा न रहा कि राम की खोज में जायँ। उन्होंने धनुष और बाण उठा लिया और दुःखित होकर बोले — भाभीजी! आपने इस समय जो-जो बातें कहीं, उनकी मुझे आपसे आशा न थी। ईश्वर न करे, वह दिन आये, किन्तु अवसर आयेगा, तो मैं दिखा दूँगा कि भाई के लिए भाई कैसे जान देते हैं। मैं अब भी कहता हूँ कि भैया किसी खतरे में नहीं, किन्तु चूंकि आपकी आज्ञा है; उसका पालन करता हूँ। इसका उत्तरदायित्व आपके ऊपर है।

सीता का हरा जाना

यह कहकर लक्ष्मण तो चल दिये। रावण ने जब देखा कि मैदान खाली है, तो उसने एक हाथ में चिमटा उठाया। दूसरे हाथ में कमण्डल लिया और 'नारायण, नारायण !' करता हुआ सीता जी की कुटी के द्वार पर आकर खड़ा हो गया। सीताजी ने देखा कि एक जटाधारी महात्मा द्वार पर आये हैं, बाहर निकल आयी और महात्मा को प्रणाम करके बोलीं'कहिये महाराज, कहाँ से आना हुआ !

रावण ने आशीर्वाद देकर कहा — माता, साधुसन्तों को तीर्थयात्रा के अतिरिक्त क्या काम है। बद्रीनाथ की यात्रा करने जा रहा हूँ, यहाँ तुम्हारा आश्रम देखकर चला आया। किन्तु यह तो बतलाओ, तुम कौन हो और यहाँ कैसे आ पड़ी हो? तुम्हारी जैसी सुन्दरी किसी महाराजा के रनिवास में रहने योग्य है। तुम इस जंगल में कैसे आ गयीं? मैंने तुम्हारा जैसा सौंदर्य कहीं नहीं देखा।

सीता ने लज्जा से सिर झुकाकर कहा — महाराज, हम लोग विपत्ति के मारे हुए हैं। मैं मिथिलापुरी के राजा जनक की पुत्री,

और कोशल के महाराजा दशरथ की पुत्रवधू हूँ। किन्तु भाग्य ने ऐसा पलटा खाया है कि आज जंगलों की खाक छान रही हूँ। धन्य भाग्य है कि आपके दर्शन हुए। आज यहीं विश्राम कीजिये। आज्ञा हो तो कुछ जलपान के लिए लाऊँ।

रावण — तू बड़ी दयावान है माता ! ला, जो कुछ हो, खिला दे। ईश्वर तेरा कल्याण करे।

सीताजी ने एक पत्तल में कन्दमूल और कुछ फल रखे और रावण के सामने लायीं। रावण ने पत्तल ले लेने के लिए हाथ बढ़ाया, तो पत्तल के बदले सीता ही को गोद में उठाकर वह अपने रथ की ओर दौड़ा और एक क्षण में उन्हें रथ पर बिठाकर घोड़ों को हवा कर दिया। सीताजी मारे भय के मूर्छित हो गयीं। जब चेतना जागी तो देखा कि मैं रथ पर बैठी हूँ और वह महात्माजी रथ को उड़ाये चले जा रहे हैं। चिल्लाकर बोलीं — बाबाजी, तुम मुझे कहाँ लिये जा रहे हो, ईश्वर के लिए बतलाओ; तुम साधू के भेष में कौन हो !

रावण ने हंसकर कहा — बतला ही दूँ ? लंका का ऐश्वर्यशाली राजा रावण हूँ। तुम्हारी यह मोहिनी सूरत देखकर पागल हो रहा हूँ। अब तुम राम को भूल जाओ और उनकी जगह मुझी को

पति समझो। तुम लंका के राजा के योग्य हो, भिखारी राम के योग्य नहीं।

सीता जी को मानो गोली लग गयी। आह ! मुझसे बड़ी भूल हुई कि लक्ष्मण को बलात राम के पास भेज दिया। वह शब्द भी इसी राक्षस का था। हाय ! लक्ष्मण अन्त तक मुझे छोड़कर जाना अस्वीकार करता रहा। किन्तु मैंने न माना। हाय ! क्या ज्ञात था कि भाग्य यों मेरे पीछे पड़ा हुआ है। दोनों भाई कुटी में जाकर मुझे न पायेंगे, तो उनकी क्या दशा होगी ?

यह सोचते हुए सीता जी ने चाहा कि रथ पर से कूद पड़ें। किन्तु रावण भी असावधान न था। तुरन्त उनका विचार ताड़ गया। तुरन्त उनका हाथ पकड़ लिया और बोला — रथ से कूदने का विचार न करो सीता! तनिक देर बाद हम लंका पहुँच जाते हैं, वहाँ तुम्हें सुख और ऐश्वर्य के ऐसे सामान मिलेंगे कि तुम उस वन के जीवन को भूल जाओगी। इस कुटी के बदले तुम्हें आसमान से बातें करता हुआ राजमहल मिलेगा, जिसका फर्श चांदी का है और दीवारें सोने की, जहाँ गुलाब और कस्तूरी की सुगन्ध आठों पहर उड़ा करती हैं; और एक भिखारी पति के बदले वह पति मिलेगा, जिसकी उपमा आज इस पृथ्वी पर नहीं, जिसके धन और प्रसिद्धि का कोई अनुमान भी नहीं कर सकता, जिसके द्वार पर देवता भी सिर झुकाते हैं।

सीता ने भयानक होकर कहा — बस, जबान संभाल! कपटी राक्षस ! एक सती के साथ छल करते हुए लज्जा नहीं आती ? इस पर ऐसी डीगें मार रहा है ! अपना भला चाहता है तो रथ पर से उतार दे। अन्यथा याद रख'रामचन्द्र तेरा और तेरे सारे वंश का नामोनिशान मिटा देंगे। कोई तेरे नाम को रोने वाला भी न रह जायगा। लंका जनहीन हो जायगी। तेरे ऐश्वर्यशाली प्रासादों में गीदड़ अपने मान बनायेंगे और उल्लू बसेरा लेंगे। तू अभी राम और लक्ष्मण के क्रोध को नहीं जानता। खर और दूषण तेरे ही भाई थे, जिनकी चौदह हजार सेना दोनों भाइयों ने बात-की-बात में नष्ट कर दी। शूर्पणखा भी तेरी ही बहन थी जो अपना सम्मान हथेली पर लिये फिरती है। तुझे लाज भी नहीं आती ! अपनी जान का दुश्मन न बन। अपने और अपने वंश पर दया कर। मुझे जाने दे।

रावण ने हंसकर कहा — उसी शूर्पणखा के निरादर और खर दूषण के रक्त का बदला ही लेने के लिए मैं तुम्हें लिये जा रहा हूँ। तुम्हें याद न होगा, मैं भी तुम्हारे स्वयंवर में सम्मिलित हुआ था; किन्तु एक छोटे-से धनुष को तोड़ना अपनी मर्यादा के विरुद्ध समझ लौट आया था। मैंने तुम्हें उसी समय देखा था। उसी समय से तुम्हारी प्यारी-प्यारी सूरत मेरे हृदय पर अंकित हो गयी है। मेरा सौभाग्य तुम्हें यहाँ लाया है। अब तुम्हें नहीं छोड़

सकता। तुम्हारे हित में भी यही अच्छा है कि राम को भूल जाओ और मेरे साथ सुख से जीवन का आनन्द उठाओ। मुझे तुमसे जितना प्रेम है, उसका तुम अनुमान नहीं कर सकतीं। मेरी प्यारी पत्नी बनकर तुम सारी लंका की रानी बन जाओगी। तुम्हें किसी बात की कमी न रहेगी। सारी लंका तुम्हारी सेवा करेगी और लंका का राजा तुम्हारे चरण धो-धोकर पियेगा। इस वन में एक भिखारी के साथ रहकर क्यों अपना रूप और यौवन नष्ट कर रही हो ? मेरे ऊपर न सही, अपने ऊपर दया करो।

सीताजी ने जब देखा कि इस अत्याचारी पर क्रोध का कोई प्रभाव नहीं हुआ और यह रथ को भगाये ही लिये जाता है, तो अनुनय-विनय करने लगीं — तुम इतने बड़े राजा होकर भी धर्म का लेशमात्र भी विचार नहीं करते! मैंने सुना है कि तुम बड़े विद्वान और शिवजी के भक्त हो और तुम्हारे पिता पुलस्त्य ऋषि थे। क्या तुमको मुझ पर तनिक भी दया नहीं आती? यदि यह तुम्हारा विचार है कि मैं तुम्हारा राजपाट देखकर फूल उठूँगी, तो तुम्हारा विचार सर्वथा मिथ्या है। रामचन्द्र के साथ मेरा विवाह हुआ है। चाहे सूर्य पूर्व के बदले पश्चिम से निकले, चाहे पर्वत अपने स्थान से हिल जायँ, पर मैं धर्म के मार्ग से नहीं हट सकती। तुम व्यर्थ क्यों इतना बड़ा पाप अपने सिर लेते हो।

जब इस अनुनय का भी रावण पर कुछ प्रभाव न हुआ, तो सीता हाय राम ! हाय राम! कहकर जोर-जोर से रोने लगीं। संयोग से उसी आसपास के प्रदेश में जटायु नाम का एक साधु रहता था। वह रामचन्द्र के साथ प्रायः बैठता था और उन पर सच्चा विश्वास रखता था। उसने जब सीता को रथ पर राम का नाम लेते सुना, तो उसे तुरन्त सन्देह हुआ कि कोई राक्षस सीता को लिए जाता है, अस्त्र लेकर रथ के सामने जाकर खड़ा हो गया और ललकार कर बोला — तू कौन है और सीताजी को कहाँ लिये जाता है ? तुरन्त रथ रोक ले, अन्यथा वह लट्ठ मारूँगा कि भेजा निकल पड़ेगा !

रावण इस समय लड़ना तो न चाहता था, क्योंकि उसे राम और लक्ष्मण के आ जाने का भय था, किन्तु जब जटायु मार्ग में खड़ा हो गया, तो उसे विवश होकर रथ रोकना पड़ा। घोड़ों की बाग खींच ली और बोला — क्या शामत आयी है, जो मुझसे छेड़छाड़ करता है! मैं लंका का राजा रावण हूँ। मेरी वीरता के समाचार तूने सुने होंगे! अपना भला चाहता है तो रास्ते से हट जा।

जटायु — तू सीता को कहाँ लिये जाता है ?

रावण — राम ने मेरी बहन की प्रतिष्ठा नष्ट की है, उसी का यह बदला है।

जटायु — यदि अपमान का बदला लेना था, तो मर्दों की तरह सामने क्यों न आया? मालूम हुआ कि तू नीच और कपटी है। अभी सीता को रथ पर से उतार दे !

रावण बड़ा बली था। वह भला बेचारे जटायु की धमकियों को कब ध्यान में लाता था। लड़ने को प्रस्तुत हुआ। जटायु कमजोर था। किन्तु जान पर खेल गया। बड़ी देर तक रावण से लड़ता रहा। यहाँ तक कि उसका समस्त शरीर घावों से छलनी हो गया। तब वह बेहोश होकर गिर पड़ा और रावण ने फिर घोड़े बढ़ा दिये।

उधर लक्ष्मण कुटिया से चले तो; किन्तु दिल में पछता रहे थे कि कहीं सीता पर कोई आफत आयी, तो मैं राम को मुँह दिखाने योग्य न रहूँगा। ज्यों-ज्यों आगे बढ़ते थे, उनकी हिम्मत जवाब देती जाती थी। एकाएक रामचन्द्र आते दिखायी दिये। लक्ष्मण ने आगे बढ़कर डरते-डरते पूछा — क्या आपने मुझे बुलाया था ?

राम ने इस बात का कोई उत्तर न देकर कहा — क्या तुम सीता को अकेली छोड़कर चले आये ? गजब किया। यह हिरन न था, मारीच राक्षस था। हमें धोखा देने के लिए उसने यह भेष बनाया, और तुम्हें धोखा देने के लिए मेरा नाम लेकर चिल्लाया था। क्या तुमने मेरी आवाज़ भी न पहचानी? मैंने तो तुम्हें आज्ञा दी थी कि

सीता को अकेली न छोड़ना। मारीच की युक्ति काम कर गयी। अवश्य सीता पर कोई विपत्ति आयी। तुमने बुरा किया।

लक्ष्मण ने सिर झुकाकर कहा — भाभीजी ने मुझे बलात भेज दिया। मैं तो आता ही न था, पर जब वह ताने देने लगीं, तो क्या करता !

राम ने तीक्ष्ण दृष्टि से देखकर कहा — तुमने उनके तानों पर ध्यान दिया, किन्तु मेरे आदेश का विचार न किया। मैं तो तुम्हें इतना बुद्धिहीन न समझता था। अच्छा चलो, देखें भाग्य में क्या लिखा है।

दोनों भाई लपके हुए अपनी कुटी पर आये। देखा तो सीता का कहीं पता नहीं। होश उड़ गये। विकल होकर इधर-उधर चारों तरफ दौड़-दौड़कर सीता को ढूँढ़ने लगे। उन पेड़ों के नीचे जहाँ प्रायः मोर नाचते थे, नदी के किनारे जहाँ हिरन कुलेलें करते थे, सब कहीं छान डाला, किन्तु कहीं चिह्न मिला। लक्ष्मण तो कुटी के द्वार पर बैठकर जोर-जोर से चीखें मार-मारकर रोने लगे, किन्तु रामचन्द्र की दशा पागलों की-सी हो गयी।

सभी वृक्षों से पूछते, तुमने सीता को तो नहीं देखा? चिड़ियों के पीछे दौड़ते और पूछते, तुमने मेरी प्यारी सीता को देखा हो, तो बता दो, गुफाओं में जाकर चिल्लाते‘कहाँ गयी? सीता कहाँ गयी,

मुझ अभागे को छोड़कर कहाँ गयी? हवा के झोंकों से पूछते, तुमको भी मेरी सीता की कुछ खबर नहीं! सीता जी मुझे तीनों लोक से अधिक प्रिय थीं, जिसके साथ यह वन भी मेरे लिए उपवन बना हुआ था, यह कुटी राजप्रासाद को भी लज्जित करती थी, वह मेरी प्यारी सीता कहाँ चली गयी।

इस प्रकार व्याकुलता की दशा में वह बढ़ते चले जाते थे। लक्ष्मण उनकी दशा देखकर और भी घबराये हुए थे। रामचन्द्र की दशा ऐसी थी मानो सीता के वियोग में जीवित न रह सकेंगे। लक्ष्मण रोते थे कि कैकेयी के सिर यदि वनवास का अभियोग लगा तो मेरे सिर सत्यानाश का अभियोग आयेगा। यदि रामचन्द्र को संभालने की चिन्ता न होती, तो सम्भवतः वे उसी समय अपने जीवन का अन्त कर देते। एकाएक एक वृक्ष के नीचे जटायु को पड़े कराहते देखकर रामचन्द्र रुक गये, बोले — जटायु! तुम्हारी यह क्या दशा है? किस अत्याचारी ने तुम्हारी यह गति बना डाली?

जटायु रामचन्द्र को देखकर बोला — आप आ गये? बस, इतनी ही कामना थी, अन्यथा अब तक प्राण निकल गया होता। सीताजी को लङ्का का राक्षस रावण हर ले गया है। मैंने चाहा कि उनको उसके हाथ से छीन लूँ। उसी के साथ लड़ने में मेरी यह दशा हो गयी। आह! बड़ी पीड़ा हो रही है। अब चला।

राम ने जटायु का सिर अपनी गोद में रख लिया। लक्ष्मण दौड़े कि पानी लाकर उसका मुँह तर करें, किन्तु इतने में जटायु के प्राण निकल गये। इस वन में एक सहायक था, वह भी मर गया। राम को इसके मरने का बहुत खेद हुआ। बहुत देर तक उसके निष्पराण शरीर को गोद में लिये रोते रहे। ईश्वर से बारबार यही प्रार्थना करते थे कि इसे स्वर्ग में सबसे अच्छी जगह दीजियेगा, क्योंकि इस वीर ने एक दुखियारी की सहायता में प्राण दिये हैं, और औचित्य की सहायता के लिए रावण जैसे बली पुरुष के सम्मुख जाने से भी न हिचका। यही मित्रता का धर्म है। यही मनुष्यता का धर्म है। वीर जटायु का नाम उस समय तक जीवित रहेगा, जब तक राम का नाम जीवित रहेगा।

लक्ष्मण ने इधर-उधर से लकड़ी बटोरकर चिता तैयार की, रामचन्द्र ने मृत-शरीर उस पर रखा, और वेदमन्त्रों का पाठ करते हुए उसकी दाह-क्रिया की। फिर वहाँ से आगे बढ़े। अब उन्हें सीता का पता मिल गया था, इस बात की व्याकुलता न थी कि सीता कहाँ गयीं। यह चिन्ता थी कि रावण से सीता को कैसे छीन लेना चाहिए। इस काम के लिए सहायकों की आवश्यकता थी। बहुत बड़ी सेना तैयार करनी पड़ेगी, लंका पर आक्रमण करना पड़ेगा। यह चिन्ताएँ पैदा हो गयी थीं। चलते-चलते सूरत डूब गया। राम को अब किसी बात की सुधि न थी, किन्तु

लक्ष्मण को यह विचार हो रहा था कि रात कहाँ काटी जाय। न कोई गाँव दिखायी देता था, न किसी ऋषि का आश्रम। इसी चिंता में थे कि सामने वृक्षों के एक कुंज में एक झोंपड़ी दिखायी दी। दोनों आदमी उस झोंपड़ी की ओर चले। यह झोंपड़ी एक भीलनी की थी जिसका नाम शबरी था। उसे जो ज्ञात हुआ कि यह दोनों भाई अयोध्या के राजा दशरथ के पुत्र हैं, तो मारे खुशी के फूली न समायी, बोली'धन्य मेरे भाग्य कि आप मेरी झोंपड़ी तक आये। आपके चरणों से मेरी झोंपड़ी पवित्र हो गयी। रात भर यहीं विश्राम कीजिए। यह कहकर वह जंगल में गयी और ताजे फल तोड़ लायी। कुछ जंगली बेर थे, कुछ करौंदे, कुछ शरीफे। शबरी खूब रसीले, पके हुए फल ही चुन रही थी। इस भय से कि कोई खट्टा न निकल जाय, वह प्रायः फलों को कुतरकर उनका स्वाद ले लेती। भीलनी क्या जानती थी कि जूठी चीज खाने के योग्य नहीं रहती। इस प्रकार वह एक टोकरी फलों से भर लायी और खाने के लिए अनुरोध करने लगी। इस समय दुःख के मारे उनका जी कुछ खाने को तो न चाहता था, किन्तु शबरी का सत्कार स्वीकार था। यह कितने प्रेम से जंगल से फल लायी है, इसका विचार तो करना ही पड़ेगा। जब फल खाने आरम्भ किये तो कोई-कोई कुतरे हुए दिखायी दिये, किन्तु दोनों भाइयों ने फलों को और भी प्रेम के साथ खाया,

मानो वह जूठे थे, किन्तु उनमें प्रेम का रस भरा हुआ था। दोनों भाई बैठे फल खा रहे थे और शबरी खड़ी पंखा झल रही थी। उसे यह डर लगा हुआ था कि कहीं मेरे फल खट्टे या कच्चे न निकल जायँ, तो ये लोग भूखे रह जायँगे। शायद मुझे घुड़कियाँ भी दें। राजा हैं ही, क्या ठिकाना। किन्तु जब उन लोगों ने खूब बखान-बखान कर फल खाये, तो उसे मानो स्वर्ग का ठेका मिल गया।

दोनों भाइयों ने रात वहीं व्यतीत की। प्रातः शबरी से विदा होकर आगे बढ़े।

उधर रावण रथ को भगाता हुआ पंपासर पहाड़ के निकट पहुंचा, तो सीताजी ने देखा कि पहाड़ पर कई बन्दरों की-सी सूरत वाले आदमी बैठे हुए हैं। सीताजी ने विचार किया कि रामचन्द्र मुझे ढूँढ़ते हुए अवश्य इधर आवेंगे। इसलिए उन्होंने अपने कई आभूषण और चादर रथ के नीचे डाल दिये कि संभवतः इन लोगों की दृष्टि इन चीजों पर पड़ जाय और वह रामचन्द्र को मेरा पता बता सकें। आगे चलकर तुमको मालूम होगा कि सीताजी की इस कुशलता से रामचन्द्र को उनका पता लगाने में बड़ी सहायता मिली।

लंका पहुँचकर रावण ने सीताजी को अपने महल, बाग, खजाने, सेनायें सब दिखायीं। वह समझता था कि मेरे ऐश्वर्य और धन को देखकर सीताजी लालच में पड़ जायँगी। उसका महल कितना सुन्दर था, उपवन कितने नयनाभिराम थे, सेनायें कितनी असंख्य और नयेन-ये अस्त्र-शस्त्रों से कितनी सजी हुई थीं, कोष कितना असीम था, उसमें कितने हीरे-जवाहर भरे हुए थे! किन्तु सीताजी पर इस सेना का भी कुछ प्रभाव न हुआ। उन्हें विश्वास था कि रामचन्द्र के बाणों के सामने यह सेनायें कदापि न ठहर सकेंगी। जब रावण ने देखा कि सीताजी ने मेरे इस ठाटबाट की तिनके बराबर भी परवा न की तो बोला — तुम्हें अब भी मेरे बल का अनुमान नहीं हुआ? क्या तुम अब भी समझती हो कि रामचन्द्र तुम्हें मेरे हाथों से छुड़ा ले जायेंगे ? इस विचार को मन से निकाल डालो।

सीता जी ने घृणा की दृष्टि से उसकी ओर देखकर कहा — इस विचार को मैं हृदय से किसी प्रकार नहीं निकाल सकती। रामचन्द्र अवश्य मुझे ले जायेंगे और तुझे इस दुष्टता और नीचता का मजा भी चखायेंगे। तेरी सारी सेना, सारा धन, सारे अस्त्र-शस्त्र धरे रह जायेंगे। उनके बाण मृत्यु के बाण हैं। तू उनसे न बच सकेगा। वह आन की आन में तेरी यह सोने की लङ्का राख और काली कर देंगे। तेरे वंश में कोई दीपक जलाने वाला भी न रह

जायगा। यदि तुझे अपने जीवन से कुछ प्रेम हो, तो मुझे उनके पास पहुंचा दे और उनके चरणों पर नम्रता से गिरकर अपनी धृष्टता की क्षमा मांग ले। वह बड़े दयालु हैं। तुझे क्षमा कर देंगे। किन्तु यदि तू अपनी दुष्टता से बाज न आया तो तेरा सत्यानाश हो जायगा।

रावण क्रोध से जल उठा। महल के समीप ही अशोक वाटिका नाम का एक उपवन था, रावण ने सीताजी को उसी में ठहरा दिया और कई राक्षसी स्त्रियों को इसलिए नियुक्त किया कि वह सीता को सतायें और हर प्रकार का कष्ट पहुँचाकर इन्हें उसकी ओर आकृष्ट करने के लिए विवश करें; अवसर पाकर उसकी प्रशंसा से भी सीताजी को आकर्षित करें। यह प्रबन्ध करके वह तो चला गया, किन्तु राक्षसी स्त्रियाँ थोड़े ही दिनों में सीताजी की नेकी और सज्जनता और पति का सच्चा प्रेम देखकर उनसे प्रेम करने लग गयीं और उन्हें कष्ट पहुंचाने के बदले हर तरह का आराम देने लगीं। वह सीताजी को आश्वासन भी देती रहती थीं। हाँ, जब रावण आ जाता तो उसे दिखाने के लिए सीता पर दो-चार घुड़कियाँ जमा देती थीं।

किष्किन्धा कांड

सीता जी की खोज

राम और लक्ष्मण सीता की खोज में पर्वत और वनों की खाक छानते चले जाते थे कि सामने ऋष्यमूक पहाड़ दिखायी दिया। उसकी चोटी पर सुग्रीव अपने कुछ निष्ठावान साथियों के साथ रहा करता था। यह मनुष्य किष्किन्धानगर के राजा बालि का छोटा भाई था। बालि ने एक बात पर असन्तुष्ट होकर उसे राज्य से निकाल दिया था और उसकी पत्नी तारा को छीन लिया था। सुग्रीव भागकर इस पहाड़ पर चला आया और यद्यपि वह छिपकर रहता था, फिर भी उसे यह शंका बनी रहती थी कि कहीं बालि उसका पता न लगा ले और उसे मारने के लिए किसी को भेज न दे। उसने राम और लक्ष्मण को धनुष और बाण लिये जाते देखा, तो प्राण सूख गये। विचार आया कि हो न हो बालि ने इन दोनों वीर युवकों को मुझे मारने के लिये भेजा है। अपने आज्ञाकारी मित्र हनुमान से बोला — भाई, मुझे तो इन दोनों आदमियों से भय लगता है। बालि ने इन्हें मुझे मारने के लिए भेजा है। अब बताओ, कहाँ जाकर छिपूँ ?

हनुमान सुग्रीव के सच्चे हितैषी थे। इस निर्धनता में और सब साथियों ने सुग्रीव से मुँह मोड़ लिया था। उसकी बात भी न पूछते थे, किन्तु हनुमान बड़े बुद्धिमान थे और जानते थे कि सच्चा मित्र वही है, जो संकट में साथ दे। अच्छे दिनों में तो शत्रु भी मित्र बन जाते हैं। उन्होंने सुग्रीव को समझाया'आप इतना डरते क्यों हैं। मुझे इन दोनों आदमियों के चेहरे से मालूम होता है कि यह बहुत सज्जन और दयालु हैं। मैं अभी उनके पास जाकर उनका हालचाल पूछता हूँ। यह कहकर हनुमान ने एक ब्राह्मण का भेष बनाया, माथे पर तिलक लगाया, जनेऊ पहना, पोथी बगल में दबायी और लाठी टेकते हुए रामचन्द्र के पास जाकर बोले — आप लोग यहाँ कहाँ से आ रहे हैं? मुझे तो ऐसा प्रतीत होता है कि आप लोग परदेशी हैं और सम्भवतः आपका कोई साथी खो गया है।

रामचन्द्र ने कहा — हाँ, देवताजी! आपका विचार ठीक है। हम लोग परदेशी हैं। दुर्भाग्य के मारे अयोध्या का राज्य छोड़कर यहाँ वनों में भटक रहे हैं। उस पर नयी विपत्ति यह पड़ी कि कोई मेरी पत्नी सीता को उठा ले गया। उसकी खोज में इधर आ निकले। देखें, अभी कहाँ-कहाँ ठोकरें खानी पड़ती हैं।

हनुमान ने सहानुभूतिपूर्ण भाव से कहा — महाराज, घबड़ाने की कोई बात नहीं है। आप अयोध्या के राजकुमार हैं, तो हम लोग

आपके सेवक हैं। मेरे साथ पहाड़ पर चलिये। यहाँ राजा सुग्रीव रहते हैं। उन्हें बालि ने किष्किन्धापुरी से निकाल दिया है। बड़े ही नेक और सज्जन पुरुष हैं, यदि उनसे आपकी मित्रता हो गयी, तो फिर बड़ी ही सरलता से आपका काम निकल जायगा। वह चारों तरफ अपने आदमी भेजकर पता लगायेंगे और ज्योंही पता मिला, अपनी विशाल सेना लेकर महारानी जी को छुड़ा लायेंगे। उन्हें आप अपना सेवक समझिये।

राम ने लक्ष्मण से कहा — मुझे तो यह आदमी हृदय से निष्कपट और सज्जन मालूम होता है। इसके साथ जाने में कोई हर्ज नहीं मालूम होता। कौन जाने, सुग्रीव ही से हमारा काम निकले। चलो, तनिक सुग्रीव से भी मिल लें।

दोनों भाई हनुमान के साथ पहाड़ पर पहुंचे। सुग्रीव ने दौड़कर उनकी अभ्यर्थना की और लाकर अपने बराबर सिंहासन पर बैठाया।

हनुमान ने कहा — आज बड़ा शुभ दिन है कि अयोध्या के धर्मात्मा राजा राम किष्किन्धापुरी के राजा सुग्रीव के अतिथि हुए हैं। आज दोनों मिलकर इतने बलवान हो जायँगे कि कोई सामना न कर सकेगा। आपकी दशा एक-सी है और आप दोनों को एक दूसरे की सहायता की आवश्यकता है। राजा सुग्रीव महारानी

सीता की खोज करेंगे और महाराज रामचन्द्र बालि को मारकर सुग्रीव को राजा बनायेंगे और रानी तारा को वापस दिला देंगे। इसलिए आप दोनों अग्नि को साक्षी बना कर प्रण कीजिये कि सदा एक दूसरे की सहायता करते रहेंगे, चाहे उसमें कितना ही संकट हो।

आग जलायी गयी। राम और सुग्रीव उसके सामने बैठे और एक दूसरे की सहायता करने का निश्चय और प्रण किया। फिर बात होने लगी। सुग्रीव ने पूछा — आपको ज्ञात है कि सीताजी को कौन उठा ले गया? यदि उसका नाम ज्ञात हो जाय, तो सम्भवतः मैं सीताजी का सरलता से पता लगा सकूँ।

राम ने कहा — यह तो जटायु से ज्ञात हो गया है, भाई ! वह लंका के राजा रावण की दुष्टता है। उसी ने हम लोगों को छलकर सीता को हर लिया और अपने रथ पर बिठाकर ले गया।

अब सुग्रीव को उन आभूषणों की याद आयी, जो सीता जी ने रथ पर से नीचे फेंके थे। उसने उन आभूषणों को मँगवाकर रामचन्द्र के सामने रख दिया और बोला — आप इन आभूषणों को देखकर पहचानिये कि यह महारानी सीता के तो नहीं हैं? कुछ समय हुआ, एक दिन एक रथ इधर से जा रहा था। किसी स्त्री ने उस पर

से यह गहने फेंक दिये थे। मुझे तो प्रतीत होता है, वह सीता जी ही थीं। रावण उन्हें लिये चला जाता था। जब कुछ वश न चला, तो उन्होंने यह आभूषण गिरा दिये कि शायद आप इधर आयें और हम लोग आपको उनका पता बता सकें।

आभूषणों को देखकर रामचन्द्र की आंखों से आँसू गिरने लगे। एक दिन वह था, कि यह गहने सीता जी के तन पर शोभा देते थे। आज यह इस प्रकार मारे-मारे फिर रहे हैं। मारे दुःख के वह इन गहनों को देख न सके, मुँह फेरकर लक्ष्मण से कहा — भैया, तनिक देखो तो, यह तुम्हारी भाभी के आभूषण हैं।

लक्ष्मण ने कहा — भाई साहब, इस गले के हार और हाथों के कंगन के विषय में तो मैं कुछ निवेदन नहीं कर सकता, क्योंकि मैंने कभी भाभी के चेहरे की ओर देखने का साहस नहीं किया। हाँ, पाँव के बिछुए और पाजेब भाभी ही के हैं। मैं उनके चरणों को छूते समय प्रतिदिन इन चीजों को देखता रहा हूँ। निस्संदेह यह चीजें देवी जी ही की हैं।

सुग्रीव बोला — तब तो इसमें संदेह नहीं की दक्षिण कि ओर ही सीता का पता लगेगा। आप जितने शीघर मुझे राज्य दिला दें, उतने ही शीघर मैं आदमियों को ऊपर भेजने का प्रबन्ध करूँ। किन्तु यह समझ लीजिये कि बालि अत्यन्त बलवान पुरुष है और

युद्ध के कौशल भी खूब जानता है। मुझे यह सन्तोष कैसे होगा कि आप उस पर विजय पा सकेंगे? वह एक बाण से तीन वृक्षों को एक ही साथ छेद डालता है।

पर्वत के नीचे सात वृक्ष एक ही पंक्ति में लगे हुए थे। रामचन्द्र ने बाण को धनुष पर लगाकर छोड़ा, तो वह सातों वृक्षों को पार करता हुआ फिर तरकश में आ गया। रामचन्द्र का यह कौशल देखकर सुग्रीव को विश्वास हो गया कि यह बालि को मार सकेंगे। दूसरे दिन उसने हथियार साजे और बड़ी वीरता से बालि के सामने जाकर बोला — ओ अत्याचारी ! निकल आ ! आज मेरी और तेरी अन्तिम बार मुठभेड़ हो जाय। तूने मुझे अकरण ही राज्य से निकाल दिया है। आज तुझे उसका मजा चखाऊँगा।

बालि ने कई बार सुग्रीव को पछाड़ दिया था। पर हर बार तारा के सिफारिश करने पर उसे छोड़ दिया था। यह ललकार सुनकर क्रोध से लाल हो गया और बोला — मालूम होता है, तेरा काल आ गया है। क्यों व्यर्थ अपनी जान का दुश्मन हुआ है? जा, चोरों की तरह पहाड़ों पर छिपकर बैठ। तेरे रक्त से क्या हाथ रंगूँ।

तारा ने बालि को अकेले में बुलाकर कहा — मैंने सुना है कि सुग्रीव ने अयोध्या के राजा रामचन्द्र से मित्रता कर ली है। वह

बड़े वीर हैं तुम उसका थोड़ा-बहुत भाग देकर राजी कर लो। इस समय लड़ना उचित नहीं।

किन्तु बालि अपने बल के अभिमान में अन्धा हो रहा था। बोला — सुग्रीव एक नहीं, सौ राजाओं को अपनी सहायता के लिये बुला लाये, मैं लेशमात्र परवाह नहीं करता। जब मैंने रावण की कुछ हकीकत नहीं समझी, तो रामचन्द्र की क्या हस्ती है। मैंने समझा दिया है, किन्तु वह मुझे लड़ने पर विवश करेगा तो उसका दुर्भाग्य। अबकी मार ही डालूँगा। सदैव के लिए झगड़े का अन्त कर दूँगा।

बालि जब बाहर आया तो देखा, सुग्रीव अभी तक खड़ा ललकार रहा है। तब उससे सहन न हो सका। अपनी गदा उठा ली और सुग्रीव पर झपटा। सुग्रीव पीछे हटता हुआ बालि को उस स्थान तक लाया, जहाँ रामचन्द्र धनुष बाण लिये घात में बैठे थे। उसे आशा थी कि अब रामचन्द्र बाण छोड़कर बालि का अन्त कर देंगे। किन्तु जब कोई बाण न आया, और बालि उस पर वार करता ही गया, तब तो सुग्रीव जान लेकर भागा और पर्वत की एक गुफा में छिप गया। बालि ने भागे हुए शत्रु का पीछा करना अपनी मर्यादा के विरुद्ध समझकर मूंछों पर ताव देते हुए घर का रास्ता लिया।

थोड़ी देर के पश्चात जब रामचन्द्र सुग्रीव के पास आये, तो वह बिगड़कर बोला — वाह साहब वाह! आपने तो आज मेरी जान ही ले ली थी। मुझसे तो कहा कि मैं पेड़ की आड़ से बालि को मार गिराऊँगा, और तीर के नाम एक तिनका भी न छोड़ा! जब आप बालि से इतना डरते थे, तो मुझे लड़ने के लिए भेजा ही क्यों था? मैं तो बड़े आनन्द से यहाँ छिपा बैठा था। मैं न जानता था कि आप वचन से इतना मुँह मोड़ने वाले हैं। भाग न आता, तो उसने आज मुझे मार ही डाला था।

राम ने लज्जित होकर कहा — सुग्रीव, मैं अपने वचन को भूला न था और न बालि से डर ही रहा था। बात यह थी कि तुम दोनों भाई सूरत-सकल में इतना मिलते-जुलते हो कि मैं दूर से पहचान ही न सका कि तुम कौन हो और कौन बालि। डरता था कि मारूँ तो बालि को और तीर लग जाय तुम्हें। बस, इतनी-सी बात थी। कल तुम एक माला गले में पहनकर फिर उससे लड़ो। इस प्रकार मैं तुम्हें पहचान जाऊँगा और एक बाण में बालि का अन्त कर दूँगा।

दूसरे दिन सुग्रीव ने फिर जाकर बालि को ललकारा — कल मैंने तुम्हें बड़ा भाई समझकर छोड़ दिया था, अन्यथा चाहता तो चटनी कर डालता। मुझे आशा थी कि तू मेरे इस व्यवहार से कुछ नरम होगा और मेरे आधे राज्य के साथ मेरी पत्नी को मुझे वापस

कर देगा, किन्तु तूने मेरे व्यवहार का कुछ आदर न किया। इसलिए आज मैं फिर लड़ने आया हूँ। आज फैसला ही करके छोड़ूँगा।

बालि तुरन्त निकल आया। सुग्रीव के डींग मारने पर आज उसे बड़ा क्रोध आया। उसने निश्चय कर लिया था कि आज इसे जीवित न छोड़ूँगा। दोनों फिर उसी मैदान में आकर लड़ने लगे। बालि ने तनिक देर में सुग्रीव को दे पटका और उसकी छाती पर सवार होकर चाहता था कि उसका सिर काट ले कि एकाएक किसी ओर से एक ऐसा तीर आकर उसके सीने में लगा कि तुरन्त नीचे गिर पड़ा। सीने से रुधिर की धारा बहने लगी। उसके समझ में न आया कि यह तीर किसने मारा! उसके राज्य में तो कोई ऐसा पुरुष न था, जिसके तीर में इतना बल होता।

वह इसी असमंजस में पड़ा चिल्ला रहा था कि राम और लक्ष्मण धनुष और बाण लिये सामने आ खड़े हुए। बालि समझ गया कि रामचन्द्र ने ही उसे तीर मारा है। बोला — क्यों महाराज! मैंने तो सुना था कि तुम बड़े धर्मात्मा और वीर हो। क्या तुम्हारे देश में इसी को वीरता कहते हैं कि किसी आदमी पर छिपकर वार किया जाय! मैंने तो तुम्हारा कुछ नहीं बिगाड़ा था !

रामचन्द्र ने उत्तर दिया — मैंने तुम्हें इसलिए नहीं मारा कि तुम मेरे शत्रु हो, किन्तु इसलिए कि तुमने अपने वंश पर अत्याचार किया है और सुग्रीव की पत्नी को अपने घर में रख लिया। ऐसे आदमी का बध करना पाप नहीं है। तुम्हें अपने सगे भाई के साथ ऐसा दुव्र्यवहार नहीं करना चाहिए था। तुम समझते हो कि राजा स्वतन्त्र है, वह जो चाहे, कर सकता है। यह तुम्हारी भूल है। राजा उसी समय तक स्वतंत्र है, जब तक वह सज्जनता और न्याय के मार्ग पर चलता है। जब वह नेकी के रास्ते से हट जाय, तो प्रत्येक मनुष्य का, जो पर्याप्त बल रखता हो, उसे दण्ड देने का अधिकार है। इसके अतिरिक्त सुग्रीव मेरा मित्र है, और मित्र का शत्रु मेरा शत्रु है। मेरा कर्तव्य था कि मैं अपने मित्र की सहायता करता।

बालि को घातक घाव लगा था। जब उसे विश्वास हो गया कि अब मैं कुछ क्षणों का और मेहमान हूँ, तो उसने अपने पुत्र अंगद को बुलाकर सिपुर्द किया और बोला — सुग्रीव! अब मैं इस संसार से बिदा हो रहा हूँ। इस अनाथ लड़के को अपना पुत्र समझना। यही तुमसे मेरी अन्तिम विनती है। मैंने जो कुछ किया, उसका फल पाया। तुमसे मुझे कोई शिकायत नहीं। जब दो भाई लड़ते हैं, तो विनाश के सिवाय और फल क्या हो सकता है! बुराइयों को भूल जाओ। मेरे दुर्व्यवहारों का बदला इस अनाथ लड़के से न

लेना। इसे ताने न देना। मेरी दशा से पाठ लो और सत्य के रास्ते से चलो। यह कहते-कहते बालि के प्राण निकल गये। सुग्रीव किष्किंधापुरी का राजा हुआ और अंगद राज्य का उत्तराधिकारी बनाया गया। तारा फिर सुग्रीव की रानी हो गयी।

हनुमान

बरसात का मौसम आया। नदी-नाले, झील-तालाब पानी से भर गये। मैदानों में हरियाली लहलहाने लगी। पहाड़ियों पर मोरों ने शोर मचाना प्रारम्भ किया। आकाश पर काले-काले बादल मंडराने लगे। राम और लक्ष्मण ने सारी बरसात पहाड़ की गुफा में व्यतीत की। यहाँ तक कि बरसात गुजर गयी और जाड़ा आया। पहाड़ी नदियों की धारा धीमी पड़ गयी, कास के वृक्ष सफेद फूलों से लद गये। आकाश स्वच्छ और नीला हो गया। चांद का प्रकाश निखर गया। किन्तु सुग्रीव ने अब तक सीता को ढूँढ़ने का कोई प्रबन्ध न किया। न राम-लक्ष्मण ही की कुछ सुध ली। एक समय तक विपत्तियाँ झेलने के पश्चात राज्य का सुख पाकर विलास में डूब गया। अपना वचन याद न रहा। अन्त में, रामचन्द्र ने प्रतीक्षा से तंग आकर एक दिन लक्ष्मण से कहा'देखते

हो सुग्रीव की कृतघ्नता! जब तक बालि न मरा था, तब तक तो रात-दिन खुशामद किया करता था और जब राज मिल गया और किसी शत्रु का भय न रहा, तो हमारी ओर से बिल्कुल निश्चिंत हो गया। तुम तनिक जाकर उसे एक बार याद तो दिला दो। यदि मान जाय तो शुभ, अन्यथा जिस बाण से बालि को मारा, उसी बाण से सुग्रीव का अन्त कर दूँगा।

लक्ष्मण तुरन्त किष्किन्धा नगरी में प्रविष्ट हुए और सुग्रीव के पास जाकर कहा — क्यों साहब ! सज्जनता और भलमंसी के यही अर्थ हैं कि जब तक अपना स्वार्थ था, तब तक तो रात-दिन घेरे रहते थे और जब राज्य मिला तो सारे वायदे भूल बैठे? कुशल चाहते हो तो तुरन्त अपनी सेना को सीता की खोज में रवाना करो, अन्यथा फल अच्छा न होगा। जिन हाथों ने बालि का एक क्षण में अन्त कर दिया, उन्हें तुमको मारने में क्या देर लगती है। रास्ता देखते-देखते हमारी आँखें थक गयीं, किन्तु तुम्हारी नींद न टूटी। तुम इतने शीलरहित और स्वार्थी हो? मैं तुम्हें एक मास का समय देता हूँ। यदि इस अवधि के अन्दर सीताजी का कुछ पता न चल सका तो तुम्हारी कुशल नहीं।

सुग्रीव को मारे लज्जा के सिर उठाना कठिन हो गया। लक्ष्मण से अपनी भूलों की क्षमा मांगी और बोला — वीर लक्ष्मण ! मैं अत्यन्त लज्जित हूँ कि अब तक अपना वचन न पूरा कर सका।

श्री रामचन्द्र ने मुझ पर जो एहसान किया, उसे मरते दम तक न भूलूँगा। अब तक मैं राज्य की परेशानियों में फंसा हुआ था। अब दिल और जान से सीताजी की खोज करूँगा। मुझे विश्वास है कि एक महीने में मैं उनका पता लगा दूँगा।

यह कहकर वह लक्ष्मण के साथ ऋष्यमूक पर्वत पर चला आया जहाँ राम और लक्ष्मण रहते थे। और यहीं से सीताजी की तलाश करने का प्रबन्ध करने लगा। विश्वासी और परीक्षायुक्त आदमियों को चुन-चुन कर देश के हरेक हिस्से में भेजना शुरू किया। कोई पंजाब और कंधार की तरफ गया, कोई बंगाल की ओर, कोई हिमालय की ओर। हनुमान उन आदमियों में सबसे वीर और अनुभवी थे। उन्हें उसने दक्षिण की ओर भेजा। क्योंकि अनुमान था कि रावण सीता को लेकर लंका की ओर गया होगा। हनुमान की मदद के लिये अंगद, जामवंत, नील, नल इत्यादि वीरों को तैनात किया। रामचन्द्र हनुमान से बोले — मुझे आशा है कि सफलता का सेहरा तुम्हारे ही सिर रहेगा।

हनुमान से कहा — यदि आपका यह आशीर्वाद है तो अवश्य सफल होऊँगा। आप मुझे कोई ऐसी निशानी दे दीजिये, जिसे दिखाकर मैं सीताजी को विश्वास दिला सकूँ।

रामचन्द्र ने अपनी अंगूठी निकालकर हनुमान को दे दी और बोले — यदि सीता से तुम्हारी मुलाकात हो, तो उन्हें समझाकर कहना कि राम और लक्ष्मण तुम्हें बहुत शीघर छुड़ाने आयेंगे। जिस प्रकार इतने दिन काटे हैं, उसी प्रकार थोड़े दिन और सब्र करें। उनको खूब ढाढ़स देना कि शोक न करें। यह समय का उलटफेर है। न इस तरह रहा, न उस तरह रहेगा। यदि ये विपत्तियाँ न झेलनी होतीं, तो हमारा वनवास ही क्यों होता। राज्य छोड़कर जंगलों में मारे-मारे फिरते। हर हालत में ईश्वर पर भरोसा रखना चाहिये, हम सब उसी की इच्छा के पुतले हैं।

हनुमान अंगूठी लेकर अपने सहायकों के साथ चले। किन्तु कई दिन के बाद जब लंका का कुछ ठीक पता न चला और रसद का सामान सबका-सब खर्च हो गया, तो अंगद और उनके कई साथी वापस चलने को तैयार हो गये। अंगद उनका नेता बन बैठा। यद्यपि वह सुग्रीव की आज्ञा का पालन कर रहा था, पर अभी तक अपने पिता का शोक उसके दिल में ताजा था। एक दिन उसने कहा — भाइयो, मैं तो अब आगे नहीं जा सकता। न हमारे पास रसद है, न यही खबर है कि अभी लंका कितनी दूर है। इस प्रकार घासपात खाकर हम लोग कितने दिन रहेंगे? मुझे तो ऐसा प्रतीत होता है कि चाचा सुग्रीव ने हमें इधर इसलिए भेजा है कि हम लोग भूख-प्यास से मर जायँ और उसे मेरी ओर से

कोई खटका न रहे। इसके सिवाय उसका और अभिप्राय नहीं। आप तो वहाँ आनन्द से बैठे राज कर रहे हैं और हमें मरने के लिए इधर भेज दिया है। वही रामचन्द्र तो हैं, जिन्होंने मेरे पिता को छल से कत्ल किया। मैं क्यों उनकी पत्नी की खोज में जान दूँ? मैं तो अब किष्किन्धानगर जाता हूँ और आप लोगों को भी यही सलाह देता हूँ।

और लोग तो अंगद के साथ लौटने पर लगभग प्रस्तुत-से हो गये; किन्तु हनुमान ने कहा 'जिन लोगों को अपने वचन का ध्यान न हो वह लौट जायँ। मैंने तो प्रण कर लिया है कि सीता जी का पता लगाये बिना न लौटूँगा, चाहे इस कोशिश में जान ही क्यों न देनी पड़े। पुरुषों की बात प्राण के साथ है। वह जो वायदा करते हैं, उससे कभी पीछे नहीं हटते। हम रामचन्द्र के साथ अपने कर्तव्य का पालन न करके अपनी समस्त जाति को कलंकित नहीं कर सकते। आप लोग लक्ष्मण के क्रोध से अभिज्ञ नहीं, मैं उनका क्रोध देख चुका हूँ। यदि आप लोग वायदा न पूरा कर सके तो समझ लीजिये कि किष्किन्धा का राज्य नष्ट हो जायगा।

हनुमान के समझाने का सबके ऊपर प्रभाव हुआ। अंगद ने देखा कि मैं अकेला ही रह जाता हूँ; तो उसने भी विप्लव का विचार छोड़ दिया। एक बार फिर सबने मजबूत कमर बाँधी और आगे बढ़े। बेचारे दिन भर इधर-उधर भटकते और रात को किसी

गुफा में पड़े रहते थे। सीता जी का कुछ पता न चलता था। यहाँ तक कि भटकते हुए एक महीने के करीब गुजर गया। राजा सुग्रीव ने चलते समय कह दिया था कि यदि तुम लोग एक महीने के अन्दर सीता जी का पता लगाकर न लौटोगे तो मैं किसी को जीवित न छोड़ूँगा। और यहाँ यह हाल था कि सीता जी की कुछ खबर ही नहीं। सबके-सब जीवन से निराश हो गये। समझ गये कि इसी बहाने से मरना था। इस तरह लौटकर मारे जाने से तो यह कहीं अच्छा है कि यहीं कहीं डूब मरें।

एक दिन विपत्ति के मारे यह बैठे सोच रहे थे कि किधर जायँ कि उन्हें एक बूढ़ा साधु आता हुआ दिखायी दिया। बहुत दिनों के बाद इन लोगों को आदमी की सूरत दिखायी दी। सबने दौड़कर उसे घेर लिया और पूछने लगे — क्यों बाबा, तुमने कहीं रानी सीता को देखा है, कुछ बतला सकते हो, वह कहाँ हैं ?

इस साधु का नाम सम्पाति था। वह उस जटायु का भाई था, जिसने सीताजी को रावण से छीन लेने की कोशिश में अपनी जान दे दी थी। दोनों भाई बहुत दिनों से अलग-अलग रहते थे। बोला — हाँ भाई, सीता को लंका का राजा रावण अपने रथ पर ले गया है। कई सप्ताह हुए, मैंने सीता जी को रोते हुए रथ पर जाते देखा था। क्या करूँ, बुढ़ापे से लाचार हूँ, वरना रावण से अवश्य लड़ता। तब से इसी फिक्र में घूम रहा हूँ, कि कोई मिल जाय तो

उससे यह समाचार कह दूँ। कौन जाने कब मृत्यु आ जाय। तुम लोग खूब मिले। अब मैंने अपना कर्तव्य पूरा कर दिया।

हनुमान ने पूछा — लंका किधर है और यहाँ से कितनी दूर है, बाबा?

सम्पाति बोला — दक्षिण की ओर चले जाओ। वहाँ तुम्हें एक समुद्र मिलेगा। समुद्र के उस पार लंका है। यहाँ से कोई सौ कोस होगा।

यह समाचार सुनकर उस दल के लोग बहुत प्रसन्न हुए। जीवन की कुछ आशा हुई। उसी समय चाल तेज कर दी और दो दिनों में रात-दिन चलकर सौ कोस की मंजिल पूरी कर दी। अब समुद्र उनके सामने लहरें मार रहा था। चारों ओर पानी ही पानी। जहाँ तक निगाह जाती, पानी ही पानी नज़र आता था। इन बेचारों ने इतना चौड़ा नद कहाँ देखा था। कई आदमी तो मारे भय के कांप उठे। न कोई नाव थी, न कोई डोंगी, समुद्र में जायँ तो कैसे जायँ। किसी की हिम्मत न पड़ती थी। नल और नील अच्छे इंजीनियर थे, मगर समुद्र में तैरने योग्य नाव बनाने के लिए न काई सामान था, न समय। इसके अलावा कोई युक्ति न थी कि उनमें से कोई समुद्र में तैरकर लंका में जाय और सीता जी की खबर लाये। अन्त में बूढ़े जामवन्त ने कहा — क्यों भाइयो, कब

तक इस तरह समुद्र को सहमी हुई आंखों से देखते रहोगे ? तुममें कोई इतनी हिम्मत नहीं रखता कि समुद्र को तैर कर लंका तक जाय ?

अंगद ने कहा — मैं तैरकर जा तो सकता हूँ, पर शायद लौटकर न आ सकूँ।

नल ने कहा — मैं तैरकर जा सकता हूँ, पर शायद लौटते वक्त आधी दूर आते-आते बेदम हो जाऊँ।

नील बोला — जा तो मैं भी सकता हूँ और शायद यहाँ तक लौट भी आऊँ। मगर लंका में सीता जी का पता लगा सकूँ, इसका मुझे विश्वास नहीं।

इस तरह सबों ने अपने-अपने साहस और बल का अनुमान लगाया। किन्तु हनुमान जी अभी तक चुप बैठे थे। जामवन्त ने उनसे पूछा — तुम क्यों चुप हो, भगत जी? बोलते क्यों नहीं? कुछ तुमसे भी हो सकेगा ?

हनुमान ने कहा — मैं लंका तक तैरकर जा सकता हूँ। तुम लोग यहीं बैठे हुए मेरी प्रतीक्षा करते रहना।

जामवन्त ने हंसकर कहा — इतना साहस होने पर भी तुम अब तक चुप बैठे थे।

हनुमान ने उत्तर दिया — केवल इसलिए कि मैं औरों को अपना गौरव और यश बढ़ाने का मौका देना चाहता था। मैं बोल उठता तो शायद औरों को यह खेद होता कि हनुमान न होते तो मैं इस काम को पूरा करके राजा सुग्रीव और राजा रामचन्द्र दोनों का प्यारा बन जाता। जब कोई तैयार न हुआ तो विवश होकर मुझे इस काम का बीड़ा उठाना पड़ा। आप लोग निश्चिन्त हो जायँ। मुझे विश्वास है कि मैं बहुत शीघर सफल होकर वापस आऊँगा।

यह कहकर हनुमान जी समुद्र की ओर पुरुषोचित दृढ पग उठाते हुए चले।

लंका में हनुमान

रासकुमारी से लंका तक तैरकर जाना सरल काम न था। इस पर दरियाई जानवरों से भी सामना करना पड़ा। किन्तु वीर हनुमान ने हिम्मत न हारी। संध्या होते-होते वह उस पार जा पहुंचे। देखा कि लंका का नगर एक पहाड़ की चोटी पर बसा हुआ है। उसके महल आसमान से बातें कर रहे हैं। सड़कें

चौड़ी और साफ हैं। उन पर तरह-तरह की सवारियाँ दौड़ रही हैं। पग-पग पर सज्जित सिपाही खड़े पहरा दे रहे हैं। जिधर देखिये, हीरे-जवाहर के ढेर लगे हैं। शहर में एक भी गरीब आदमी नहीं दिखायी देता। किसी-किसी महल के कलश सोने के हैं, दीवारों पर ऐसी सुन्दर चित्रकारी की हुई है कि मालूम होता है कि सोने की हैं। ऐसा जनपूर्ण और श्रीपूर्ण नगर देखकर हनुमान चकरा गये। यहाँ सीताजी का पता लगाना लोहे के चने चबाना था। यह तो अब मालूम ही था कि सीता रावण के महल में होंगी। किन्तु महल में प्रवेश कैसे हो? मुख्य द्वार पर संतरियों का पहरा था। किसी से पूछते तो तुरन्त लोगों को उन पर सन्देह हो जाता। पकड़ लिये जाते। सोचने लगे, राजप्रासाद के अन्दर कैसे घुसूँ? एकाएक उन्हें एक बड़ा छतनार वृक्ष दिखायी दिया, जिसकी शाखाएँ महल के अन्दर झुकी हुई थीं। हनुमान प्रसन्नता से उछल पड़े। पहाड़ों में तो वे पैदा हुए थे। बचपन ही से पेड़ों पर चढ़ना, उचकना, कूदना सीखा था। इतनी फुरती से पेड़ों पर चढ़ते थे कि बन्दर भी देखकर शरमा जाय। पहरेदारों की आंख बचाकर तुरन्त उस पेड़ पर चढ़ गये और पत्तियों में छिपे बैठे रहे। जब आधी रात हो गयी और चारों ओर सन्नाटा छा गया, रावण भी अपने महल में आराम करने चला गया तो वह धीरे से एक डाल पकड़कर महल के अन्दर कूद पड़े।

महल के अन्दर चमक-दमक देखकर हनुमान की आंखों में चकाचौंध आ गयी। स्फटिक की पारदर्शी भूमि थी। उस पर फानूस की किरण पड़ती थी, तो वह दम्दम करने लगती थी। हनुमान ने दबे-पाँव महलों में घूमना शुरू किया। रावण को देखा, एक सोने के पलंग पर पड़ा सो रहा है। उसके कमरे से मिले हुए मन्दोदरी और दूसरी रानियों के कमरे हैं। मन्दोदरी का सौंदर्य देखकर हनुमान को सन्देह हुआ कि कहीं यही सीताजी न हों। किन्तु विचार आया, सीताजी इस प्रकार इत्र और जवाहर से लदी हुई भला मीठी नींद के मज़े ले सकती हैं? ऐसा संभव नहीं। यह सीताजी नहीं हो सकतीं। प्रत्येक महल में उन्होंने सुन्दर रानियों को मज़े से सोते पाया। कोई कोना ऐसा न बचा, जिसे उन्होंने न देखा हो। पर सीताजी का कहीं निशान नहीं। वह रंजोग़म से घुली हुई सीता कहीं दिखायी न दीं। हनुमान को संदेह हुआ कि कहीं रावण ने सीताजी को मार तो नहीं डाला! जीवित होतीं, तो कहाँ जातीं ?

हनुमान सारी रात असमंजस में पड़े रहे, जब सवेरा होने लगा और कौए बोलने लगे, तो वह उस पेड़ की डाल से बाहर निकल आये। मगर अब उन्हें किसी ऐसी जगह की ज़रूरत थी, जहाँ वह दिन भर छिप सकें। कल जब वह वहाँ आये तो शाम हो गयी थी। अंधेरे में किसी ने उन्हें देखा नहीं। मगर सुबह को उनका

लिवास और रूपरंग देखकर निश्चय ही लोग भड़कते और उन्हें पकड़ लेते। इसलिए हनुमान किसी ऐसी जगह की तलाश करने लगे जहाँ वह छिपकर बैठ सकें। कल से कुछ खाया न था। भूख भी लगी हुई थी। बाग़ के सिवा और मन के फल कहाँ मिलते। यही सोचते चले जाते थे कि कुछ दूर पर एक घना बाग़ दिखायी दिया। अशोक के बड़े-बड़े पेड़ हरी-हरी सुन्दर पत्तियों से लदे खड़े थे। हनुमान ने इसी बाग़ में भूख मिटाने और दिन काटने का निश्चय किया। बाग़ में पहुँचते ही एक पेड़ पर चढ़कर फल खाने लगे।

एकाएक कई स्त्रियों की आवाजें सुनायी देने लगीं। हनुमान ने इधर निगाह दौड़ायी तो देखा कि परम सुन्दरी स्त्री मैले-कुचैले कपड़े पहने, सिर के बाल खोले, उदास बैठी भूमि की ओर ताक रही है और कई राक्षस स्त्रियाँ उसके समीप बैठी हुई उसे समझा रही हैं। हनुमान उस सुन्दरी को देखकर समझ गये कि यही सीताजी हैं। उनका पीला चेहरा, आँसुओं से भीगी हुई आँखें और चिन्तित मुख देखकर विश्वास हो गया। उनके जी में आया कि चलकर इस देवी के चरणों पर सिर रख दूँ और सारा हाल कह सुनाऊँ। वह दरख्त से उतरना ही चाहते थे कि रावण को बाग़ में आते देखकर रुक गये। रावण घमण्ड से अकड़ता हुआ सीता के पास जाकर बोला'सीता, देखो, कैसा सुहावना समय है, फूलों की

सुगन्ध से मस्त होकर हवा झूम रही है! चिड़ियाँ गा रही हैं, फूलों पर भौंरे मँडरा रहे हैं। किन्तु तुम आज भी उसी प्रकार उदास और दुःखित बैठी हुई हो। तुम्हारे लिए जो मैंने बहुमूल्य जोड़े और आभूषण भेजे थे, उनकी ओर तुमने आंख उठाकर भी नहीं देखा। न सिर में तेल डाला, न इत्र मला। इसका क्या कारण है? क्या अब भी तुम्हें मेरी दशा पर दया न आयी।

सीताजी ने घृणा की दृष्टि से उसकी ओर देखकर कहा — अत्याचारी राक्षस, क्यों मेरे घाव पर नमक छिड़क रहा है? मैं तुझसे हजार बार कह चुकी कि जब तक मेरी जान रहेगी, अपने पति के प्यारे चरणों का ध्यान करती रहूँगी। मेरे जीते-जी तेरे अपवित्र विचार कभी पूरे न होंगे। मैं तुझसे अब भी कहती हूँ कि यदि अपनी कुशल चाहता है तो मुझे रामचन्द्र के पास पहुंचा दे, और उनसे अपनी भूलों की क्षमा मांग ले। अन्यथा जिस समय उनकी सेना आ जायेगी, तुझे भागने की कहीं जगह न मिलेगी। उनके क्रोध की ज्वाला तुझे और तेरे सारे परिवार को जलाकर राख कर देगी। और खूब कान खोलकर सुन ले, कि वह अब यहाँ आया ही चाहते हैं।

रावण यह बातें सुनकर लाल हो गया और बोला — बस, जबान संभाल, मूर्ख स्त्री! मुझे मालूम हो गया कि तेरे साथ नरमी से काम न चलेगा। अगर तू एक निर्बल स्त्री होकर जिद कर सकती है,

तो मैं लंका का महाराजा होकर क्या जिद नहीं कर सकता? जिसपुरुष के बल पर तुझे इतना अभिमान है, उसे मैं यों मसल डालूँगा, जैसे कोई कीड़े को मसलता है। तू मुझे सख्ती करने पर विवश कर रही है; तो मैं भी सख्ती करूँगा। बस, आज से एक मास का अवकाश तुझे और देता हूँ। अगर उस वक्त भी तेरी आंख न खुली तो फिर या तो तू रावण की रानी होगी या तो तेरी लाश चील और कौवे नोच-नोचकर खायेंगे।

रावण चला गया, तो राक्षस स्त्रियों ने सीता जी को समझाना आरम्भ किया — तुम बड़ी नादान हो सीता, इतना बड़ा राजा तुम्हारी इतनी खुशामद करता है, फिर भी तुम कान नहीं देतीं। अगर वह जबरदस्ती करना चाहे तो आज ही तुम्हें रानी बना ले। मगर कितना नेक है कि तुम्हारी इच्छा के विरुद्ध कोई काम नहीं करना चाहता। उसके साथ तुम्हारी बेपरवाही उचित नहीं। व्यर्थ रामचन्द्र के पीछे जान दे रही हो। लंका की रानी बनकर जीवन के सुख उठाओ। राम को भूल जाओ। वह अब यहाँ नहीं आ सकते और आ जायँ तो राजा रावण का कुछ भी नहीं बिगाड़ सकते।

सीता जी ने क्रोधित होकर कहा — लाज नहीं आती? ऐसे पापी को जो दूसरे की स्त्रियों को बलात उठा लाता है, तुम नेक और धर्मात्मा कहती हो? उससे बड़ा पापी तो संसार में न होगा !

हनुमान ऊपर बैठे हुए इन स्त्रियों की बातें सुन रहे थे। जब वह सब वहाँ से चली गयीं और सीताजी अकेली रह गयीं तो हनुमानजी ने ऊपर से रामचन्द्र की अंगूठी उनके सामने गिरा दी। सीताजी ने अंगूठी उठाकर देखी तो रामचन्द्र की थी। शोक और आश्चर्य से उनका कलेजा धड़कने लगा। शोक इस बात का हुआ कि कहीं रावण ने रामचन्द्र को मरवा न डाला हो। आश्चर्य इस बात का था कि रामचन्द्र की अंगूठी यहाँ कैसे आयी। वह अंगूठी को हाथ में लिये इसी सोच में बैठी हुई थीं कि हनुमान पेड़ से उतरकर उनके सामने आये और उनके चरणों पर सिर झुका दिया।

सीता जी ने और भी आश्चर्य में आकर पूछा — तुम कौन हो? क्या यह अंगूठी तुम्हीं ने गिरायी है ? तुम्हारी सूरत से मालूम होता है कि तुम सज्जन और वीर हो। क्या बतला सकते हो कि तुम्हें अंगूठी कहाँ मिली ?

हनुमान ने हाथ जोड़कर कहा — माता जी! मैं श्री रामचन्द्र जी के पास से आ रहा हूँ। यह अंगूठी उन्हीं ने मुझे दी थी। मैं आपको देखकर समझ गया कि आप ही जानकी जी हैं। आपकी खोज में सैकड़ों सिपाही छूटे हुए हैं। मेरा सौभाग्य है कि आपके दर्शन हुए।

सीताजी का पीला चेहरा खिल गया। बोलीं — क्या सचमुच तुम मेरे स्वामीजी के पास से आ रहे हो? अभी तक वे मेरी याद कर रहे हैं ?

हनुमान — आपकी याद उन्हें सदैव सताया करती है। सोते-जागते आप ही के नाम की रट लगाया करते हैं। आपका पता अब तक न था। इस कारण से आपको छुड़ा न सकते थे। अब ज्योंही मैं पहुँचकर उन्हें आपका समाचार दूँगा, वह तुरन्त लंका पर आक्रमण करने की तैयारी करेंगे।

सीता जी ने चिंतित होकर पूछा — उनके पास इतनी बड़ी सेना है, जो रावण के बल का सामना कर सके ?

हनुमान ने उत्साह के साथ कहा — उनके पास जो सेना है, उसका एक-एक सैनिक एक-एक सेना का वध कर सकता है! मैं एक तुच्छ सिपाही हूँ; पर मैं दिखा दूँगा कि लंका की समस्त सेना किस प्रकार मुझसे हार मान लेती है।

सीता जी — रामचन्द्र को यह सेना कहाँ मिल गयी। मुझसे विस्तृत वर्णन करो, तब मुझे विश्वास आये।

हनुमान — वह सेना राजा सुग्रीव की है, जो रामचन्द्र के मित्र और सेवक हैं। रामचन्द्र ने सुग्रीव के भाई बालि को मारकर किष्किन्धा का राज्य सुग्रीव को दिला दिया है। इसीलिए सुग्रीव

उन्हें अपना उपकारक समझते हैं। उन्होंने आपका पता लगाकर आपको छुड़ाने में रामचन्द्र की सहायता करने का प्रण कर लिया है। अब आपकी विपत्तियाँ बहुत शीघ्र अन्त हो जायँगी।

सीता जी ने रोकर कहा — हनुमान ! आज का दिन बड़ा शुभ है कि मुझे अपने स्वामी का समाचार मिला। तुमने यहाँ की सारी दशा देखी है। स्वामी से कहना, सीता की दशा बहुत दुःखद है; यदि आप उसे शीघर न छुड़ायेंगे तो वह जीवित न रहेंगी। अब तक केवल इसी आशा पर जीवित हैं, किन्तु दिन-प्रतिदिन निराशा से उसका हृदय निर्बल होता जा रहा है।

हनुमान ने सीता जी को बहुत आश्वासन दिया और चलने को तैयार हुए; किन्तु उसी समय विचार आया कि जिस प्रकार सीता जी के विश्वास के लिए रामचन्द्र की अंगूठी लाया था उसी प्रकार रामचन्द्र के विश्वास के लिए सीता जी की भी कोई निशानी ले चलना चाहिए! बोले — माता! यदि आप उचित समझें तो अपनी कोई निशानी दीजिए जिससे रामचन्द्र को विश्वास आ जाये कि मैंने आपके दर्शन पाये हैं।

सीता जी ने अपने सिर की वेणी उतारकर दे दी। हनुमान ने उसे कमर में बांध लिया और सीता जी को प्रणाम करके विदा हुए।

लंकादाह

अशोकों के बाग से चलते-चलते हनुमान के जी में आया कि तनिक इन राक्षसों की वीरता की परीक्षा भी करता चलूँ। देखूँ, यह सब युद्ध की कला में कितने निपुण हैं। आखिर रामचन्द्र जी इन सबों का हाल पूछेंगे तो क्या बताऊँगा। यह सोचकर उन्होंने बाग़ के पेड़ों को उखाड़ना शुरू किया। तुम्हें आश्चर्य होगा कि उन्होंने वृक्ष कैसे उखाड़े होंगे। हम तो एक पौधा भी जड़ से नहीं उखाड़ सकते। किन्तु हनुमान जी अपने समय के अत्यंत बलवान पुरुष थे। जब उन्होंने हिन्दुस्तान से लंका तक समुद्र को तैरकर पार किया, तो छोटे-मोटे पेड़ों का उखाड़ना क्या कठिन था। कई पेड़ उखाड़े। कई पेड़ों की शाखायें तोड़ डालीं, और फल तो इतने तोड़कर गिरा दिये कि उनका फर्श-सा बिछ गया। बाग़ के रक्षकों ने यह हाल देखा तो एकत्रित होकर हनुमान को रोकने आये। किन्तु यह किसकी सुनते थे! उन सबों को डालियों से मार-मारकर भगा दिया। कई आदमियों को जान से मार डाला। तब बाहर से और कितने ही सिपाही आकर हनुमान को पकड़ने लगे। मगर आपने उन्हें मार भगाया। धीरे-धीरे राजा रावण के पास खबर पहुंची कि एक आदमी न जाने किधर से अशोकों के

वन में घुस आया है और वन का सत्यानाश किये डालता है। कई मालियों और सैनिकों को मार भगाया है। किसी प्रकार नहीं मानता।

रावण ने क्रोध से दांत पीसकर कहा — तुम लोग उसे पकड़कर मेरे सामने लाओ।

रक्षक — हुजूर, वह इतना बलवान है कि कोई उसके पास जा ही नहीं सकता।

रावण — चुप रहो नालायको! बाहर का एक आदमी हमारे बाग़ में घुसकर यह तूफान मचा रहा है और तुम लोग उसे गिरफ्तार नहीं कर सकते? बड़े शर्म की बात है।

यह कहकर रावण ने अपने लड़के अक्षयकुमार को हनुमान को गिरफ्तार कर लाने के लिए भेजा। अक्षयकुमार कई सौ वीरों की सेना लेकर हनुमान से लड़ने चला। हनुमान उन्हें आते देख एक मोटा-सा वृक्ष उठा लिया और उन आदमियों पर टूट पड़े। पहले ही आक्रमण में कई आदमी घायल हो गये। कुछ भाग खड़े हुए। तब अक्षयकुमार ने ललकार कर कहा — यदि वीर है तो सामने आ जा ! यह क्या गंवारों की तरह सूखी टहनी लेकर घुमा रहा है।

हनुमान ताल ठोंककर अक्षयकुमार पर झपटे और उसकी टांग पकड़कर इतनी जोर से पटका कि वह वहीं ठंडा हो गया। और सब आदमी हुर्र हो गये।

रावण को जब अक्षयकुमार के मारे जाने का समाचार मिला तब उसके क्रोध की सीमा न रही। अभी तक उसने हनुमान को कोई साधारण सैनिक समझ रखा था। अब उसे ज्ञात हुआ कि यह कोई अत्यन्त वीर पुरुष है। अवश्य इसे रामचन्द्र ने यहाँ सीता का पता लगाने के लिए भेजा है। इस आदमी को जरूर दण्ड देना चाहिए। कड़ककर बोला — इस दरबार में इतने सूरमा मौजूद हैं, क्या किसी में भी इतना साहस नहीं कि इस दुष्ट को पकड़कर मेरे सामने लाये? लंका के इस राज में एक भी ऐसा आदमी नहीं ? मेरे हथियार लाओ, मैं स्वयं जाकर उसे गिरफ्तार करूँगा। देखूँ, उसमें कितना बल है !

सारे दरबार में सन्नाटा छा गया। रावण का दूसरा पुत्र मेघनाद भी वहाँ बैठा हुआ था। अब तक उसने हनुमान का सामना करना अपनी मर्यादा के विरुद्ध समझा था, रावण को उद्यत देखकर उठ खड़ा हुआ और बोला — उसके वध के लिए मैं क्या कम हूँ, जो आप जा रहे हैं? मैं अभी जाकर उसे बांध लाता हूँ। आप यहीं बैठें।

मेघनाद अत्यन्त वीर, साहसी और युद्ध की कला में अत्यन्त निपुण था। धनुषबाण हाथ में लेकर अशोकवाटिका में पहुंचा और हनुमान से बोला — क्यों रे पगले, क्या तेरे कुदिन आये हैं, जो यहाँ ऐसी अन्धेर मचा रहा है ? हम लोगों ने तुझे यात्री समझकर जाने दिया और तू शेर हो गया। लेकिन मालूम होता है, तेरे सिर पर मौत खेल रही है। आ जा; सामने ! बाग़ के मालियों और मेरे अल्पवयस्क भाई को मारकर शायद तुझे घमण्ड हो गया है। आ, तेरा घमण्ड तोड़ दूँ।

हनुमान बल में मेघनाद से कम न थे; किन्तु उस समय उससे लड़ना अपने हेतु के विरुद्ध समझा। मेघनाद साधारण पुरुष न था। बराबर का मुकाबला था। सोचा, कहीं इसने मुझे मार डाला, तो रामचन्द्र के पास सीताजी का समाचार भी न ले जा सकूँगा। मेघनाद के सामने ताल ठोंककर खड़े तो हुए, पर उसे अपने ऊपर जान-बूझकर विजय पा लेने दिया। मेघनाद ने समझा, मैंने इसे दबा लिया। तुरन्त हनुमान को रस्सियों से जकड़ दिया और मूँछों पर ताव देता हुआ रावण के सामने आकर बोला 'महाराज, यह आपका बन्दी उपस्थित है।

रावण क्रोध से भरा तो बैठा ही था, हनुमान को देखते ही बेटे के खून का बदला लेने के लिए उसकी तलवार म्यान से निकल पड़ी, निकट था कि रस्सियों में जकड़े हुए हनुमान की गर्दन पर

उसकी तलवार का वार गिरे कि रावण के भाई विभीषण ने खड़े होकर कहा — भाई साहब! पहले इससे पूछिये कि यह कौन है, और यहाँ किसलिए आया है। संभव है, ब्राह्मण हो तो हमें ब्रह्म हत्या का पाप लग जाय।

हनुमान ने कहा — मैं राजा सुग्रीव का दूत हूँ। रामचन्द्र जी ने मुझे सीता जी का पता लगाने के लिए भेजा है। मुझे यहाँ सीता जी के दर्शन हो गये। तुमने बहुत बुरा किया कि उन्हें यहाँ उठा लाये। अब तुम्हारी कुशल इसी में है कि सीता जी को रामचन्द्र जी के पास पहुंचा दो। अन्यथा तुम्हारे लिए बुरा होगा। तुमने राजा बालि का नाम सुना होगा। उसने तुम्हें एक बार नीचा भी दिखाया था। उसी राजा बालि को रामचन्द्र जी ने एक बाण से मार डाला। खरदूषण की मृत्यु का हाल तुमने सुना ही होगा। उनसे तुम किसी प्रकार जीत नहीं सकते।

यह सुनकर कि यह रामचन्द्र जी का दूत है, और सीता जी का पता लगाने के लिए आया है, रावण का खून खौलने लगा। उसने फिर तलवार उठायी; मगर विभीषण ने फिर उसे समझाया — महाराज! राजदूतों को मारना साम्राज्य की नीति के विरुद्ध है। आप इसे और जो दण्ड चाहे दें, किन्तु वध न करें। इससे आपकी बड़ी बदनामी होगी।

विभीषण बड़ा दयालु, सच्चा और ईमानदार आदमी था। उचित बात कहने में उसकी ज़बान कभी नहीं रुकती थी। वह रावण को कई बार समझा चुका था कि सीता जी को रामचन्द्र के पास भेज दीजिये। मगर रावण उनकी बातों की कब परवाह करता था। इस वक्त भी विभीषण की बात उसे बुरी लगी। किन्तु साम्राज्य के नियम को तोड़ने का उसे साहस न हुआ। दिल में ऐंठकर तलवार म्यान में रख ली और बोला — तू बड़ा भाग्यवान है कि इस समय मेरे हाथ से बच गया। तू यदि सुग्रीव का दूत न होता तो इसी समय तेरे टुकड़े-टुकड़े कर डालता। तुझ जैसे धृष्ट आदमी का यही दण्ड है। किन्तु मैं तुझे बिल्कुल बेदाग़ न छोड़ूँगा। ऐसा दण्ड दूँगा कि तू भी याद करे कि किसी से पाला पड़ा था।

रावण सोचने लगा, इसे ऐसा कौन-सा दण्ड दिया जाय कि इसकी जान तो न निकले, पर यह भली प्रकार अपमानित और अप्रतिष्ठित हो। इसके साथ ही सांसत भी ऐसी हो कि जीवनपर्यन्त न भूले। फिर इधर आने का साहस ही न हो। सोचते-सोचते उसे एक अनोखा हास्य सूझा। वह मारे खुशी के उछल पड़ा। इसे बन्दर बनाकर इसकी दुम में आग लगा दी जाय। विचित्र और अनोखा तमाशा होगा। राक्षसों ने ऐसा तमाशा कभी न देखा होगा। बड़ा आनन्द रहेगा। हज़ारों आदमी उनके पीछे 'लेना-लेना' करके

दौड़ेंगे और वह इधर-उधर उचकता फिरेगा। तुरन्त मेघनाद को आज्ञा दी कि इस आदमी का मुँह रंग दो, इसके शरीर पर भूरे-भूरे रोयें लगा दो और एक लम्बी दुम लगाकर अच्छा खासा लंगूर बना दो। उसकी दुम में लत्ते बांधकर तेल में भिगा दो और उसमें आग लगाकर छोड़ दो। शहर में दौंड़ी पिटवा दो कि आज शाम को एक नया, अनोखा और आश्चर्य में डालने वाला तमाशा होगा। सब लोग अपनी छतों पर से तमाशा देखें।

यह आदेश पाते ही राक्षसों ने हनुमान को बन्दर बनाना शुरू कर दिया। कोई मुँह रंगता था, कोई शरीर पर रोयें चिपकाता था, कोई दुम लगाता था। दमके-दम में बन्दर का स्वांग बना कर खड़ा हो गया। खूब लम्बी दुम थी। फिर लोग चारों तरफ से लत्ते ला-लाकर उसमें बांधने लगे, इधर शहर में दौंड़ी पिट गयी। राक्षस लोग जल्दी-जल्दी शाम को खाना खा, अच्छे-अच्छे कपड़े पहन अपनी-अपनी छतों पर डट गये। रावण की सैकड़ों रानियाँ थीं। सबकी-सब गहने-कपड़ों से सज्जित होकर यह तमाशा देखने के लिए सबसे ऊंची छत पर जा बैठीं। इतने में शाम भी हो गयी। हनुमान की दुम पर तेल छिड़का जाने लगा। मनों तेल डाल दिया गया। जब दुम खूब तेल से तर हो गयी, तो एक आदमी ने उसमें आग लगा दी लपटें भड़क उठीं। चारों तरफ तालियां बजने लगीं। तमाशा शुरू हो गया।

हनुमान अपने इस अपमान और हंसी पर दिल में खूब कुढ़ रहे थे। इससे तो कहीं अच्छा होता अगर उस दुष्ट ने मार डाला होता। दिल में कहा, अगर इस अपमान का बदला न लिया तो कुछ न किया, और वह भी इसी वक्त। ऐसा तमाशा दिखाऊँ कि आयु-पर्यन्त न भूले। सारे शहर की होली हो जाय। जब दुम में आग लग गयी तो वह एक पेड़ पर चढ़ गये। इस कला में उनका समान न था। पेड़ की एक शाखा राजमहल में झुकी हुई थी। उसी शाखा से कूदकर वह रनिवास में पहुँच गये और एक क्षण में सारा राजमहल जलने लगा। सब लोग छतों पर थे। कोई रोकने वाला न था। बहुमूल्य कपड़े और सजावट के सामान, फर्श, गद्दे, कालीन, परदे, पंखे, इसमें आग लगते क्या देर थी। हनुमान जिधर से अपनी जलती हुई दुम लेकर निकल जाते थे, उधर ही लपटें उठने लगती थीं।

राजमहल में आग लगाकर हनुमान बस्ती की तरफ झुके। छतों से छतें मिली हुई थीं। एक घर से दूसरे घर में कूद जाना कठिन न था। घण्टे भर में सारा शहर आग के परदे में ◌ंक गया। चारों तरफ कुहराम मच गया। कोई अपना असबाब निकालता था, कोई पानी पानी चिल्लाता था। कितने ही आदमी जो नीचे न उतर सके, जलभुन गये। संयोग से उसी समय जोर की हवा चलने लगी, आग और भी भड़क उठी, मानो हवा अग्नि

देवता की सहायता करने आयी है। ऐसा मालूम होता था कि आसमान से आग के तख्ते बरस रहे हैं।

शहर की होली बनाकर हनुमान समुद्र की तरफ भागे और पानी में कूदकर दुम की आग बुझायी। उन्होंने लंकावासियों को सचमुच विचित्र और अनोखा तमाशा दिखा दिया।

आक्रमण की तैयारी

हनुमान ने रातोंरात समुद्र को पार किया और अपने साथियों से जा मिले। यह बेचारे घबरा रहे थे कि न जाने हनुमान पर क्या विपत्ति आयी। अब तक नहीं लौटे। अब हम लोग सुग्रीव को क्या मुँह दिखावेंगे। रामचन्द्र के सामने कैसे जायेंगे। इससे तो यह कहीं अच्छा है कि यहीं डूब मरें। इतने ही में हनुमान जा पहुंचे। उन्हें देखते ही सबके-सब खुशी से उछलने लगे। दौड़-दौड़कर उनसे गले मिले और पूछने लगे‘कहो भाई, क्या कर आये? सीता जी का कुछ पता चला? रावण से कुछ बातचीत हुई? हम लोग तो बहुत विकल थे।

हनुमान ने लंका का सारा हाल कह सुनाया। रावण के महल में जाना, अशोक के वन में सीता जी के दर्शन पाना, वाटिका को उजाड़ना, राक्षसों को मारना, मेघनाद के हाथों गिरफ्तार होना, फिर लंका को जलाना, सारी बातें विस्तार से वर्णन कीं। सब ने हनुमान की वीरता और कौशल को सराहा और गा-बजाकर सोये। मुँह-अंधेरे किष्किंधापुरी को रवाना हुए। सैकड़ों कोसों की यात्रा थी। पर ये लोग अपनी सफलता पर इतने प्रसन्न थे कि न दिन को आराम करते, न रात को सोते। खाने-पीने की किसी को सुध न थी। शीघर रामचन्द्र जी के पास पहुँचकर यह शुभ समाचार सुनाने के लिए अधीर हो रहे थे। आखिर कई दिनों के बाद किष्किन्धा पहाड़ दिखायी दिया। उसी के निकट राजा सुग्रीव का एक बाग था। उसका नाम मधुवन था। उसमें बहुत-सी शहद की मक्खियाँ पली थीं। सुग्रीव को जब शहद की जरूरत पड़ती तो उसी बाग से लेता था।

जब यह लोग मधुवन के पास पहुंचे तो शहद के छत्ते को देखकर उनकी लार टपक पड़ी। बेचारों ने कई दिन से खाना नहीं खाया था। तुरन्त बाग में घुस गये और शहद पीना आरम्भ कर दिया। बाग़ के मालियों ने मना किया तो उन्हें खूब पीटा। शहद की लूट मच गयी। सुग्रीव को जब समाचार मिला कि हनुमान, अंगद, जामवंत इत्यादि मधुवन में लूट मचाये हुए हैं, तो

समझ गया कि यह लोग सफल होकर लौटे हैं। असफल लौटते तो यह शरारत कब सूझती। तुरन्त उनकी अगवानी करने चल खड़ा हुआ। इन लोगों ने उसे आते देखा तो और भी उधम मचाना शुरू किया।

सुग्रीव ने हंसकर कहा — मालूम होता है, तुम लोगों ने कई-कई दिन से मारे खुशी के खाना नहीं खाया है। आओ, तुम्हें गले लगा लूँ।

जब सब लोग सुग्रीव से गले मिल चुके, तो हनुमान ने लंका का सारा वृत्तान्त कह सुनाया। सुग्रीव खुशी से फूला न समाया। उसी समय उन लोगों को साथ लेकर रामचन्द्र के पास पहुंचा। रामचन्द्र भी उनकी भावभंगी से ताड़ गये कि यह लोग सीता जी का पता लगा लाये। इधर कई दिनों से दोनों भाई बहुत निराश हो रहे थे। इन लोगों को देखकर आशा की खेती हरी हो गयी।

रामचन्द्र ने पूछा — कहो; क्या समाचार लाये? सीता जी कहाँ हैं? उनका क्या हाल है?

हनुमान ने विनोद करके कहा — महाराज, कुछ इनाम दिलवाइये तो कहूँ।

राम — धन्यवाद के सिवा मेरे पास और क्या है जो तुम्हें दूँ। जब तक जीवित रहूँगा, तुम्हारा उपकार मानूँगा।

हनुमान — वायदा कीजिए कि मुझे कभी अपने चरणों से विलग न कीजियेगा।

राम — वाह! यह तो मेरे ही लाभ की बात है। तुम जैसे निष्ठावान मित्र किसको सुलभ होते हैं! हम और तुम सदैव साथ रहें, इससे बढ़कर मेरे लिए प्रसन्नता की बात और क्या हो सकती है? सीता जी क्या लंका में हैं?

हनुमान — हाँ महाराज, लंका के अत्याचारी राजा रावण ने उन्हें एक बाग में कैद कर रखा है और नाना प्रकार के कष्ट दे रहा है। कभी धमकाता है, कभी फुसलाता है; किन्तु वह उसकी तनिक भी परवाह नहीं करतीं। जब मैंने आपकी अंगूठी दी, तो उसे कलेजे से लगा लिया और देर तक रोती रहीं। चलते समय मुझसे कहा कि प्राणनाथ से कहना कि शीघर मुझे इस कैद से मुक्त करें, क्योंकि अब मुझमें अधिक सहने का बल नहीं। यह कहकर हनुमान ने सीता जी की वेणी रामचन्द्र के हाथ में रख दी।

रामचन्द्र ने इस वेणी को देखा तो बरबस उनकी आंखों से आँसू जारी हो गये। उसे बारबार चूमा और आंखों से लगाया। फिर

बड़ी देर तक सीता जी ही के सम्बन्ध में बातें पूछते रहे। इन बातों से उनका जी ही न भरता था। वह कैसे कपड़े पहने हुए थीं ? बहुत दुबली तो नहीं हो गयी हैं? बहुत रोया तो नहीं करतीं? हनुमान जी प्रत्येक बात का उत्तर देते जाते थे और मन में सोचते थे, इन स्त्री और पुरुष में कितना प्रेम है!

थोड़ी देर तक कुछ सोचने के बाद रामचन्द्र ने सुग्रीव से कहा — अब आक्रमण करने में देर न करनी चाहिये। तुम अपनी सेना को कब तैयार कर सकोगे ?

सुग्रीव ने कहा — महाराज ? मेरी सेना तो पहले से ही तैयार है, केवल आपके आदेश की देर है।

राम — युद्ध के सिवा और कोई चारा नहीं है।

सुग्रीव — ईश्वर ने चाहा तो हमारी जीत होगी।

राम — औचित्य की सदैव जीत होती है।

विभीषण

हनुमान के चले जाने के बाद राक्षसों को बड़ी चिन्ता हुई। उन्होंने सोचा, जिस सेना का एक सैनिक इतना बलवान और वीर है, उस सेना से भला कौन लड़ेगा! उस सेना का नायक कितना वीर होगा! एक आदमी ने आकर सारी लंका में हलचल मचा दी। यदि वीर मेघनाद स्वयं न जाता तो सम्भवतः हमारी सारी सेना मिलकर भी उसे न पकड़ सकती। कितना गजब का चतुर आदमी था? दुम तो लगायी गयी उसकी हंसी उड़ाने के लिए, उसका बदला उसने यह दिया कि सारी लंका जला डाली; और कोई भी न पकड़ सका साफ निकल गया। अब रामचन्द्र की सेना दो-चार दिन में लंका पर चढ़ आयेगी। राजा रावण और राजकुमार मेघनाद कितने ही वीर हो; किन्तु सेना का सामना नहीं कर सकते। इस एक स्त्री के लिये रावण सारे देश को नष्ट करना चाहता है। यदि वह रामचन्द्र के पास न भेज दी गयी और उनसे क्षमा न मांगी गयी, तो अवश्य लंका पर विपत्ति आयेगी।

दूसरे दिन शहर से खास-खास आदमी रावण की सेवा में उपस्थित हुए और विनय की — महाराज! आपके राज्य में हम लोग अब तक बड़े आराम और चैन से रहे, अब हमें ऐसा भय हो रहा है कि इस देश पर कोई विपत्ति आने वाली है। हमारी आपसे यही प्रार्थना है कि आप सीता जी को रामचन्द्र के पास पहुँचा दें और देश को इस आने वाली विपत्ति से बचा लें।

रावण भी कल रात से इसी चिन्ता में पड़ा हुआ था; किन्तु अपनी प्रजा के सामने वह अपने दिल की कमजोरी को प्रकट न कर सका। उसे इसका धैर्य न था कि कोई उसके कार्यों पर आपत्ति करे। आपत्ति सुनते ही वह आपे से बाहर हो जाता था। उसका विचार था कि परजा का काम है राजा की आज्ञा मानना, न कि उसके कामों पर आपत्ति करना। क्रोध से बोला — तुम्हें ऐसी प्रार्थना करते हुए लाज नहीं आती? जिस आदमी ने मेरी बहन की मर्यादा धूल में मिलायी, उससे इसका बदला न लूँ! ऐसा कभी नहीं हो सकता। रावण इतना शीलरहित और निर्लज्य नहीं है। सीता मेरी है और मेरी रहेगी। तुम लोग जाकर अपना काम देखो। देश की रक्षा का मैं उत्तरदायी हूँ। मैं तुमसे इस विषय में कोई परामर्श लेना नहीं चाहता।

यह फटकार सुनकर सब लोग चुप हो गये। सभी रावण के क्रोध से डरते थे, किन्तु विभीषण परजा का सच्चा मित्र था और न्यायोचित बात कहने में उनकी ज़बान कभी नहीं रुकती थी। बोला, महाराज! राजा का धर्म है कि जब प्रजा को पथभ्रष्ट होते देखे तो दण्ड दे, उसी प्रकार परजा का भी धर्म है कि जब राजा को पथभ्रष्ट होते देखे तो समझाये। आपको रामचन्द्र से अपमान का बदला लेना था तो उन पर आक्रमण करते। उस समय सारा देश आपका साथ देता। सीताजी को यहाँ लाकर कैद कर रखने

में आपने अन्याय किया है और हमारा कर्तव्य है कि हम आपको समझायें। अगर आपने सीताजी को न वापस किया तो लंका पर अवश्य विपत्ति आयेगी।

रावण ने जब देखा कि उसका भाई भी प्रजा का पक्ष ले रहा है, तो और भी क्रुद्ध होकर बोला — विभीषण, तुम पूजा करने वाले, पोथी-पुराण के कीड़े हो, राज्य के विषय में जबान खोलने का तुम्हें अधिकार नहीं। चुप रहो, मैं तुमसे अधिक योग्य हूँ।

विभीषण — मैं आपको जता देना चाहता हूँ कि इस लड़ाई में आपका साथ परजा कदापि न देगी।

रावण की आँखों से चिनगारियाँ निकलने लगीं। गरजकर बोला — मैं जो कुछ कहूँ या करूँ प्रजा को मानना पड़ेगा।

विभीषण ने जोश में आकर कहा — कदापि नहीं। पाप के काम में परजा आपका साथ नहीं दे सकती।

अब रावण से सहन न हो सका। उसने उठकर विभीषण को इतने जोर से लात मारी कि वह कई पग दूर जा गिरा; और फिर बोला — निकल जा मेरे राज्य से ! इसी वक्त निकल जा! मैं तुझ जैसे देशद्रोही और धोखेबाज का मुँह नहीं देखना चाहता। तू मेरा भाई नहीं, मेरा शत्रु है। मुझे ज्ञात न था कि तू अपनी कुटी में बैठा हुआ परजा को मेरे विरुद्ध भड़काता रहता है, अन्यथा आज

तू मेरे सामने इस तरह जबान न चलाता। फिर कभी मेरे राज्य में पैर न रखना, वरना जान से हाथ धोयेगा।

विभीषण ने उठकर कहा — महाराज, आप मेरे बड़े भाई हैं इसलिए मैंने आपको समझाने का साहस किया था; उसका आपने मुझे यह दण्ड दिया। आपकी आज्ञा सिर आंखों पर। मैं जाता हूँ। आप फिर मेरा मुँह न देखेंगे, किन्तु इतना फिर कहता हूँ कि आपको एक दिन पछ्ताना पड़ेगा। और उस समय आपको अभागे विभीषण की बात याद आयेगी।

आक्रमण

विभीषण यहाँ से अपमानित होकर सुग्रीव की सेना में पहुंचा और सुग्रीव से अपना सारा वृत्तान्त कहा। सुग्रीव ने रामचन्द्र को उसके आने की सूचना दी। रामचन्द्र ने विचार किया कि कहीं यह रावण का भेदी न हो। हमारी सेना की दशा देखने के लिये आया हो। इसे तुरन्त सेना से निकाल देना चाहिये। अंगद, जामवंत और दूसरे नायकों ने भी यही परामर्श दिया। उस समय हनुमान बोले‘आप लोग इस आदमी के बारे में किसी प्रकार

सन्देह न करें। लंका में यदि काई सच्चा और सज्जन पुरुष है, तो वह विभीषण है। जिस समय सारा दरबार मेरा शत्रु था, उस समय इसी आदमी ने मेरी जान बचायी थी। इसे अवश्य रावण ने राज्य से निकाल दिया है। यह अब आपकी शरण में आया है। इससे शीलरहित व्यवहार करना उचित नहीं। आखिर रामचन्द्र का सन्देह दूर हो गया। उन्होंने उसी समय विभीषण को बुलाया और बड़े तपाक से मिले।

विभीषण बोला — महाराज! आपसे मिलने की बहुत दिनों से आकांक्षा थी, वह आज पूरी हुई। मैं अपने भाई रावण के हाथों बहुत अपमानित होकर आपकी शरण आया हूँ। अब आप ही मेरा बेड़ा पार लगाइये। रावण ने मुझे इतनी निर्दयता से निकाला है, जैसे कोई कुत्ते को भी न निकालेगा। अब मैं उसका मुँह नहीं देखना चाहता।

रामचन्द्र ने कहा — किन्तु निरपराध तो कोई अपने नौकर को भी नहीं निकालता। सगे भाई को कैसे निकालेगा ?

विभीषण — महाराज! मेरा अपराध केवल इतना ही था कि मैंने रावण से वह बात कही; जो उसे पसंद न थी। मैंने उसे समझाया था कि सीता जी को रामचन्द्र के पास पहुंचा दो। यह बात उसे तीर की तरह लग गयी। जो आदमी वासना का दास हो जाता है

उसे भले और बुरे का ज्ञान नहीं रहता। वह अपने बारे में सच्ची बात सुनना कभी पसंद नहीं करता।

रामचन्द्र ने विभीषण को बहुत आश्वासन दिया और वादा किया कि रावण को मारकर लंका का राज्य तुम्हें दूँगा। उसी समय विभीषण को राज्य-तिलक भी दे दिया। विभीषण ने भी हर हालत में रामचन्द्र की सहायता करने का पक्का वादा किया।

दूसरे दिन से लंका पर चढ़ाई करने की तैयारियाँ शुरू हो गयीं और सेना समुद्र के किनारे आकर समुद्र को पार करने की युक्ति सोचने लगी। अन्त में यह निश्चय हुआ कि एक पुल बनाया जाय। नल और नील बड़े होशियार इंजीनियर थे। उन्होंने पुल बनाना प्रारंभ किया।

इधर रावण को जब खबर मिली की विभीषण रामचन्द्र से जा मिला, तो उसने दो जासूसों को सुग्रीव की सेना का हालचाल मालूम करने के लिए भेजा। एक का नाम था शक, दूसरे का सारण। दोनों भेष बदलकर सुग्रीव की सेना में आये और प्रत्येक बात की छानबीन करने लगे। संयोग से उन पर विभीषण की दृष्टि पड़ गयी। तुरन्त पहचान गये। उन्हें पकड़कर रामचन्द्र के सामने उपस्थित कर दिया। दोनों जासूस मारे भय के काँपने लगे, क्योंकि रीति के अनुसार उन्हें मृत्यु का दण्ड मिलना निश्चित था;

पर रामचन्द्र को उन पर दया आ गयी। उन्हें बुलाकर कहा — तुम लोग डरो मत, हम तुम्हें कोई दण्ड न देंगे। तुम खुशी से हर एक बात की जांच कर लो। कहो तो अपनी सेना की ठीक-ठीक गिनती बतला दूँ, अपना रसद सामान दिखला दूँ। अगर देखभाल चुके हो तो लौट जाओ, और यदि अभी देखना शेष हो तो मैं तुम्हें सहर्ष अनुमति देता हूँ, खूब भली प्रकार देखभाल लो।

दोनों बहुत लज्जित हुए और जाकर रावण से बोले — महाराज! आप रामचन्द्र से लड़ाई मत करें। वह बड़े साहसी हैं। आप उन पर विजय नहीं पा सकते। उनकी सेना का एक-एक नायक हमारी एक-एक सेना के लिए पर्याप्त है। किन्तु रावण तो अपने बल के नशे में अन्धा हो रहा था। वह किसी के परामर्श को कब ध्यान में लाता था। बोला'तुम दोनों देशद्रोही हो। मेरे सामने से निकल जाओ मैं ऐसे साहसहीनों की सूरत देखना नहीं चाहता।

किन्तु जब उसे ज्ञात हुआ कि रामचन्द्र ने समुद्र पर पुल बांध लिया तो उसका नशा हिरन हो गया। उस दिन उसे सारी रात नींद नहीं आयी।

रावण के दरबार में अंगद

रामचन्द्र ने समुद्र को पार करके लंका पर घेरा डाल दिया। दुर्ग के चारों द्वारों पर चार बड़े-बड़े नायकों को खड़ा किया। सुग्रीव को सारी सेना का सेनापति बनाया। आप और लक्ष्मण सुग्रीव के साथ हो गये। तेज दौड़ने वालों को चुन-चुनकर समाचार लाने और ले जाने के लिए नियुक्त किया। जिस नायक को कोई आज्ञा देनी होती, इन्हीं आदमियों द्वारा कहला भेजते थे। नगर के चारों द्वार बन्द हो गये। राक्षसों का बाहर निकलना दुर्गम हो गया। रसद का बाहर के देहातों से आना बन्द हो गया। लोग अन्दर भूखों मरने लगे।

रावण ने सोचा, अब तो रामचन्द्र की सेना लंका पर चढ़ आयी। मालूम नहीं; लड़ाई का फल क्या हो। एक बार सीता को सम्मत करने की अन्तिम चेष्टा कर लेनी चाहिये। अबकी उसने धमकी के बदले छल से काम लेने का निश्चय किया। एक कुशल कारीगर से रामचन्द्र की तस्वीर से मिलता-जुलता एक सिर बनवाया। वैसे ही धनुष और बाण बनवाये और इन चीजों को सीता जी के सामने ले जाकर बोला — यह लो, तुम्हारे पति का सिर है, जिस पर तुम जान देती थीं। मेरी सेना के एक आदमी ने

इन्हें लड़ाई में मार डाला है और उनका सिर काटकर लाया है। रावण के बल का अनुमान तुम इसी से कर सकती हो। अब मेरा कहना मानो। मेरी रानी बन जाओ।

सीता धोखे में आ गयीं। सिर पीट-पीटकर रोने लगीं। संसार उनकी आंखों में अंधेरा हो गया। संयोग से विभीषण की पत्नी श्रमा उस समय अशोकवाटिका में मौजूद थी। सीताजी का शोकसंताप सुनकर वह दौड़ी आयी और पूछने लगी — क्या बात है? रावण ने देखा, अब भेद खुलना चाहता है, तो तुरन्त बनावटी सिर और धनुष बाण लेकर वहाँ से चल दिया। सीता जी ने रो-रोकर श्रमा से यह दुर्घटना बयान की। श्रमा हँसकर बोली' बहन, यह सब रावण की दगाबाजी है। वह सिर बनावटी होगा। तुम्हें छलने के लिए रावण ने यह चाल चली है। रामचन्द्र तो दुर्ग के चारों ओर घेरा डाले हुए हैं। लंका में खलबली मची हुई है। कोई दुर्ग के बाहर नहीं निकल सकता। यहाँ किस में इतना बल है, जो रामचन्द्र से लड़ सके। उनके एक साधारण दूत ने लंका वालों के छक्के छुड़ा दिये, भला उन्हें कौन मार सकता है? श्रमा की बातों से सीता जी को आश्वासन मिला। समझ गयीं, यह रावण की दुष्टता थी।

उधर दुर्ग पर घेरा डाल करके रामचन्द्र ने सुग्रीव से कहा'एक बार फिर रावण को समझाने की चेष्टा करनी चाहिये। यदि

समझाने से मान जाय तो रक्तपात क्यों हो। विचार हुआ कि अंगद को दूत बनाकर भेजा जाय। अंगद ने बड़ी प्रसन्नता से यह बात स्वीकार कर ली। रावण अपने सभासदों के साथ दरबार में बैठा था कि अंगद जा धमके और ऊँची आवाज से बोले — ऐ राक्षसों के राजा, रावण! मैं राजा रामचन्द्र का दूत हूँ। मेरा नाम अंगद है। मैं राजा बालि का पुत्र हूँ। मुझे राजा रामचन्द्र ने यह कहने के लिए भेजा है कि या तो आज ही सीता को वापस कर दो, या किले के बाहर निकलकर युद्ध करो।

रावण घमण्ड से अकड़कर बोला — जाकर अपने छोकरे राजा से कह दे कि रावण उससे लड़ने को तैयार बैठा हुआ है। सीता अब यहाँ से नहीं जा सकती। उसका विचार छोड़ दें अन्यथा उनके लिए अच्छा न होगा। राक्षसों की सेना जिस समय मैदान में आयेगी, सुग्रीव और हनुमान दुम दबाकर भागते दिखायी देंगे। राक्षसों से अभी रामचन्द्र का पाला नहीं पड़ा है। हमने इन्द्र तक से लोहा मनवा लिया है। यह पहाड़ी चूहे किस गिनती में हैं।

अंगद — जिन लोगों को तुम पहाड़ी चूहा कहते हो, वह तुम्हारी एक-एक सेना के लिए अकेले काफी हैं। यदि तुम उनके बल की परीक्षा लेना चाहते हो, तो उन्हीं पहाड़ी चूहों में से एक तुच्छ चूहा तुम्हारे दरबार में खड़ा है, उसकी परीक्षा कर लो। खेद है कि इस समय मैं राजदूत हूँ और दूत हथियार से काम नहीं ले

सकता, अन्यथा इसी समय दिखा देता कि पहाड़ी चूहे किस गजब के होते हैं। है इस दरबार में कोई योद्धा, जो मेरे पैर को पृथ्वी से हटा दे? जिसे दावा हो, निकल आये।

अंगद की यह ललकार सुनकर कई सूरमा उठे और अंगद का पैर उठाने के लिए एड़ी-चोटी का जोर लगाया, किन्तु जौ भर भी न हटा सके। अपना-सा मुँह लेकर अपनी अपनी जगह पर जा बैठे। तब रावण स्वयं सिंहासन से उठा और अंगद के पैर पर झुककर उठाना चाहता था कि अंगद ने पैर खींच लिया और बोले 'अगर पैरों पर सिर झुकाना है तो रामचन्द्र के पैरों पर सिर झुकाओ। मेरे पैर छूने से तुम्हें कोई लाभ नहीं होगा। रावण लज्जित होकर अपनी जगह पर जा बैठा।

अंगद अपना संदेश सुना ही चुके थे। जब उन्हें ज्ञात हो गया कि रावण पर किसी के समझाने का प्रभाव न होगा, तो वह रामचन्द्र के पास लौट आये और सारा वृत्तान्त कह सुनाया।

मेघनाद

आखिर दोनों सेनाओं में युद्ध छिड़ गया। दिन भर तलवारें चलती रहीं। रात को भी लड़ने वालों ने दम न लिया। मृत शरीरों के ढेर लग गये। रक्त की नदियाँ बह गयीं। रामचन्द्र की सेना इतनी वीरता से लड़ी कि राक्षसों की हिम्मत टूट गयी। रावण जिस सेना को भेजता, वही घण्टे दो घण्टे में जान लेकर भागती। यहाँ तक कि उसने झल्लाकर अपने लड़के मेघनाद को भेजा। मेघनाद बड़ा वीर था। उसे इन्द्रजीत का उपनाम मिला हुआ था। राक्षसों को उस पर गर्व था।

मेघनाद के क्षेत्र में आते ही लड़ाई कर रंग बदल गया। कहाँ तो राक्षस लोग मैदान से भाग रहे थे, कहाँ अब रामचन्द्र की सेना में भगदड़ पड़ गयी। मेघनाद ने बाणों की ऐसी वर्षा की कि आकाश काला हो गया। लक्ष्मण ने अपनी सेना को दबते देखा तो धनुष और बाण लेकर मैदान में निकल आये। मेघनाद लक्ष्मण को देखकर और भी उत्साह से लड़ने लगा और ललकारकर बोला‘आज तुम्हारी मृत्यु मेरे हाथों लिखी है। तुमसे लड़ने की बहुत दिनों से कामना थी। आज वह पूरी हो गई। लक्ष्मण ने उत्तर दिया‘हार और जीत ईश्वर के हाथ है। डींग मारना वीरों का काम नहीं। किन्तु सम्भवतः तुम भी जीवित घर न लौटोगे। मेघनाद ने जोश में आकर नाना प्रकार के अस्त्र-शस्त्र काम में लाने प्रारम्भ किये। कभी कोई विषैला बाण चला

देता, कभी गदा लेकर पिल पड़ता। किन्तु लक्ष्मण भी कम वीर न थे। वह उसके सारे आक्रमणों को अपने बाणों से व्यर्थ कर देते थे। यहाँ तक कि उन्होंने उसके रथ, रथवान, घोड़े, सबको बाणों से छेद डाला। मेघनाद पैदल लड़ने लगा। अब उसे अपनी जान बचाना कठिन हो गया। चाहता था कि तनिक दम लेने का अवकाश मिले तो दूसरा रथ लाऊँ; मगर लक्ष्मण इतनी तेजी से बाण चलाते थे कि उसे हिलने का भी अवकाश न मिलता था। आखिर उसने भयानक होकर शक्तिबाण चला दिया। यह बाण इतना घातक था कि इससे घायल तुरन्त मर जाता था। वह बाण लगते ही लक्ष्मण मूर्छित होकर भूमि पर गिर पड़े। मेघनाद प्रसन्नता से मतवाला हो गया। उसी समय भागा हुआ रावण के पास गया और बोला'दो भाइयों में से एक को तो मैंने ठण्डा कर दिया। ऐसा शक्तिबाण मारा है कि बच नहीं सकता। कल दूसरे भाई को मार लूँगा। बस, युद्ध का अन्त हो जायगा। रावण ने बेटे को छाती से लगा लिया।

उधर रामचन्द्र की सेना में कुहराम मच गया। हनुमान ने मूर्छित लक्ष्मण को गोद में उठाया और रामचन्द्र के पास लाये। राम ने लक्ष्मण की यह दशा देखी तो बलात आंखों से आँसू जारी हो गये। रो-रोकर कहने लगे — हाय लक्ष्मण! तुम मुझे छोड़कर कहाँ चले गये? हाय! मुझे क्या ज्ञात था कि तुम यों मेरा साथ

छोड़ दोगे, नहीं तो मैं पिता की आज्ञा को रद्द कर देता, कभी वन की ओर पग न उठाता। अब मैं कौन मुँह लेकर अयोध्या जाऊँगा। पत्नी के पीछे भाई की जान गँवाकर किसको मुँह दिखाऊँगा। पत्नी तो फिर भी मिल सकती है, पर भाई कहाँ मिलेगा। हाय! मैंने सदैव के लिए अपने माथे पर कलंक लगा लिया। जामवन्त अभी तक कहीं लड़ रहा था। राम का विलाप सुनकर दौड़ा हुआ आया और लक्ष्मण को ध्यान से देखने लगा। बूढ़ा अनुभवी आदमी था। कितनी ही लड़ाइयाँ देख चुका था। बोला‘महाराज! आप इतने निराश क्यों होते हैं? लक्ष्मण जी अभी जीवित हैं। केवल मूर्छित हो गये हैं। विष सारे शरीर में दौड़ गया है। यदि कोई चतुर वैद्य मिल जाय तो अभी जहर उतर जाय और यह उठ बैठें। वैद्य की तलाश करनी चाहिये।

विभीषण से कहा‘शहर में सुखेन नाम का एक वैद्य रहता है। विष की चिकित्सा करने में वह बहुत दक्ष है। उसे किसी प्रकार बुलाना चाहिये। हनुमान ने कहा — मैं जाता हूँ, उसे लिये आता हूँ। विभीषण से सुखेन के मकान का पता पूछकर वह वेश बदलकर शहर में जा पहुंचे और सुखेन से यह हाल कहा। सुखेन ने कहा — भाई, मैं वैद्य हूँ। रावण के दरबार से मेरा भरणपोषण होता है। उसे यदि ज्ञात हो जायगा कि मैंने लक्ष्मण की चिकित्सा की है, तो मुझे जीवित न छोड़ेगा।

हनुमान ने कहा — आपको ईश्वर ने जो निपुणता प्रदान की है, उससे हर एक आदमी को लाभ पहुंचाना आपका कर्तव्य है। भय के कारण कर्तव्य से मुँह मोड़ना आप जैसे वयोवृद्ध के लिए उचित नहीं।

सुखेन निरुत्तर हो गया। उसी समय हनुमान के साथ चल खड़ा हुआ। बुढ़ापे के कारण वह तेज न चल सकता था, इसलिए हनुमान ने उसे गोद में उठा लिया और भागते हुए अपनी सेना में आ पहुँचे। सुखेन ने लक्ष्मण की नाड़ी देखी, शरीर देखा और बोला — अभी बचने की आशा है। संजीवनी बूटी मिल जाय तो बच सकते हैं। किन्तु सूर्य निकलने के पहले बूटी यहाँ आ जानी चाहिये। अन्यथा जान न बचेगी।

जामवंत ने पूछा — संजीवनी बूटी मिलेगी कहाँ ?

सुखेन बोला — उत्तर की ओर एक पहाड़ है, वहीं यह बूटी मिलेगी।

बारह घण्टे के अन्दर वहाँ जाना और बूटी खोजकर लाना सरल काम न था। सब एक-दूसरे का मुँह ताकते थे। किसी को साहस न होता था कि जाने को तैयार हो। आखिर रामचन्द्र ने हनुमान से कहा'मित्र! कठिनाई तुम्हीं सरल बना सकते हो। तुम्हारे सिवा मुझे दूसरा कोई दिखाई नहीं देता। हनुमान को आज्ञा मिलने की

देर थी। सुखेन से बूटी का पता पूछा और आँधी की तरह दौड़े। कई घंटों में वे उस पहाड़ पर जा पहुंचे; किन्तु रात के समय बूटी की पहचान हो सकी। बहुत-सी घासपात एकत्रित थी। हनुमान ने उन सबों को उखाड़ लिया और उल्टे पैरों लौटे।

इधर सब लोग बैठे हनुमान की प्रतीक्षा कर रहे थे। एक-एक पल की गिनती की जा रही थी। अब हनुमान अमुक स्थान पर पहुंचे होंगे, अब वहाँ से चले होंगे, अब पहाड़ पर पहुंचे होंगे, इस प्रकार अनुमान करते-करते तड़का हो गया, किन्तु हनुमान का कहीं पता नहीं। रामचन्द्र घबराने लगे। एक घंटे में हनुमान न आ गये तो अनर्थ हो जायगा। कई आदमी उन्हें देखने के लिए छूटे, कई आदमी वृक्षों पर चढ़कर उत्तर की ओर दृष्टि दौड़ाने लगे, पर हनुमान का कहीं निशान नहीं! अब केवल आध घण्टे की और अवधि है। इधर लक्ष्मण की दशा पल-पल पर खराब होती जाती थी। रामचन्द्र निराश होकर फिर रोने लगे कि एकाएक अंगद ने आकर कहा'महाराज! हनुमान दौड़ा चला आ रहा है। बस आया ही चाहता है। रामचन्द्र का चेहरा चमक उठा। वह अधीर होकर स्वयं हनुमान की ओर दौड़े और उसे छाती से लगा लिया। हनुमान ने घासपात का एक ढेर सुखेन के सामने रख दिया। सुखेन ने इसमें से संजीवनी बूटी निकाली और तुरन्त लक्ष्मण के घाव पर इसका लेप किया। बूटी ने अक्सीर का

काम किया। देखते-देखते घाव भरने लगा। लक्ष्मण की आँखें खुल गयीं। एक घण्टे में वह उठ बैठे और दोपहर तक तो बातें करने लगे। सेना में हर्ष के नारे लगाये गये।

कुम्भकर्ण

रावण ने जब सुना कि लक्ष्मण स्वस्थ हो गये तो मेघनाद से बोला'लक्ष्मण तो शक्तिबाण से भी न मरा। अब क्या युक्ति की जाय ? मैंने तो समझा था, एक का काम तमाम हो गया, अब एक ही और बाकी है, किन्तु दोनों-के-दोनों फिर से संभल गये।

मेघनाद ने कहा'मुझे भी बड़ा आश्चर्य हो रहा है कि लक्ष्मण कैसे बच गया। शक्तिबाण का घाव तो घातक होता है। इक्कीस घण्टे के अन्दर आदमी मर जाता है। अवश्य उन लोगों को संजीवनी बूटी मिल गयी। खैर, फिर समझूँगा, जाते कहाँ हैं। आज ही दोनों को ढेर कर देता, लेकिन कल का थका हुआ हूँ। मैदान में न जा सकूंगा। आज चाचा कुम्भकर्ण को भेज दीजिये।

कुम्भकर्ण रावण का भाई था। ऐसा डीलडौल दूसरे सूरमा राक्षसों में न था। उसे देखकर हाथी कासा आभास होता था। वीर ऐसा

था कि कोई उसका सामना करने का साहस न कर सकता था। किन्तु जितना ही वह वीर था, उतना ही प्रमादी और विलासी था। रात-दिन शराब के नशे में मस्त पड़ा रहता। लंका पर आक्रमण हो गया, हजारों आदमी मारे जा चुके, पर उसे अब तक कुछ खबर न थी कि कहाँ क्या हो रहा है। रावण उसके पास पहुंचा तो देखा कि वह उस समय भी बेहोश पड़ा हुआ है। शराब की बोतल सामने पड़ी हुई थी। रावण ने उसका कंधा पकड़कर जोर से हिलाया, तब उसकी आँखें खुलीं। बोला — कैसे आराम की नींद ले रहा था, आपने व्यर्थ जगा दिया।

रावण ने कहा — भैया, अब सोने का समय नहीं रहा। रामचन्द्र ने लंका पर घेरा डाल लिया। हमारे कितने ही आदमी काम आ चुके। मेघनाद कल लड़ा था, पर आज थका हुआ है। अब तुम्हारे सिवा और कोई दूसरा सहायक नहीं दिखायी देता।

यह सुनते ही कुम्भकर्ण संभलकर उठ बैठा। हथियार बांधे और मैदान की ओर चल खड़ा हुआ। उसे मैदान में देखकर हनुमान, अंगद, सुग्रीव सबके-सब दहल उठे। आदमी क्या पूरा देव था। साधारण सैनिक तो उसकी भयानक आकृति ही देखकर भाग खड़े हुए। कितने ही नायकों को उसने आहत कर दिया। आखिर रामचन्द्र स्वयं उससे लड़ने को तैयार हुए। उन्हें देखते ही कुम्भकर्ण ने भाले का वार किया। मगर रामचन्द्र ने वार खाली

कर दिया और दो तीर इतनी फुर्ती से चलाये कि उसके दोनों हाथ कट गये। तीसरा तीर उसके सीने में लगा। काम तमाम हो गया। राक्षससेना ने अपने नायक को गिरते देखा तो भाग खड़े हुए। इधर रामचन्द्र की सेना में खुशी मनायी जाने लगी।

रावण को जब यह समाचार मिला तो सिर पीटकर रोने लगा। कुम्भकर्ण से उसे बड़ी आशा थी। वह धूल में मिल गयी। भाई के शोक में बड़ी देर तक विलाप करता रहा।

मेघनाद का मारा जाना

दूसरे दिन मेघनाद बड़े सजधज से मैदान में आया। उसने दोनों भाइयों को मार गिराने का निश्चय कर लिया था। सारी रात देवी की पूजा करता रहा था। उसे अपने बल और शौर्य का बड़ा अभिमान था। रावण की सारी आशायें आज ही की लड़ाई पर निर्भर थीं। लंका में पहले ही से विजय का उत्सव मनाने की तैयारियाँ होने लगीं। मेघनाद ने मैदान में आकर डंके पर चोट दिलवायी तो विभीषण ने उसके सामने जाकर कहा‘मेघनाद, मैं जानता हूँ कि बल और साहस में तुम अपना समान नहीं रखते,

किन्तु औचित्य की सदैव जीत हुई है और सदैव होगी। मेरा कहना मानो, चलकर रामचन्द्र से संधि कर लो। वह तुम्हें क्षमा कर देंगे।

मेघनाद ने क्रोध से आँखें निकालकर कहा — चचा साहब, तुम्हें लाज नहीं आती कि मुझे समझाने आये हो! देशद्रोह से बढ़कर संसार में दूसरा अपराध नहीं। जो आदमी शत्रु से मिलकर अपने घर और अपने देश का अहित करता है, उसकी सूरत देखना भी पाप है। आप मेरे सामने से चले जाइये।

विभीषण तो उधर लज्जित होकर चला गया, इधर लक्ष्मण ने सामने आकर मेघनाद को युद्ध का निमंत्रण दिया। लक्ष्मण को देखकर मेघनाद बोला'अभी दो-चार दिन घाव की मरहमपट्टी और करवा लेते, कहीं आज घाव फिर न ताजा हो जाय। जाकर अपने बड़े भाई को भेज दो।

लक्ष्मण ने धनुष पर बाण चढ़ाकर कहा — ऐसे-ऐसे घावों की वीर लोग लेशमात्र चिंता नहीं करते। आज एक बार फिर हमारी और तुम्हारी हो जाय। तनिक देख लो कि शेर घायल होकर कितना भयावना हो जाता है। बड़े भाई साहब का मुकाबला तो तुम्हारे पिता ही से होगा।

दोनों वीरों ने तीर चलाने शुरू कर दिये। घन्घन्, तन्तन की आवाजें आने लगीं। मेघनाद पहले तो विजयी हुआ, लक्ष्मण का उसके वारों को काटना कठिन हो गया, किन्तु ज्यों-ज्यों समय बीतता गया, लक्ष्मण संभलते गये, और मेघनाद कमजोर पड़ता जाता था, यहाँ तक कि लक्ष्मण उस पर विजयी हो गये और एक बाण उसकी गर्दन पर ऐसा मारा कि उसका सिर कटकर अलग जा गिरा।

मेघनाद के गिरते ही राक्षसों के हाथ-पाँव फूल गये। भगदड़ पड़ गयी। रावण ने यह समाचार सुना तो उसके मुँह से ठंडी सांस निकल गयी। आँखों में अंधेरा छा गया। प्रतिशोध की ज्वाला से वह पागल हो गया। राम और लक्ष्मण तो उसके वश के बाहर थे, सीताजी का वध कर डालने के लिए तैयार हो गया। तलवार लेकर दौड़ता हुआ अशोक वाटिका में पहुँचा। सीता जी ने उसके हाथ में नंगी तलवार देखी, तो सहम उठी; किन्तु रावण का मंत्री बड़ा बुद्धिमान था। वह भी उसके पीछे-पीछे दौड़ता चला गया था। रावण को एक अबला स्त्री की जान पर उद्यत देखकर बोला — महाराज, धृष्टता क्षमा हो, स्त्री पर हाथ उठाना आपकी मर्यादा के विरुद्ध है। आप वेदों के पण्डित हैं। साहस और वीरता में आज संसार में आपका समान नहीं। अपने पद और ज्ञान का ध्यान कीजिये और इस कर्म से विमुख होइये। इन

बातों ने रावण का क्रोध ठंडा कर दिया। तलवार म्यान में रख ली और लौट आया।

उसी समय मेघनाद की पतिव्रता स्त्री सुलोचना ने आकर कहा — महाराज, अब मैं जीवित रहकर क्या करूँगी। मेरे पति का सिर मंगवा दीजिये, उसे लेकर मैं सती हो जाऊँगी।

रावण ने आंखों में आँसू भरकर कहा — बेटी, तेरे पति का सिर तुझे उसी समय मिलेगा, जब मैं दोनों भाइयों का सिर काट लूँगा धैर्य रख।

सुलोचना अपनी सास मंदोदरी के पास आयी। दोनों सास-बहुएँ गले मिलकर खूब रोईं। तब सुलोचना बोली'माता जी, मैं अब अनाथ हो गयी। मेरे पति का सिर मंगवा दीजिये, तो सती हो जाऊँ। अब जी कर क्या करूँगी। जहाँ स्वामी हैं वहीं मैं भी जाऊँगी। यह वियोग अब मुझसे नहीं सहा जाता।

मन्दोदरी ने बहू को प्यार करके कहा — बेटी, यदि तुमने यही निश्चय किया है, तो शुभ हो। मेघनाद का सिर और तो किसी प्रकार न मिलेगा, तुम जाकर स्वयं माँगो तो भले ही मिल सकता है। रामचन्द्र बड़े नेक आदमी हैं। मुझे विश्वास है कि वह तुम्हारी मांग को अस्वीकार न करेंगे।

सुलोचना उसी समय राजमहल से निकलकर रामचन्द्र की सेना में आयी और रामचन्द्र के सम्मुख जाकर बोली — महाराज! एक अनाथ विधवा आपसे एक प्रार्थना करने आयी है, उसे स्वीकार कीजिये। मेरे पति वीर मेघनाद का सिर मुझे दे दीजिये।

रामचन्द्र ने तुरन्त मेघनाद का सिर सुलोचना को दिलवा दिया और उसके थोड़ी ही देर बाद सुलोचना सती हो गयी। चिता की लपट आकाश तक पहुंची। किसी ने चाहे सुलोचना को जाते न देखा, पर वह स्वर्ग में प्रविष्ट हो गयी।

रावण युद्धक्षेत्र में

रात भर तो रावण शोक और क्रोध से जलता रहा। सबेरा होते ही मैदान की तरफ चला। लंका की सारी सेना उसके साथ थी। आज युद्ध का निर्णय हो जायगा, इसलिए दोनों ओर के लोग अपनी जानें हथेलियों पर लिये तैयार बैठे थे। रावण को मैदान में देखते ही रामचन्द्र स्वयं तीर और कमान लिये निकल आये। अब तक उन्होंने केवल रावण का नाम सुना था, उसकी सूरत देखी तो मारे क्रोध के आंखों से ज्वाला निकलने लगी। इधर रावण को

भी अपने दो बेटों के रक्त का और अपनी बहन के अपमान का बदला लेना था। घमासान युद्ध होने लगा। रावण की बराबरी करने वाला लंका में तो क्या, रामचन्द्र की सेना में भी कोई न था। सुग्रीव, अंगद, हनुमान इत्यादि वीर उस पर एक साथ भाले, गदा और तीर चलाते थे, नील और नल उस पर पत्थर मारते थे, पर उसने इतनी तेजी से तीर चलाये कि कोई सामने न ठहर सका। लक्ष्मण ने देखा कि रामचन्द्र उसके मुकाबले में अकेले रहे जाते हैं तो वह भी आ खड़े हुए और तीरों की बौछार करने लगे। किन्तु रावण पहाड़ की नाईं अटल खड़ा सबके आक्रमणों का जवाब दे रहा था। आखिर उसने अवसर पाकर एक तीर ऐसा चलाया कि लक्ष्मण मूर्छित होकर गिर पड़े; दूसरा तीर रामचन्द्र पर पड़ा; वह भी गिर पड़े रावण ने तुरन्त तलवार निकाली और चाहता था कि रामचन्द्र का वध कर दे कि हनुमान ने लपककर उसके सीने में एक गदा इतनी जोर से मारी कि वह संभल न सका। उसका गिरना था कि राम और लक्ष्मण उठ बैठे। रावण भी होश में आ गया। फिर लड़ाई होने लगी। आखिर रामचन्द्र का एक तीर रावण के सीने में घुस गया। रक्त की धारा बह निकली। उसकी आँखें बन्द हो गयीं। रथवान ने समझा, रावण का काम तमाम हो गया। रथ को भगाकर नगर की ओर चला। रास्ते में रावण को होश आ गया। रथ को नगर

की ओर जाते देखकर क्रोध से आग बबूला हो गया। उसी समय रथ को मैदान की ओर ले चलने की आज्ञा दी।

संयोग से उसी समय विभीषण सामने आ गया। रावण ने उसे देखते ही भाले से वार किया। चाहता था कि उसकी धोखेबाजी का दण्ड दे दे। किन्तु लक्ष्मण ने एक तीर चलाकर भाले को काट डाला। विभीषण की जान बच गयी। अबकी रावण ने अग्निबाण छोड़ने शुरू किये। इन बाणों से आग की लपटें निकलती थीं। रामचन्द्र की सेना में खलबली पड़ गयी। किन्तु रावण के सीने में जो घाव लगा था उससे वह प्रत्येक क्षण

निर्बल होता जाता था, यहाँ तक कि उसके हाथ से धनुष छूटकर गिर पड़ा। उस समय रामचन्द्र ने कहा — राजा रावण, अब तुम्हें ज्ञात हो गया कि हम लोग उतने निर्बल नहीं हैं, जितना तुम समझते थे? तुम्हारा सारा परिवार तुम्हारी मूर्खता का शिकार हो गया। क्या अब भी तुम्हारी आँखें नहीं खुलीं। अब भी यदि तुम अपनी दुष्टता छोड़ दो तो हम तुम्हें क्षमा कर देंगे।

रावण ने संभलकर धनुष उठा लिया और बोला — क्या तुम समझते हो कि कुम्भकर्ण और मेघनाद के मारे जाने से मैं डर गया हूँ? रावण को अपने साहस और बल का भरोसा है। वह दूसरों के बल पर नहीं लड़ता। वीरों की सन्तान लड़ाई में मरने

के सिवा और होती ही किसलिए है। अब संभल जाओ, मैं फिर वार करता हूँ।

किन्तु यह केवल गीदड़भभकी थी। रामचन्द्र ने अबकी जो तीर मारा, वह फिर रावण के सीने में लगा। एक घाव पहले लग चुका था, इस दूसरे घाव ने अन्त कर दिया। रावण रथ के नीचे गिर पड़ा और तड़पतड़प कर जान दे दी। अत्याचारी था, अन्यायी था, नीच था; किन्तु वीर भी था। मरते समय भी धनुष उसके हाथ में था।

रावण को रथ से नीचे गिरते देख विभीषण दौड़कर उसके पास आ गया। देखा तो वह दम तोड़ रहा था। उस समय भाई के रक्त ने जोश मारा। विभीषण रावण के रक्त लुण्ठित मृत शरीर से लिपटकर फूट-फूटकर रोने लगा। इतने में रावण की रानी मन्दोदरी और दूसरी रानियाँ भी आकर विलाप करने लगीं। रामचन्द्र ने उन्हें समझाकर विदा किया। सैनिकों ने चाहा कि चलकर लंका को लूटें, किन्तु रामचन्द्र ने उन्हें मना किया। हारे हुए शत्रु के साथ वे किसी प्रकार की ज्यादती नहीं करना चाहते थे।

विभीषण का राज्याभिषेक

एक दिन वह था कि विभीषण अपमानित होकर रोता हुआ निकला था, आज वह विजयी होकर लंका में प्रविष्ट हुआ। सामने सवारों का एक समूह था। प्रकार-प्रकार के बाजे बज रहे थे। विभीषण एक सुन्दर रथ पर बैठे हुए थे, लक्ष्मण भी उनके साथ थे। पीछे सेना के नामी सूरमा अपने-अपने रथों पर शान से बैठे हुए चले जा रहे थे। आज विभीषण का नियमानुसार राज्याभिषेक होगा। वह लंका की गद्दी पर बैठेंगे। रामचन्द्र ने उनको वचन दिया था उसे पूरा करने के लिए लक्ष्मण उनके साथ जा रहे हैं। शहर में ढिंढोरा पिट गया है कि अब राजा विभीषण लंका के राजा हुए। दोनों ओर छतों से उन पर फूलों की वर्षा हो रही है। धनी-मानी नजरें उपस्थित करने की तैयारियाँ कर रहे हैं। सब बन्दियों की मुक्ति की घोषणा कर दी गयी है। रावण का कोई शोक नहीं करता। सभी उसके अत्याचार से पीड़ित थे। विभीषण का सभी यश गा रहे हैं।

विभीषण को गद्दी पर बिठाकर रामचन्द्र ने हनुमान को सीता के पास भेजा। विभीषण पालकी लेकर पहले ही से उपस्थित थे। सीता जी के हर्ष का कौन अनुमान कर सकता है। इतने दिनों

के कैद के बाद आज उन्हें आजादी मिली है। मारे हर्ष के उन्हें मूर्च्छा आ गयी, जब चेतना आयी तो हनुमान ने उनके चरणों पर सिर झुकाकर कहा माता! श्री रामचन्द्र जी आपकी प्रतीक्षा में बैठे हुए हैं। वह स्वयं आते, किन्तु नगर में आने से विवश हैं। सीता जी खुशी-खुशी पालकी पर बैठीं। रामचन्द्र से मिलने की खुशी में उन्हें कपड़ों की भी चिन्ता न थी। किन्तु विभीषण की रानी श्रमा ने उनके शरीर पर उबटन मला, सिर में तेल डाला, बाल गूँथे, बहुमूल्य साड़ी पहनायी और विदा किया। सवारी रवाना हुई। हजारों आदमी साथ थे।

रामचन्द्र को देखते ही सीता जी की आंखों से खुशी के आँसू बहने लगे। वह पालकी से उतरकर उनकी ओर चलीं। रामचन्द्र अपनी जगह पर खड़े रहे। उनके चेहरे से खुशी नहीं जाहिर हो रही थी, बल्कि रंज जाहिर होता था। सीता निकट आ गयीं। फिर भी वह अपनी जगह पर खड़े रहे। तब सीता जी उनके हृदय की बात समझ गयीं। वह उनके पैरों पर नहीं गिरीं, सिर झुकाकर खड़ी हो गयीं। उनकी आंखों से आँसू बहने लगे।

एक मिनट के बाद सीता जी ने लक्ष्मण से कहा — भैया, खड़े क्या देखते हो। मेरे लिए एक चिता तैयार कराओ। जब स्वामी जी को मुझसे घृणा है, तो मेरे लिए आग की गोद के सिवा और

कोई स्थान नहीं। दर्शन हो गये, मेरे लिए यही सौभाग्य की बात है। हाय! क्या सोच रही थी, और क्या हुआ।

यह बात न थी कि रामचन्द्र को सीता जी पर किसी प्रकार का संदेह था। वह भली प्रकार जानते थे कि सीताजी ने कभी रावण से सीधे मुँह बात नहीं की। सदैव उससे घृणा करती रहीं। किन्तु संसार को निर्मल-हृदयता पर कैसे विश्वास आता? सीता जी भी मन में यह बात भली प्रकार समझती थीं। इसलिए उन्होंने अपने विषय में कुछ भी न कहा, जान देने के लिए तैयार हो गयीं। रामचन्द्र का कलेजा फटा जाता था, किन्तु विवश थे।

तनिक देर में चिता तैयार हो गयी। उसमें आग दी गयी, लपटें उठने लगीं। सीता जी ने रामचन्द्र को प्रणाम किया और चिता में कूदने चलीं। वहाँ सारी सेना एकत्रित थी। सीता जी को आग की ओर बढ़ते देखकर चारों ओर शोर मच गया। सब लोग चिल्ला चिल्लाकर कहने लगे — हमको सीता जी पर किसी प्रकार का सन्देह नहीं है! वह देवी हैं, हमारी माता हैं, हम उनकी पूजा करते हैं। हनुमान, अंगद, सुग्रीव इत्यादि सीता जी का रास्ता रोककर खड़े हो गये। उस समय रामचन्द्र को विश्वास हुआ कि अब सीता जी की पवित्रता पर किसी को सन्देह नहीं। उन्होंने आगे बढ़कर सीता जी को छाती से लगा लिया। सारा क्षेत्र हर्ष ध्वनि से गूँज उठा।

अयोध्या की वापसी

रामचन्द्र ने लंका पर जिस आशय से आक्रमण किया था, वह पूरा हो गया। सीता जी छुड़ा लीं गयीं, रावण को दण्ड दिया जा चुका। अब लंका में रहने की आवश्यकता न थी। रामचन्द्र ने चलने की तैयारी करने का आदेश दिया। विभीषण ने जब सुना कि रामचन्द्र जा रहे हैं तो आकर बोला 'महाराज! मुझसे कौन-सा अपराध हुआ जो आपने इतने शीघर चलने की ठान ली? भला दस-पाँच दिन तो मुझे सेवा करने का अवसर दीजिये। अभी तो मैं आपका कुछ आतिथ्य कर ही न सका।

रामचन्द्र ने कहा — विभीषण! मेरे लिए इससे अधिक प्रसन्नता की और कौनसी बात हो सकती थी कि कुछ दिन तुम्हारे संसर्ग का आनन्द उठाऊँ। तुम-जैसे निर्मल हृदय पुरुष बड़े भाग्य से मिलते हैं। किन्तु बात यह है कि मैंने भरत से चौदहवें वर्ष पूरे होते ही लौट जाने का प्रण किया था। अब चौदह वर्ष पूरे होने में दो ही चार दिन का विलम्ब है। यदि मुझे एक दिन की भी देर हो गयी, तो भरत को बड़ा दुःख होगा। यदि जीवित रहा तो फिर कभी भेंट होगी। अभी तो अयोध्या तक पहुँचने में महीनों लगेंगे।

विभीषण — महाराज! अयोध्या तो आप दो दिन में पहुँच जायेंगे।

रामचन्द्र — केवल दो दिन में? यह कैसे सम्भव है?

विभीषण — मेरे भाई रावण ने अपने लिए एक वायुयान बनवाया था। उसे पुष्पक विमान कहते हैं! उसकी चाल एक हजार मील प्रतिदिन है। बड़े आराम की चीज है। दस-बारह आदमी आसानी से बैठ सकते हैं। ईश्वर ने चाहा तो आज के तीसरे दिन आप अयोध्या में होंगे। किन्तु मेरी इतनी प्रार्थना आपको स्वीकार करनी पड़ेगी! मैं भी आपके साथ चलूँगा। जहाँ आपके हजारों चाकर हैं वहाँ मुझे भी एक चाकर समझिये।

उसी दिन पुष्पक विमान आ गया। विचित्र और आश्चर्यजनक चीज़ थी। कल घुमाते ही हवा में उठ कर उड़ने लगती थी। बैठने की जगह अलग, सोने की जगह अलग, हीरे-जवाहरात जड़े हुए। ऐसा मालूम होता था कि कोई उड़ने वाला महल है। रामचन्द्र इसे देखकर बहुत प्रसन्न हुए किन्तु जब चलने को तैयार हुए तो हनुमान, सुग्रीव, अंगद, नील, जामवन्त, सभी नायकों ने कहा' महाराज! आपकी सेवा में इतने दिनों से रहने के बाद अब यह वियोग नहीं सहा जाता। यदि आप यहाँ नहीं रहते हैं तो हम लोगों को ही साथ लेते चलिए। वहाँ आपके राज्याभिषेक का उत्सव मनायेंगे, कौशल्या माता के दर्शन करेंगे, गुरु वशिष्ठ,

विश्वामित्र, भरद्वाज इत्यादि के उपदेश सुनेंगे और आपकी सेवा करेंगे।

रामचन्द्र ने पहले तो उन्हें बहुत समझाया कि आप लोगों ने मेरे ऊपर जो उपकार किये हैं, वही काफी हैं, अब और अधिक उपकारों के बोझ से न दबाइये। किन्तु जब उन लोगों ने बहुत आग्रह किया तो विवश होकर उन लोगों को भी साथ ले लिया। सबके-सब विमान में बैठे और विमान हवा में उड़ चला। रामचन्द्र और सीता में बातें होने लगीं। दोनों ने अपने-अपने वृत्तान्त वर्णन किये। विमान हवा में उड़ता चला जाता था। जिस रास्ते से आये थे उसी रास्ते से जा रहे थे। रास्ते में जो प्रसिद्ध स्थान आते थे, उन्हें रामचन्द्र जी सीता जी को दिखा देते थे। पहले समुद्र दिखायी दिया। उस पर बंधा हुआ पुल देखकर सीता जी को बड़ा आश्चर्य हुआ। फिर वह स्थान आया, जहाँ रामचन्द्र ने बालि को मारा था। इसके बाद किष्किन्धापुरी दिखाई दी। रामचन्द्र ने कहा'जिस राजा सुग्रीव की सहायता से हमने लंका विजय की, उनका मकान यही है। सीता जी ने सुग्रीव की रानी से भेंट करने की इच्छा प्रकट की, इसलिए विमान रोक दिया गया, और लोग सुग्रीव के घर उतरे। तारा ने सीता जी के गले में फूलों की माला पहनायी और अपने साथ महल में ले गयी। सुग्रीव ने अपने प्रतिष्ठित अतिथियों की अभ्यर्थना की और उन्हें

दो-चार दिन रोकना चाहा, किन्तु रामचन्द्र कैसे रुक सकते थे। दूसरे दिन विमान फिर रवाना हुआ। सुग्रीव इत्यादि भी उस पर बैठकर चले। रामचन्द्र जी से उन लोगों को इतना प्रेम हो गया कि उनको छोड़ते हुए इन लोगों को दुःख होता था।

रामचन्द्र ने फिर सीता जी को मुख्य-मुख्य स्थान दिखाना प्रारम्भ किया। देखो, यह वह वन है जहाँ हम तुम्हें तलाश करते फिरते थे। अहा, देखो, वह छोटी-सी झोंपड़ी जो दिखायी दे रही है वही शबरी का घर है। यहाँ रात भर हमने जो आराम पाया, उतना कभी अपने घर भी न पाया था। यह लो, वह स्थान आ गया जहाँ पवित्र जटायु से हमारी भेंट हुई थी। वह उसकी कुटी है। केवल दीवारें शेष रह गयी हैं। जटायु ने हमें तुम्हारा पता न बताया होता, तो ज्ञात नहीं कहाँ-कहाँ भटकते फिरते। वह देखा पंचवटी है। वह हमारी कुटी है। कितना जी चाहता है कि चल कर एक बार उस कुटी के दर्शन कर लूँ। सीता जी इस कुटी को देखकर रोने लगीं। आह! यहाँ से उन्हें रावण हर ले गया था। वह दिन, वह घड़ी कितनी अशुभ थी कि इतने दिनों तक उन्हें एक अत्याचारी की कैद में रहना पड़ा। रावण का वह साधुओं कासा वेश उनकी आंखों में फिर गया। आँसू किसी प्रकार न थमते थे। कठिनता से रामचन्द्र ने उन्हें समझा कर चुप किया। विमान और आगे बढ़ा। अगस्त्य मुनि का आश्रम दिखायी दिया।

रामचन्द्र ने उनके दर्शन किए, किन्तु रुकने का अवकाश न था, इसलिए थोड़ी देर के बाद फिर विमान रवाना हुआ। चित्रकूट दिखायी दिया। सीताजी अपनी कुटी देखकर बहुत प्रसन्न हुईं। कुछ देर बाद प्रयाग दिखायी दिया। यहाँ भारद्वाज मुनि का आश्रम था। रामचन्द्र ने विमान को उतारने का आदेश दिया और मुनि जी की सेवा में उपस्थित हुए। मुनि जी उनसे मिलकर बहुत प्रसन्न हुए। बड़ी देर तक रामचन्द्र उन्हें अपने वृत्तान्त सुनाते रहे। फिर और बातें होने लगीं। रामचन्द्र ने कहा 'महाराज ! मुझे तो आशा न थी कि फिर आपके दर्शन होंगे। किन्तु आपके आशीर्वाद से आज फिर आपके चरणस्पर्श का अवसर मिल गया।

भरद्वाज बोले — बेटा! जब तुम यहाँ से जा रहे थे, उस समय मुझे जितना दुःख हुआ था, उससे कहीं अधिक प्रसन्नता आज तुम्हारी वापसी पर हो रही है।

राम — आपको अयोध्या के समाचार तो मिलते होंगे ?

भरद्वाज — हाँ बेटा, वहाँ के समाचार तो मिलते रहते हैं! भरत तो अयोध्या से दूर एक गाँव में कुटी बना कर रहते हैं; किन्तु शत्रुघ्न की सहायता से उन्होंने बहुत अच्छी तरह राज्य का कार्य संभाला है। परजा प्रसन्न है। अत्याचार का नाम भी नहीं है। किन्तु सब लोग तुम्हारे लिए अधीर हो रहे हैं। भरत तो इतने अधीर हैं कि

यदि तुम्हें एक दिन की भी देर हो गयी तो शायद तुम उन्हें जीवित न पाओ।

रामचन्द्र ने उसी समय हनुमान को बुलाकर कहा — तुम अभी भरत के पास जाओ, और उन्हें मेरे आने की सूचना दो। वह बहुत घबरा रहे होंगे। मैं कल सवेरे यहाँ से चलूँगा। यह आज्ञा पाते ही हनुमान अयोध्या की ओर रवाना हुए और भरत का पता पूछते हुए नन्दिग्राम पहुंचे। भरत ने ज्योंही यह शुभ समाचार सुना उन्हें मारे हर्ष के मूर्छा आ गयी। उसी समय एक आदमी को भेजकर शत्रुघ्न को बुलवाया और कहा — भाई, आज का दिन बड़ा शुभ है कि हमारे भाई साहब चौदह वर्ष के देश निकाले के बाद अयोध्या आ रहे हैं। नगर में ढिंढोरा पिटवा दिया कि लोग अपने-अपने घर दीप जलायें और इस प्रसन्नता में उत्सव मनावें। सवेरे तुम उनके उत्सव का प्रबन्ध करके यहाँ आना। हम सब लोग भाई साहब की अगवानी करने चलेंगे।

दूसरे दिन सबेरे रामचन्द्र जी भरद्वाज मुनि के आश्रम से रवाना हुए। जिस अयोध्या की गोद में पले और खेले, उस अयोध्या के आज फिर दर्शन हुए। जब अयोध्या के बड़े-बड़े ऐश्वर्यशाली प्रासाद दिखायी देने लगे, तो रामचन्द्र का मुख मारे प्रसन्नता के चमक उठा। उसके साथ ही आँखों से आँसू भी बहने लगे। हनुमान से बोले‘मित्र, मुझे संसार में कोई स्थान अपनी अयोध्या से

अधिक प्रिय नहीं। मुझे यहाँ के कांटे भी दूसरी जगह के फूलों से अधिक सुन्दर मालूम होते हैं। वह देखो, सरयू नदी नगर को अपनी गोद में लिये कैसा बच्चों की तरह खिला रही है। यदि मुझे भिक्षुक बनकर भी यहाँ रहना पड़े तो दूसरी जगह राज्य करने से अधिक प्रसन्न रहूँगा। अभी वह यही बातें कर रहे थे कि नीचे हाथी, घोड़ों, रथों का जुलूस दिखायी दिया। सबके आगे भरत गेरुवे रंग की चादर ओढ़े, जटा बढ़ाये, नंगे पांव एक हाथ में रामचन्द्र की खड़ाऊँ लिये चले आ रहे थे। उनके पीछे शत्रुघ्न थे। पालकियों में कौशिल्या, सुमित्रा और कैकेयी थीं। जुलूस के पीछे अयोध्या के लाखों आदमी अच्छे-अच्छे कपड़े पहने चले आ रहे थे। जुलूस को देखते ही रामचन्द्र ने विमान को नीचे उतारा। नीचे के आदमियों को ऐसा मालूम हुआ कि कोई बड़ा पक्षी पर जोड़े उतर रहा है। कभी ऐसा विमान उनकी दृष्टि के सामने न आया था। किन्तु जब विमान नीचे उतर आया, लोगों ने बड़े आश्चर्य से देखा कि उस पर रामचन्द्र, सीता और लक्ष्मण और उनके नायक बैठे हुए हैं। जय-जय की हर्षध्वनि से आकाश हिल उठा।

ज्योंही रामचन्द्र विमान से उतरे, भरत दौड़कर उनके चरणों से लिपट गये। उनके मुँह से शब्द न निकलता था। बस, आंखों से आँसू बह रहे थे। रामचन्द्र उन्हें उठाकर छाती से लगाना चाहते

थे, किन्तु भरत उनके पैरों को न छोड़ते थे। कितना पवित्र दृश्य था! रामचन्द्र ने तो पिता की आज्ञा को मानकर वनवास लिया था, किन्तु भरत ने राज्य मिलने पर भी स्वीकार न किया, इसलिए कि वह समझते थे कि रामचन्द्र के रहते राज्य पर मेरा कोई अधिकार नहीं है। उन्होंने राज्य ही नहीं छोड़ा, साधुओं कासा जीवन व्यतीत किया, क्योंकि कैकेयी ने उन्हीं के लिए रामचन्द्र को वनवास दिया था। वह साधुओं की तरह रहकर अपनी माता के अन्याय का बदला चुकाना चाहते थे। रामचन्द्र ने बड़ी कठिनाई से उठाया और छाती से लगा लिया। फिर लक्ष्मण भी भरत से गले मिले। उधर सीता जी ने जाकर कौशिल्या और दूसरी माताओं के चरणों पर सिर झुकाया। कैकेयी रानी भी वहाँ उपस्थित थीं। तीनों सासों ने सीता को आशीर्वाद दिया। कैकेयी अब अपने किये पर लज्जित थीं। अब उनका हृदय रामचन्द्र और कौशिल्या की ओर से साफ हो गया था।

रामचन्द्र की राजगद्दी

आज रामचन्द्र के राज्याभिषेक का शुभ दिन है। सरयू के किनारे मैदान में एक विशाल तम्बू खड़ा है। उसकी चोबें, चांदी की हैं

और रस्सियाँ रेशम की। बहुमूल्य गलीचे बिछे हुए हैं। तम्बू के बाहर सुन्दर गमले रखे हुए हैं। तम्बू की छत शीशे के बहुमूल्य सामानों से सजी हुई है। दूरदूर से ऋषि-मुनि बुलाये गये हैं। दरबार के धनी-मानी और प्रतिष्ठित राजे आदर से बैठे हैं। सामने एक सोने का जड़ाऊ सिंहासन रखा हुआ है।

एकाएक तोपें दगीं, सब लोग संभल गये। विदित हो गया कि श्रीरामचन्द्र राज भवन से रवाना हो गये। उनके सामने घंटा और शंख बजाया जा रहा था। लक्ष्मण, भरत, शत्रुघ्न, हनुमान, सुग्रीव इत्यादि पीछे-पीछे चले आ रहे थे। रामचन्द्र ने आज राजसी पोशाक पहनी है और सीताजी के बनाव सिंगार की तो प्रशंसा ही नहीं हो सकती।

ज्योंही यह लोग तम्बू में पहुंचे, गुरु वशिष्ठ ने उन्हें हवनकुण्ड के सामने बैठाया। ब्राह्मण ने वेद मन्त्र पढ़ना आरम्भ कर दिया। हवन होने लगा। उधर राजमहल में मंगल के गीत गाये जाने लगे। हवन समाप्त होने पर गुरु वशिष्ठ ने रामचन्द्र के माथे पर केशर का तिलक लगा दिया। उसी समय तोपों ने सलामियाँ दागीं, धनिकों ने नजरें उपस्थिति कीं; कवीश्वरों ने कवित्त पढ़ना प्रारम्भ कर दिया। रामचन्द्र और सीताजी सिंहासन पर शोभायमान हो गये। विभीषण मोरछल झलने लगा। सुग्रीव ने चोबदारों का काम संभाल लिया और हनुमान पंखा झलने लगे। निष्ठावान

हनुमान की प्रसन्नता की थाह न थी। जिस राजकुमार को बहुत दिन पहले उन्होंने ऋष्यमूक पर्वत पर इधर-उधर सीता की तलाश करते पाया था, आज उसी को सीता जी के साथ सिंहासन पर बैठे देख रहे थे। इन्हें उस उद्दिष्ट स्थान तक पहुंचाने में उन्होंने कितना भाग लिया था, अभिमानपूर्ण गौरव से वह फूले न समाते थे।

भरत बड़े-बड़े थालों में मेवे, अनाज भरे बैठे हुए थे। रुपयों कार उनके सामने लगा था। ज्योंही रामचन्द्र और सीता सिंहासन पर बैठे, भरत ने दान देना प्रारम्भ कर दिया। उन चौदह वर्षों में उन्होंने बचत करके राजकोष में जो कुछ एकत्रित किया था, वह सब किसी न किसी रूप में फिर परजा के पास पहुँच गया। निर्धनों को भी अशर्फियों की सूरत दिखायी दे गयी। नंगों को शाल-दुशाले प्राप्त हो गये और भूखों को मेवों और मिठाइयों से सन्तुष्टि हो गयी। चारों तरफ भरत की दानशीलता की धूम मच गयी। सारे राज्य में कोई निर्धन न रह गया। किसानों के साथ विशेष छूट की गयी। एक साल का लगान माफ कर दिया गया। जगह-जगह कुएं खोदवा दिये गये। बन्दियों को मुक्त कर दिया गया। केवल वही मुक्त न किये गये जो छल और कपट के अभियुक्त थे। धनिकों और प्रतिष्ठितों को पदवियाँ दी गयीं और थैलियां बाँटी गयीं।

राम का राज्य

राज्याभिषेक का उत्सव समाप्त होने के उपरांत सुग्रीव, विभीषण अंगद इत्यादि तो विदा हुए, किन्तु हनुमान को रामचन्द्र से इतना प्रेम हो गया था कि वह उन्हें छोड़कर जाने पर सहमत न हुए। लक्ष्मण, भरत इत्यादि ने उन्हें बहुत समझाया, किन्तु वह अयोध्या से न गये। उनका सारा जीवन रामचन्द्र के साथ ही समाप्त हुआ। वह सदैव रामचन्द्र की सेवा करने को तैयार रहते थे। बड़े से बड़ा कठिन काम देखकर भी उनका साहस मन्द न होता था।

रामचन्द्र के समय में अयोध्या के राज्य की इतनी उन्नति हुई, परजा इतनी प्रसन्न थी कि ’रामराज्य’ एक कहावत हो गयी है। जब किसी समय की बहुत प्रशंसा करनी होती है, तो उसे ’रामराज्य’ कहते हैं। उस समय में छोटे-बड़े सब प्रसन्न थे, इसीलिए कोई चोरी न करता था। शिक्षा अनिवार्य थी, बड़े-बड़े ऋषि लड़कों को पढ़ाते थे, इसीलिए अनुचित कर्म न होते थे। विद्वान लोग न्याय करते थे इसलिए झूठी गवाहियाँ न बनायी जाती थीं। किसानों पर सख्ती न की जाती थी, इसलिए वह मन

लगाकर खेती करते थे। अनाज बहुतायत से पैदा होता था। हर एक गाँव में कुएँ और तालाब खुदवा दिये गये थे, नहरें बनवा दी गयी थीं, इसलिए किसान लोग आकाशवर्षा पर ही निर्भर न रहते थे। सफाई का बहुत अच्छा प्रबन्ध था। खाने-पीने की चीजों की कमी न थी। दूध-घी विपुलता से पैदा होता था, क्योंकि हर एक गाँव में साफ चरागाहें थीं, इसलिए देश में बीमारियां न थीं। प्लेग, हैजा, चेचक इत्यादि बीमारियों के नाम भी कोई न जानता था। स्वस्थ रहने के कारण सभी सुन्दर थे। कुरूप आदमी कठिनाई से मिलता था, क्योंकि स्वास्थ्य ही सुन्दरता का भेद है। युवा मृत्युएँ बहुत कम होती थीं, इसलिए अपनी पूरी आयु तक जीते थे। गली-गली अनाथालय न थे, इसलिए कि देश में अनाथ और विधवायें थीं ही नहीं।

उस समय में आदमी की प्रतिष्ठा उसके धन या प्रसिद्धि के अनुसार न की जाती थी, बल्कि धर्म और ज्ञान के अनुसार। धनिक लोग निर्धनों का रक्त चूसने की चिन्ता में न रहते थे, न निर्धन लोग धनिकों को धोखा देते थे। धर्म और कर्तव्य की तुलना में स्वार्थ और प्रयोजन को लोग तुच्छ समझते थे। रामचन्द्र परजा को अपने लड़के की तरह मानते थे। परजा भी उन्हें अपना पिता समझती थी। घर-घर यज्ञ और हवन होता था।

रामचन्द्र केवल अपने परामर्शदाताओं ही की बातें न सुनते थे। वह स्वयं भी प्राय: वेश बदलकर अयोध्या और राज्य के दूसरे नगरों में घूमते रहते थे। वह चाहते थे कि प्रजा का ठीक-ठीक समाचार उन्हें मिलता रहे। ज्योंही वह किसी सरकारी पदाधिकारी की बुराई सुनते, तुरन्त उससे उत्तर मांगते और कड़ा दण्ड देते। सम्भव न था कि परजा पर कोई अत्याचार करे और रामचन्द्र को उसकी सूचना न मिले। जिस ब्राह्मण को धन की ओर झुकते देखते, तुरन्त उसका नाम वैश्यों में लिखा देते। उनके राज्य में यह सम्भव न था कि कोई तो धन और परतिष्ठा दोनों ही लूटे, और कोई दोनों में से एक भी न पाये।

कई साल इसी तरह बीत गये। एक दिन रामचन्द्र रात को अयोध्या की गलियों में वेश बदले घूम रहे थे कि एक धोबी के घर में झगड़े की आवाज सुनकर वे रुक गये और कान लगाकर सुनने लगे। ज्ञात हुआ कि धोबिन आधी रात को बाहर से लौटी है और उसका पति उससे पूछ रहा है कि तू इतनी रात तक कहाँ रही। स्त्री कह रही थी, यहीं पड़ोस में तो काम से गयी थी। क्या कैदी बनकर तेरे घर में रहूँ? इस पर पति ने कहा — मेरे पास रहेगी तो तुझे कैदी बनकर ही रहना पड़ेगा, नहीं कोई दूसरा घर ढूँढ़ ले। मैं राजा नहीं हूँ कि तू चाहे जो अवगुण करे, उस पर पर्दा पड़ जाय। यहाँ तो तनिक भी ऐसी-वैसी बात हुई तो

विरादरी से निकाल दिया जाऊँगा। हुक्का-पानी बन्द हो जायगा। बिरादरी को भोज देना पड़ जायगा। इतना किसके घर से लाऊँगा। तुझे अगर सैर-सपाटा करना है, तो मेरे घर से चली जा। इतना सुनना था कि रामचन्द्र के होश उड़ गये। ऐसा मालूम हुआ कि जमीन नीचे धँसी जा रही है। ऐसे-ऐसे छोटे आदमी भी मेरी बुराई कर रहे हैं! मैं अपनी प्रजा की दृष्टि में इतना गिर गया हूँ! जब एक धोबी के दिल में ऐसे विचार पैदा हो रहे हैं तो भले आदमी शायद मेरा छुआ पानी भी न पियें। उसी समय रामचन्द्र घर की ओर चले और सारी रात इसी बात पर विचार करते रहे। कुछ बुद्धि काम न करती थी कि क्या करना चाहिए! इसके सिवा कोई युक्ति न थी कि सीता जी को अपने पास से अलग कर दें। किन्तु इस पवित्रता की देवी के साथ इतनी निर्दयता करते हुए उन्हें आत्मिक दुःख हो रहा था।

सबेरे रामचन्द्र ने तीनों भाइयों को बुलवाया और रात की घटना की चर्चा करके उनकी सलाह पूछी। लक्ष्मण ने कहा — उस नीच धोबी को फाँसी दे देनी चाहिए, जिसमें कि फिर किसी को ऐसी बुराई करने का साहस न हो।

शत्रुघ्न ने कहा — उसे राज्य से निकाल दिया जाय। उसकी बदजवानी की यही सजा है।

भरत बोले — बकने दीजिए। इन नीच आदमियों के बकने से होता ही क्या है। सीता से अधिक पवित्र देवी संसार में तो क्या, देवलोक में भी न होगी।

लक्ष्मण ने जोश से कहा — आप क्या कहते हैं, भाई साहब! इन टके के आदमियों को इतना साहस कि सीता जी के विषय में ऐसा असन्तोष प्रकट करें? ऐसे आदमी को अवश्य फाँसी देनी चाहिए। सीता जी ने अपनी पवित्रता का प्रमाण उसी समय दे दिया जब वह चिता में कूदने को तैयार हो गयीं।

रामचन्द्र ने देर तक विचार में डूबे रहने के बाद सिर उठाया और बोले — आप लोगों ने सोचकर परामर्श नहीं दिया। क्रोध में आ गये। धोबी को मार डालने से हमारी बदनामी दूर न होगी, बल्कि और भी फैलेगी। बदनामी को दूर करने का केवल एक इलाज है, और वह है कि सीताजी का परित्याग कर दिया जाय। मैं जानता हूँ कि सीता लज्जा और पवित्रता की देवी हैं। मुझे पूरा विश्वास है कि उन्होंने स्वप्न में भी मेरे अतिरिक्त और किसी का ध्यान नहीं किया, किन्तु मेरा विश्वास जब परजा के दिलों में विश्वास नहीं पैदा कर सकता, तो उससे लाभ ही क्या। मैं अपने वंश में कलंक लगते नहीं देख सकता। मेरा धर्म है कि परजा के सामने जीवन का ऐसा उदाहरण उपस्थित करूँ जो समाज को और भी ऊंचा और पवित्र बनाये। यदि मैं ही लोक-निन्दा और

बदनामी से न डरूँगा तो प्रजा इसकी कब परवाह करेगी और इस प्रकार जनसाधारण को सीधे और सच्चे मार्ग से हट जाना सरल हो जायगा। बदनामी से बढ़कर हमारे जीवन को सुधारने की कोई दूसरी ताकत नहीं है। मैंने जो युक्ति बतलायी, उसके सिवाय और कोई दूसरी युक्ति नहीं है।

तीनों भाई रामचन्द्र का यह वार्तालाप सुनकर गुम-सुग हो गये। कुछ जवाब न दे सके। हाँ, दिल में उनके बलिदान की प्रशंसा करने लगे। वह जानते हैं कि सीता जी निरपराध हैं, फिर भी समाज की भलाई के विचार से अपने हृदय पर इतना अत्याचार कर रहे हैं। कर्तव्य के सामने, परजा की भलाई के समाने इन्हें उसकी भी परवाह नहीं है, जो इन्हें दुनिया में सबसे प्रिय है। शायद यह अपनी बुराई सुनकर इतनी ही तत्परता से अपनी जान दे देते।

रामचन्द्र ने एक क्षण के बाद फिर कहा — हाँ, इसके सिवा अब कोई दूसरी युक्ति नहीं है। आज मुझे एक धोबी से लज्जित होना पड़ रहा है मैं इसे सहन नहीं कर सकता। भैया लक्ष्मण, तुमने बड़े कठिन अवसरों पर मेरी सहायता की है यह काम भी तुम्हीं को करना होगा। मुझसे सीता से बात करने का साहस नहीं है, मैं उनके सामने जाने का साहस नहीं कर सकता। उनके सामने जाकर मैं अपने राष्ट्रीय कर्तव्य से हट जाऊँगा, इसलिए तुम आज

ही सीता जी को किसी बहाने से लेकर चले जाओ। मैं जानता हूँ कि निर्दयता करते हुए तुम्हारा हृदय तुमको कोसेगा; किन्तु याद रक्खो, कर्तव्य का मार्ग कठिन है। जो आदमी तलवार की धार पर चल सके, वहीं कर्तव्य के रास्ते पर चल सकता है।

यह आज्ञा देकर रामचन्द्रजी दरबार में चले गये। लक्ष्मण जानते थे कि यदि आज रामचन्द्र की आज्ञा का पालन न किया गया तो वह अवश्य आत्महत्या कर लेंगे। वह अपनी बदनामी कदापि नहीं सह सकते। सीता जी के साथ छल करते हुए उनका हृदय उनको धिक्कार रहा था, किन्तु विवश थे। जाकर सीता जी से बोले — भाभी ! आप जंगलों की सैर का कई बार तकाजा कर चुकी हैं, मैं आज सैर करने जा रहा हूँ। चलिये, आपको भी लेता चलूँ।

बेचारी सीता क्या जानती थीं कि आज यह घर मुझसे सदैव के लिए छूट रहा है! मेरे स्वामी मुझे सदैव के लिए वनवास दे रहे हैं! बड़ी प्रसन्नता से चलने को तैयार हो गयीं। उसी समय रथ तैयार हुआ, लक्ष्मण और सीता उस पर बैठकर चले। सीता जी बहुत प्रसन्न थीं। हर एक नयी चीज को देखकर प्रश्न करने लगती थीं, यह क्या है, वह क्या चीज है? किन्तु लक्ष्मण इतने शोकग्रस्त थे कि हूँ-हाँ करके टाल देते थे। उनके मुँह से शब्द न निकलता था। बातें करते तो तुरंत पर्दा खुल जाता, क्योंकि

उनकी आँखों में बारबार आँसू भर आते थे। आखिर रथ गंगा के किनारे जा पहुंचा।

सीताजी बोलीं — तो क्या हम लोग आज जंगलों ही में रहेंगे? शाम होने को आयी, अभी तो किसी ऋषि-मुनि के आश्रम में भी नहीं गयी। लौटेंगे कब तक?

लक्ष्मण ने मुँह फेरे हुए उत्तर दिया — देखिये, कब तक लौटते हैं।

मांझी को ज्योंही रानी सीता के आने की सूचना मिली, वह राज्य की नाव खेता हुआ आया। सीता रथ से उतरकर नाव में जा बैठीं, और पानी से खेलने लगीं। जंगल की ताजी हवा ने उन्हें प्रफुल्लित कर दिया था।

सीता वनवास

नदी के पार पहुँचकर सीताजी की दृष्टि एकाएक लक्ष्मण के चेहरे पर पड़ी तो देखा कि उनकी आँखों से आँसू बह रहे हैं। वीर लक्ष्मण ने अब तक तो अपने को रोका था, पर अब आँसू न रुक

सके। मैदान में तीरों को रोकना सरल है, आँसू को कौन वीर रोक सकता है !

सीताजी आश्चर्य से बोलीं — लक्ष्मण, तुम रो क्यों रहे हो? क्या आज वन को देखकर फिर बनवास के दिन याद आ रहे हैं ?

लक्ष्मण और भी फूट-फूटकर रोते हुए सीता जी के पैरों पर गिर पड़े और बोले — नहीं देवी! इसलिए कि आज मुझसे अधिक भाग्यहीन, निर्दय पुरुष संसार में नहीं। क्या ही अच्छा होता, मुझे मौत आ जाती। मेघनाद की शक्ति ही ने काम तमाम कर दिया होता तो आज यह दिन न देखना पड़ता। जिस देवी के दर्शनों से जीवन पवित्र हो जाता है, उसे आज मैं वनवास देने आया हूँ। हाय! सदैव के लिए !

सीताजी अब भी कुछ साफ-साफ न समझ सकीं। घबराकर बोलीं — भैया, तुम क्या कह रहे हो, मेरी समझ में नहीं आता। तुम्हारी तबीयत तो अच्छी है? आज तुम रास्ते पर उदास रहे। ज्वर तो नहीं हो आया ?

लक्ष्मण ने सीता जी के पैरों पर सिर रगड़ते हुए — माता! मेरा अपराध क्षमा करो। मैं बिल्कुल निरपराध हूँ। भाई साहब ने जो आज्ञा दी है, उसका पालन कर रहा हूँ। शायद इसी दिन के लिए

मैं अब तक जीवित था। मुझसे ईश्वर को यही बधिक का काम लेना था। हाय!

सीता जी अब पूरी परिस्थिति समझ गयीं। अभिमान से गर्दन उठाकर बोलीं'तो क्या स्वामी जी ने मुझे वनवास दे दिया है ? मेरा कोई अपराध, कोई दोष ? अभी रात को नगर में भ्रमण करने के पहले वह मेरे ही पास थे। उनके चेहरे पर क्रोध का निशान तक न था। फिर क्या बात हो गई ? साफ-साफ कहो, मैं सुनना चाहती हूँ ! और अगर सुनने वाला हो तो उसका उत्तर भी देना चाहती हूँ।

लक्ष्मण ने अभियुक्तों की तरह सिर झुकाकर कहा — माता! क्या बतलाऊँ, ऐसी बात है जो मेरे मुँह से निकल नहीं सकती। अयोध्या में आपके बारे में लोग भिन्नभिन्न प्रकार की बात कह रहे हैं। भाई साहब को आप जानती हैं, बदनामी से कितना डरते हैं। और मैं आपसे क्या कहूँ।

सीता जी की आँखों में न आँसू थे, न घबराहट, वह चुपचाप टकटकी लगाये गंगा की ओर देख रही थीं, फिर बोलीं — क्या स्वामी को भी मुझ पर संदेह है?

लक्ष्मण ने जबान को दाँतों से दबाकर कहा — नहीं भाभी जी, कदापि नहीं। उन्हें आपके ऊपर कण बराबर भी सन्देह नहीं है।

उन्हें आपकी पवित्रता का उतना ही विश्वास है, जितना अपने अस्तित्व का। यह विश्वास किसी प्रकार नहीं मिट सकता, चाहे सारी दुनिया आप पर उंगली उठाये। किन्तु जनसाधारण की जबान को वह कैसे रोक सकते हैं। उनके दिल में आपका जितना प्रेम है, वह मैं देख चुका हूँ। जिस समय उन्होंने मुझे यह आज्ञा दी है, उनका चेहरा पीला पड़ गया था, आंखों से आँसू बह रहे थे; ऐसा प्रतीत हो रहा था कि कोई उनके सीने के अन्दर बैठा हुआ छुरियाँ मार रहा है। बदनामी के सिवा उन्हें कोई विचार नहीं है, न हो सकता है।

सीता जी की आँखों से आँसू की दो बड़ी-बड़ी बूँदें टपटप गिर पड़ीं। किन्तु उन्होंने अपने को संभाला और बोलीं — प्यारे लक्ष्मण, अगर यह स्वामी का आदेश है तो मैं उनके सामने सिर झुकाती हूँ। मैं उन्हें कुछ नहीं कहती। मेरे लिए यही विचार पर्याप्त है कि उनका हृदय मेरी ओर से साफ है। मैं और किसी बात की चिन्ता नहीं करती। तुम न रोओ भैया, तुम्हारा कोई दोष नहीं, तुम क्या कर सकते हो। मैं मरकर भी तुम्हारे उपकारों को नहीं भूल सकती। यह सब बुरे कर्मों का फल है, नहीं तो जिस आदमी ने कभी किसी जानवर के साथ भी अन्याय नहीं किया, जो शील और दया का देवता है, जिसकी एक-एक बात मेरे हृदय में प्रेम की लहरें पैदा कर देती थी, उसके हाथों मेरी यह दुर्गति

होती? जिसके लिए मैंने चौदह साल रो-रोकर काटे, वह आज मुझे त्याग देता? यह सब मेरे खोटे कर्मों का भोग है। तुम्हारा कोई दोष नहीं। किन्तु तुम्हीं दिल में सोचो, क्या मेरे साथ यह न्याय हुआ है? क्या बदनामी से बचने के लिए किसी निर्दोष की हत्या कर देना न्याय है? अब और कुछ न कहूँगी भैया, इस शोक और क्रोध की दशा में संभव है मुँह से कोई ऐसा शब्द निकल जाय, जो न निकलना चाहिए। ओह! कैसे सहन करूँ? ऐसा जी चाहता है कि इसी समय जाकर गंगा में डूब मरूँ! हाय! कैसे दिल को समझाऊँ? किस आशा पर जीवित रहूँ; किसलिए जीवित रहूँ? यह पहाड़-सा जीवन क्या रो-रोकर काटूँ? स्त्री क्या प्रेम के बिना जीवित रह सकती है? कदापि नहीं। सीता आज से मर गयी।

गंगा के किनारे के लम्बे-लम्बे वृक्ष सिर धुन रहे थे। गंगा की लहरें मानो रो रही थीं ! अंधेरा भयानक आकृति धारण किये दौड़ा चला आता था। लक्ष्मण पत्थर की मूर्ति बने; निश्चल खड़े थे मानो शरीर में प्राण ही नहीं। सीता दो-तीन मिनट तक किसी विचार में डूबी रहीं, फिर बोलीं — नहीं वीर लक्ष्मण; अभी जान न दूँगी। मुझे अभी एक बहुत बड़ा कर्तव्य पूरा करना है। अपने बच्चे के लिए जिऊँगी। वह तुम्हारे भाई की थाती है। उसे उनको सौंपकर ही मेरा कर्तव्य पूरा होगा। अब वही मेरे जीवन का आधार होगा। स्वामी नहीं हैं, तो उनकी स्मृति ही से हृदय

को आश्वासन दूँगी! मुझे किसी से कोई शिकायत नहीं है। अपने भाई से कह देना, मेरे हृदय में उनकी ओर से कोई दुर्भावना नहीं है। जब तक जिऊँगी, उनके प्रेम को याद करती रहूँगी। भैया! हृदय बहुत दुर्बल हो रहा है। कितना ही रोकती हूँ, पर रहा नहीं जाता। मेरी समझ में नहीं आता कि जब इस तपोवन के ऋषि-मुनि मुझसे पूछेंगे, तेरे स्वामी ने तुझे क्यों वनवास दिया है; तो क्या कहूँगी। कम से कम तुम्हारे भाई साहब को इतना तो बतला ही देना चाहिए था। ईश्वर की भी कैसी विचित्र लीला है कि वह कुछ आदमियों को केवल रोने के लिए पैदा करता है। एक बार के आँसू अभी सूखने भी न पाये थे कि रोने का यह नया सामान पैदा हो गया। हाय! इन्हीं जंगलों में जीवन के कितने दिन आराम से व्यतीत हुए हैं। किन्तु अब रोना है और सदैव के लिए रोना है। भैया, तुम अब जाओ। मेरा विलाप कब तक सुनते रहोगे ! यह तो जीवन भर समाप्त न होगा। माताओं से मेरा नमस्कार कह देना! मुझसे जो कुछ अशिष्टता हुई हो उसे क्षमा करें। हाँ, मेरे पाले हुए हिरन के बच्चों की खोज-खबर लेते रहना। पिंजरे में मेरा हिरामन तोता पड़ा हुआ है। उसके दाने-पानी का ध्यान रखना। और क्या कहूँ ! ईश्वर तुम्हें सदैव कुशल से रखे। मेरे रोने-धोने की चर्चा अपने भाई साहब से न करना।

नहीं शायद उन्हें दुःख हो। तुम जाओ। अंधेरा हुआ जाता है। अभी तुम्हें बहुत दूर जाना है।

लक्ष्मण यहाँ से चले, तो उन्हें ऐसा प्रतीत हो रहा था कि हृदय के अन्दर आग-सी जल रही है। यह जी चाहता था कि सीता जी के साथ रह कर सारा जीवन उनकी सेवा करता रहूँ। पग-पग, मुड़-मुड़कर सीता जी को देख लेते थे। वह अब तक वहीं सिर झुकाये बैठी हुई थीं। जब अंधेरे ने उन्हें अपने पर्दे में छिपा लिया तो लक्ष्मण भूमि पर बैठ गये और बड़ी देर तक फूट-फूटकर रोते रहे। एकाएक निराशा में एक आशा की किरण दिखायी दी! शायद रामचन्द्र ने इस प्रश्न पर फिर विचार किया हो और वह सीता जी को वापस लेने को तैयार हों। शायद वह फिर उन्हें कल ही यह आज्ञा दें कि जाकर सीता को लिवा लाओ। इस आशा ने खिन्न और निराश लक्ष्मण को बड़ी सान्त्वना दी। वह वेग से पग उठाते हुए नौका की ओर चले।

लव और कुश

जहाँ सीता जी निराश और शोक में डूबी हुई रो रही थीं, उसके थोड़ी ही दूर पर ऋषि वाल्मीकि का आश्रम था। उस समय ऋषि सन्ध्या करने के लिए गंगा की ओर जाया करते थे ! आज भी वह जब नियमानुसार चले तो मार्ग में किसी स्त्री के सिसकने की आवाज कान में आयी! आश्चर्य हुआ कि इस समय कौन स्त्री रो रही है। समझे, शायद कोई लकड़ी बटोरने वाली औरत रास्ता भूल गयी हो! सिसकियों की आहट लेते हुए निकट आये तो देखा कि एक स्त्री बहुमूल्य कपड़े और आभूषण पहने अकेली रो रही है। पूछा — बेटी, तू कौन है और यहाँ बैठी क्यों रो रही है ?

सीता ऋषि वाल्मीकि को पहचानती थीं। उन्हें देखते ही उठकर उनके चरणों से लिपट गयीं और बोलीं — भगवन ! मैं अयोध्या की अभागिनी रानी सीता हूँ। स्वामी ने बदनामी के डर से मुझे त्याग दिया है! लक्ष्मण मुझे यहाँ छोड़ गये हैं।

वाल्मीकि ने प्रेम से सीता को अपने पैरों से उठा लिया और बोले‘ बेटी, अपने को अभागिनी न कहो। तुम उस राजा की बेटी हो, जिसके उपदेश से हमने ज्ञान सीखा है। तुम्हारे पिता मेरे मित्र थे। जब तक मैं जीता हूँ, यहाँ तुम्हें किसी बात का कष्ट न होगा। चलकर मेरे आश्रम में रहो। रामचन्द्र ने तुम्हारी पवित्रता पर विश्वास रखते हुए भी केवल बदनामी के डर से त्याग दिया, यह उनका अन्याय है। लेकिन इसका शोक न करो। सबसे

सुखी वही आदमी है, जो सदैव प्रत्येक दशा में अपने कर्तव्य को पूरा करता रहे। यह बड़े सौंदर्य की जगह है यहाँ तुम्हारी तबीयत खुश होगी। ऋषियों की लड़कियों के साथ रहकर तुम अपने सब दुःख भूल जाओगी। राजमहल में तुम्हें वही चीजें मिल सकती थीं; जिनसे शरीर को आराम पहुँचता है, यहाँ तुम्हें वह चीजें मिलेंगी, जिनसे आत्मा को शान्ति और आराम प्राप्त होता है उठो, मेरे साथ चलो। क्या ही अच्छा होता, यदि मुझे पहले मालूम हो जाता, तो तुम्हें इतना कष्ट न होता।

सीता जी को ऋषि वाल्मीकि की इन बातों से बड़ा सन्तोष हुआ। उठकर उनके साथ उनकी कुटिया में आई। वहाँ और भी कई ऋषियों की कुटियाँ थीं। सीता उनकी स्त्रियों और लड़कियों के साथ रहने लगीं। इस प्रकार कई महीने के बाद उनके दो बच्चे पैदा हुए। ऋषि वाल्मीकि ने बड़े का नाम लव और छोटे का नाम कुश रखा। दोनों ही बच्चे रामचन्द्र से बहुत मिलते थे। जहीन और तेज इतने थे कि जो बात एक बार सुन लेते, सदैव के लिए हृदय पर अंकित हो जाती। वह अपनी भोली-भाली तोतली बातों से सीता को हर्षित किया करते थे। ऋषि वाल्मीकि दोनों बच्चों को बहुत प्यार करते थे। इन दोनों बच्चों के पालने-पोसने में सीता अपना शोक भूल गयीं।

जब दोनों बच्चे जरा बड़े हुए तो ऋषि वाल्मीकि ने उन्हें पढ़ाना प्रारम्भ किया। अपने साथ वन में ले जाते और नाना प्रकार के फल-फूल दिखाते। बचपन ही से सबसे प्रेम और झूठ से घृणा करना सिखाया। युद्ध की कला भी खूब मन लगाकर सिखाई। दोनों इतने वीर थे कि बड़े-बड़े भयानक जानवरों को भी मार गिराते थे। उनका गला बहुत अच्छा था। उनका गाना सुनकर ऋषि लोग भी मस्त हो जाते थे। वाल्मीकि ने रामचन्द्र के जीवन का वृत्तान्त पद्य में लिखकर दोनों राजकुमारों को याद करा दिया था। जब दोनों गा-गाकर सुनाते, तो सीता जी अभिमान और गौरव की लहरों में बहने लगती थीं।

अश्वमेध यज्ञ

सीता को त्याग देने के बाद रामचन्द्र बहुत दुःखित और शोकाकुल रहने लगे। सीता की याद हमेशा उन्हें सताती रहती थी। सोचते, बेचारी न जाने कहाँ होगी, न जाने उस पर क्या बीत रही होगी ! उस समय को याद करके जो उन्होंने सीता जी के साथ व्यतीत किया था, वह प्रायः रोने लगते थे। घर की हर एक चीज उन्हें सीता की याद दिला देती थी। उनके कमरे की

तस्वीरें सीता जी की बनायी हुई थीं। बाग के कितने ही पौधे सीताजी के हाथों के लगाये हुए थे। सीता के स्वयंवर के समय की याद करते, कभी सीता के साथ जंगलों के जीवन का विचार करते। उन बातों को याद करके वह तड़पने लगते। आनंदोत्सवों में सम्मिलित होना उन्होंने बिल्कुल छोड़ दिया। बिल्कुल तपस्वियों की तरह जीवन व्यतीत करने लगे। दरबार के सभासदों और मंत्रियों ने समझाया कि आप दूसरा विवाह कर लें। किसी प्रकार नाम तो चले। कब तक इस प्रकार तपस्या कीजियेगा? किन्तु रामचन्द्र विवाह करने पर सहमत न हुए। यहाँ तक कि कई साल बीत गये।

उस समय कई प्रकार के यज्ञ होते थे। उसी में एक अश्वमेध यज्ञ भी था। अश्व घोड़े को कहते हैं। जो राजा यह आकांक्षा रखता था कि वह सारे देश का महाराजा हो जाय और सभी राजे उसके आज्ञापालक बन जायँ, वह एक घोड़े को छोड़ देता था। घोड़ा चारों ओर घूमता था। यदि कोई राजा उस घोड़े को पकड़ लेता था, तो इसके अर्थ यह होते थे कि उसे सेवक बनना स्वीकार नहीं। तब युद्ध से इसका निर्णय होता था। राजा रामचन्द्र का बल और साम्राज्य इतना ब़ गया कि उन्होंने अश्वमेध यज्ञ करने का निश्चय किया। दूरदूर के राजाओं, महर्षियों, विद्वानों के पास नवेद भेजे गये। सुग्रीव, विभीषण, अंगद

सब उस यज्ञ में सम्मिलित होने के लिए आ पहुंचे। ऋषि वाल्मीकि को भी नवेद मिला। वह लव और कुश के साथ आ गये। यज्ञ की बड़ी धूमधाम से तैयारियाँ होने लगीं। अतिथियों के मनबहलाव के लिए नाना प्रकार के आयोजन किये गये थे। कहीं पहलवानों के दंगल थे, कहीं रागरंग की सभायें। किन्तु जो आनन्द लोगों को लव और कुश के मुँह से रामचन्द्र की चर्चा सुनने में आता था वह और किसी बात में न आता था। दोनों लड़के सुर मिलाकर इतने प्रियभाव से यह काव्य गाते थे कि सुनने वाले मोहित हो जाते थे। चारों ओर उनकी वाहवाह मची हुई थी। धीरे-धीरे रानियों को भी उनका गाना सुनने का शौक पैदा हुआ। एक आदमी दोनों ब्रह्मचारियों को रानिवास में ले गया। यहाँ तीन बड़ी रानियाँ, उनकी तीनों बहुएँ और बहुत-सी स्त्रियाँ बैठी हुई थीं। रामचन्द्र भी उपस्थित थे। इन लड़कों के लंबे-लंबे केश, वन की स्वास्थ्यकर हवा से निखरा हुआ लाल रंग और सुन्दर मुखमण्डल देखकर सबके-सब दंग हो गये। दोनों की सूरत रामचन्द्र से बहुत मिलती थी। वही ऊंचा ललाट था, वही लंबी नाक, वही चौड़ा वक्ष। वन में ऐसे लड़के कहाँ से आ गये, सबको यही आश्चर्य हो रहा था। कौशिल्या मन में सोच रही थीं कि रामचन्द्र के लड़के होते तो वह भी ऐसे ही होते। जब लड़कों ने कवित्त गाना प्रारम्भ किया, तो सबकी आंखों से आँसू बहने शुरू

हो गये। लड़कों का सुर जितना प्यारा था, उतनी ही प्यारी और दिल को हिला देने वाली कविता थी। गाना सुनने के बाद रामचन्द्र ने बहुत चाहा कि उन लड़कों को कुछ पुरस्कार दें, किन्तु उन्होंने लेना स्वीकार न किया। आखिर उन्होंने पूछा — तुम दोनों को गाना किसने सिखाया और तुम कहाँ रहते हो ?

लव ने कहा — हम लोग ऋषि वाल्मीकि के आश्रम में रहते हैं उन्होंने हमें गाना सिखाया है।

रामचन्द्र ने फिर पूछा — और यह कविता किसने बनायी?

लव ने उत्तर दिया — ऋषि वाल्मीकि ने ही यह कविता भी बनायी है।

रामचन्द्र को उन दोनों लड़कों से इतना प्रेम हो गया था कि वह उसी समय ऋषि वाल्मीकि के पास गये और उनसे कहा — महाराज! आपसे एक प्रश्न करने आया हूँ, दया कीजियेगा।

ऋषि ने मुस्कराकर कहा — राजा रंक से प्रश्न करने आया है? आश्चर्य है। कहिये।

रामचन्द्र ने कहा — मैं चाहता हूँ कि इन दोनों लड़कों को, जिन्होंने आपके रचे हुए पद सुनाये हैं, अपने पास रख लूँ। मेरे अंधेरे घर के दीपक होंगे। हैं तो किसी अच्छे वंश के लड़के?

वाल्मीकि ने कहा — हाँ, बहुत उच्च वंश के हैं। ऐसा वंश भारत में दूसरा नहीं है।

राम — तब तो और भी अच्छा है। मेरे बाद वही मेरे उत्तराधिकारी होंगे। उनके माता-पिता को इसमें कोई आपत्ति तो न होगी?

वाल्मीकि — कह नहीं सकता। सम्भव है आपत्ति हो पिता को तो लेशमात्र भी न होगी, किन्तु माता के विषय में कुछ भी नहीं कह सकता। अपनी मर्यादा पर जान देने वाली स्त्री है।

राम — यदि आप उसे देवी को किसी प्रकार सम्मत कर सकें तो मुझ पर बड़ी कृपा होगी।

वाल्मीकि — चेष्टा करूँगा। मैंने ऐसी सज्जन, लज्जाशीला और सती स्त्री नहीं देखी। यद्यपि उसके पति ने उसे निरपराध, अकारण त्याग दिया है, किन्तु यह सदैव उसी पति की पूजा करती है।

रामचन्द्र की छाती धड़कने लगी। कहीं यह मेरी सीता न हो। आह दैव, यह लड़के मेरे होते! तब तो भाग्य ही खुल जाता।

वाल्मीकि फिर बोले — बेटा, अब तो तुम समझ गये होगे कि मैं किस ओर संकेत कर रहा हूँ।

रामचन्द्र का चेहरा आनन्द से खिल गया। बोले — हाँ, महाराज, समझ गया।

वाल्मीकि — जब से तुमने सीता को त्याग दिया है वह मेरे ही आश्रम में है। मेरे आश्रम में आने के दो-तीन महीने के बाद वह लड़के पैदा हुए थे। वह तुम्हारे लड़के हैं। उनका चेहरा आप कह रहा है। क्या अब भी तुम सीता को घर न लाओगे? तुमने उसके साथ बड़ा अन्याय किया है। मैं उस देवी को आज पन्द्रह सालों से देख रहा हूँ। ऐसी पवित्र स्त्री संसार में कठिनाई से मिलेगी। तुम्हारे विरुद्ध कभी एक शब्द भी उसके मुँह से नहीं सुना। तुम्हारी चर्चा सदैव आदर और प्रेम से करती है। उसकी दशा देखकर मेरा कलेजा फटा जाता है। बहुत रुला चुके, अब उसे अपने घर लाओ। वह लक्ष्मी है।

रामचन्द्र बोले — मुनि जी, मुझे तो सीता पर किसी प्रकार का सन्देह कभी नहीं हुआ। मैं उनको अब भी पवित्र समझता हूँ। किन्तु अपनी परजा को क्या करूँ ? उनकी जबान कैसे बन्द करूँ? रामचन्द्र की पत्नी को सन्देह से पवित्र होना चाहिए। यदि सीता मेरी परजा को अपने विषय में विश्वास दिला दें, तो वह अब भी मेरी रानी बन सकती हैं। यह मेरे लिए अत्यन्त हर्ष की बात होगी।

वाल्मीकि ने तुरंत अपने दो चेलों को आदेश दिया कि जाकर सीता जी को साथ लाओ। रामचन्द्र ने उन्हें अपने पुष्पक विमान पर भेजा, जिनसे वह शीघर लौट आयें। दोनों चेले दूसरे दिन सीता जी को लेकर आ पहुंचे। सारे नगर में यह समाचार फैल गया था कि सीता जी आ रही हैं। राजभवन के सामने, यज्ञशाला के निकट लाखों आदमी एकत्रित थे। सीता जी के आने की खबर पाते ही रामचन्द्र भी भाइयों के साथ आ गये। एक क्षण में सीता जी भी आईं। वह बहुत दुबली हो गयी थीं, एक लाल साड़ी के अलावा उनके शरीर पर और कोई आभूषण न था। किन्तु उनके पीले मुरझाये हुए चेहरे से प्रकाश की किरणें-सी निकल रही थीं। वह सिर झुकाये हुए महर्षि वाल्मीकि के पीछे-पीछे इस समूह के बीच में खड़ी हो गयीं।

महर्षि एक कुश के आसान पर बैठ गये और बड़े दृढ भाव से बोले — देवी ! तेरे पति वह सामने बैठे हुए हैं। अयोध्या के लोग चारों ओर खड़े हैं। तू लज्जा और झिझक को छोड़कर अपने पवित्र और निर्मल होने का प्रमाण इन लोगों को दे और इनके मन से संदेह को दूर कर।

सीता का पीला चेहरा लाल हो गया। उन्होंने भीड़ को उड़ती हुई दृष्टि से देखा, फिर आकाश की ओर देखकर बोलीं — ईश्वर! इस समय मुझे निरपराध सिद्ध करना तुम्हारी ही दया का काम है।

तुम्हीं आदमियों के हृदयों में इस संदेह को दूर कर सकते हो। मैं तुम्हीं से विनती करती हूँ! तुम सबके दिलों का हाल जानते हो। तुम अन्तर्यामी हो। यदि मैंने सदैव प्रकट और गुप्त रूप में अपने पति की पूजा न की हो, यदि मैंने अपने पति के साथ अपने कर्तव्य को पूर्ण न किया हो, यदि मैं पवित्र और निष्कलंक न हूँ, तो तुम इसी समय मुझे इस संसार से उठा लो। यही मेरी निर्मलता का प्रमाण होगा।

अंतिम शब्द मुँह से निकलते ही सीता भूमि पर गिर पड़ी। रामचन्द्र घबराये हुए उनके पास गये, पर वहाँ अब क्या था? देवी की आत्मा ईश्वर के पास पहुँच चुकी थी। सीता जी निरंतर शोक में घुलते-घुलते यों ही मृतप्राय हो रही थीं, इतने बड़े जनसमूह के सम्मुख अपनी पवित्रता का प्रमाण देना इतना बड़ा दुःख था, जो वह सहन न कर सकती थीं। चारों ओर कुहराम मच गया।

सब लोग फूट-फूटकर रोने लगे। सबके जबान पर यही शब्द थे — 'यह सचमुच लक्ष्मी थी, फिर ऐसी स्त्री न पैदा होगी।' कौशल्या, कैकेयी, सुमित्रा छाती पीटने लगीं और रामचन्द्र तो मूर्छित होकर गिर पड़े। जब बड़ी कठिनता से उन्हें चेतना आयी तो रोते हुए बोले'मेरी लक्ष्मी, मेरी प्यारी सीता! जा, स्वर्ग की देवियां तेरे चरणों पर सिर झुकाने के लिए खड़ी हैं। यह संसार तेरे रहने

के योग्य न था। मुझ जैसा बलहीन पुरुष तेरा पति बनने के योग्य न था। मुझ पर दया कर, मुझे क्षमा कर। मैं भी शीघर तेरे पास आता हूँ। मेरी यही ईश्वर से प्रार्थना है कि यदि मैंने कभी किसी पराई स्त्री का स्वप्न में ध्यान किया हो, यदि मैंने सदैव तुझे देवी की तरह हृदय में न पूजा हो, यदि मेरे हृदय में कभी तेरी ओर से सन्देह हुआ हो, तो पतिव्रता स्त्रियों में तेरा नाम सबसे बढ़कर हो। आने वाली पीढ़ियाँ सदैव आदर से तेरे नाम की पूजा करें। भारत की देवियां सदैव तेरे यश के गीत गायें।

अश्वमेध यज्ञ कुशल से समाप्त हुआ। रामचन्द्र भारतवर्ष के सबसे बड़े महाराज मान लिये गये। दो योग्य, वीर और बुद्धिमान पुत्र भी उनके थे। सारे देश में कोई शत्रु न था। परजा उन पर जान देती थी। किसी बात की कमी न थी। किन्तु उस दिन से उनके होंठों पर हंसी नहीं आयी। शोकाकुल तो वह पहले भी रहा करते थे, अब जीवन उन्हें भार प्रतीत होने लगा। राजकाज में तनिक भी जी न लगता। बस यही जी चाहता कि किसी सुनसान जगह में जाकर ईश्वर को याद करें। शोक और खेद से बेचैन हृदय को ईश्वर के अतिरिक्त और कौन सान्त्वना दे सकता था !

लक्ष्मण की मृत्यु

किन्तु अभी रामचन्द्र की विपत्तियों का अन्त न हुआ था। उन पर एक बड़ी बिजली और गिरने वाली थी। एक दिन एक साधु उनसे मिलने आया और बोला — मैं आपसे अकेले में कुछ कहना चाहता हूँ। जब तक मैं बातें करता रहूँ, कोई दूसरा कमरे में न आने पाये। रामचन्द्र महात्माओं का बड़ा सम्मान करते थे। इस विचार से कि किसी साधारण द्वारपाल को द्वार पर बैठा दूँगा तो सम्भव है कि वह किसी बड़े धनी-मानी को अन्दर आने से रोक न सके, उन्होंने लक्ष्मण को द्वार पर बैठा दिया और चेतावनी दे दी कि सावधान रहना, कोई अंदर न आने पाये। यह कहकर रामचन्द्र उस साधु से कमरे में बातें करने लगे। संयोग से उसी समय दुर्वासा ऋषि आ पहुंचे और रामचन्द्र से मिलने की इच्छा प्रकट की। लक्ष्मण ने कहा — अभी तो महाराज एक महात्मा से बातें कर रहे हैं। आप तनिक ठहर जायँ तो मैं मिला दूँगा। दुर्वासा अत्यन्त क्रोधी थे। क्रोध उनकी नाक पर रहता था। बोले'मुझे अवकाश नहीं है। मैं इसी समय रामचन्द्र से मिलूँगा। यदि तुम मुझे अंदर जाने से रोकोगे तो तुम्हें ऐसा शाप दे दूँगा कि तुम्हारे वंश का सत्यानाश हो जायगा।

बेचारे लक्ष्मण बड़ी दुविधा में पड़े। यदि दुर्वासा को अंदर जाने देते हैं तो रामचन्द्र अप्रसन्न होते हैं, नहीं जाने देते तो भयानक शाप मिलता है। आखिर उन्हें रामचन्द्र की अप्रसन्नता ही अधिक सरल प्रतीत हुई। दुर्वासा को अन्दर जाने की अनुमति दे दी। दुर्वासा अन्दर पहुंचे। उन्हें देखते ही वह साधु बहुत बिगड़ा और रामचन्द्र को सख्त-सुस्त कहता चला गया। दुर्वासा भी आवश्यक बातें करके चले गये। किन्तु रामचन्द्र को लक्ष्मण का यह कार्य बहुत बुरा मालूम हुआ। बाहर आते ही लक्ष्मण से पूछा — जब मैंने तुमसे आग्रहपूर्वक कह दिया था तो तुमने दुर्वासा को क्यों अन्दर जाने दिया? केवल इस भय से कि दुर्वासा तुम्हें शाप दे देते।

लक्ष्मण ने लज्जित होकर कहा — महाराज! मैं क्या करता। वह बड़ा भयानक शाप देने की धमकी दे रहे थे।

राम — तो तुमने एक साधु के शाप के सामने राजा की आज्ञा की चिंता नहीं की। सोचो, यह उचित था? मैं राजा पहले हूँ 'भाई, पति, पुत्र या पति पीछे। तुमने अपने बड़े भाई की इच्छा के विरुद्ध काम नहीं किया है, बल्कि तुमने अपने राजा की आज्ञा तोड़ी है। इस दण्ड से तुम किसी प्रकार नहीं बच सकते। यदि तुम्हारे स्थान पर कोई द्वारपाल होता तो तुम समझते हो, मैं उसे क्या दण्ड देता? मैं उस पर जुर्माना करता। लेकिन तुम इतने

समझदार, उत्तरदायित्व के ज्ञान से इतने पूर्ण हो, इसलिए वह अपराध और भी बड़ा हो गया है और उसका दण्ड भी बड़ा होना चाहिए। मैं तुम्हें आज्ञा देता हूँ कि आज ही अयोध्या का राज्य छोड़कर निकल जाओ। न्याय सबके लिए एक है। वह पक्षपात नहीं जानता।

यह था रामचन्द्र की कर्तव्यपरायणता का उदाहरण! जिस निर्दयता से कर्तव्य के लिए प्राणों से प्रिय अपनी पत्नी को त्याग दिया उसी निर्दयता से अपने प्राणों से प्यारे भाई को भी त्याग दिया। लक्ष्मण ने कोई आपत्ति नहीं की। आपत्ति के लिए स्थान ही न था। उसी समय बिना किसी से कुछ कहे-सुने राजमहल के बाहर चले गये और सरयू के किनारे पहुँचकर जान दे दी।

अन्त

रामचन्द्र को लक्ष्मण के मरने का समाचार मिला तो मानो सिर पर पहाड़ टूट पड़ा। संसार में सीताजी के बाद उन्हें सबसे अधिक प्रेम लक्ष्मण से ही था। लक्ष्मण उनके दाहिने हाथ थे। कमर टूट गयी। कुछ दिन तक तो उन्होंने ज्यों-त्यों करके राज्य

किया। आखिर एक दिन साम्राज्य बेटों को देकर आप तीनों भाइयों के साथ जंगल में ईश्वर की उपासना करने चले गये।

यह है रामचन्द्र के जीवन की संक्षिप्त कहानी। उनके जीवन का अर्थ केवल एक शब्द है, और उसका नाम है — 'कर्तव्य'। उन्होंने सदैव कर्तव्य को प्रधान समझा। जीवन भर कर्तव्य के रास्ते से जौ भर भी नहीं हटे। कर्तव्य के लिए चौदह वर्ष तक जंगलों में रहे, अपनी जान से प्यारी पत्नी को कर्तव्य पर बलिदान कर दिया और अन्त में अपने प्रियतम भाई लक्ष्मण से भी हाथ धोया। प्रेम, पक्षपात और शील को कभी कर्तव्य के मार्ग में नहीं आने दिया। यह उनकी कर्तव्यपरायणता का परसाद है कि सारा भारत देश उनका नाम रटता है और उनके अस्तित्व को पवित्र समझता है। इसी कर्तव्यपरायणता ने उन्हें आदमियों के समूह से उठाकर देवताओं के समकक्ष बैठा दिया। यहाँ तक कि आज निन्यानवे प्रतिशत हिन्दू उन्हें आराध्य और ईश्वर का अवतार समझते हैं।

लड़को ! तुम भी कर्तव्य को प्रधान समझो। कर्तव्य से कभी मुँह न मोड़ो। यह रास्ता बड़ा कठिन है। कर्तव्य पूरा करने में तुम्हें बड़ी-बड़ी कठिनाइयों का सामना करना पड़ेगा; किन्तु कर्तव्य पूरा करने के बाद तुम्हें जो प्रसन्नता प्राप्त होगी, वह तुम्हारा पुरस्कार होगा।

●●●

जंगल की कहानियाँ

मिट्ठू

बंदरों के तमाशे तो तुमने बहुत देखे होंगे। मदारी के इशारों पर बंदर कैसी-कैसी नकलें करता है, उसकी शरारतें भी तुमने देखी होंगी। तुमने उसे घरों से कपड़े उठाकर भागते देखा होगा। पर आज हम तुम्हें एक ऐसा हाल सुनाते हैं, जिससे मालूम होगा कि बंदर लड़कों से भी दोस्ती कर सकता है।

कुछ दिन हुए लखनऊ में एक सरकस-कंपनी आयी थी। उसके पास शेर, भालू, चीता और कई तरह के और भी जानवर थे। इनके सिवा एक बंदर मिट्ठू भी था। लड़कों के झुंड-के-झुंड रोज इन जानवरों को देखने आया करते थे। मिट्ठू ही उन्हें सबसे अच्छा लगता। उन्हीं लड़कों में गोपाल भी था। वह रोज आता और मिट्ठू के पास घंटों चुपचाप बैठा रहता। उसे शेर, भालू, चीते आदि से कोई प्रेम न था। वह मिट्ठू के लिए घर से चने, मटर, केले लाता और खिलाता। मिट्ठू भी उससे इतना हिल गया था कि

बगैर उसके खिलाए कुछ न खाता। इस तरह दोनों में बड़ी दोस्ती हो गयी।

एक दिन गोपाल ने सुना कि सरकस कंपनी वहाँ से दूसरे शहर में जा रही है। यह सुनकर उसे बड़ा रंज हुआ। वह रोता हुआ अपनी माँ के पास आया और बोला, "अम्मा, मुझे एक अठन्नी दो, मैं जाकर मिट्ठू को खरीद लाऊँ। वह न जाने कहाँ चला जायेगा! फिर मैं उसे कैसे देखूंगा ? वह भी मुझे न देखेगा तो रोयेगा।"

माँ ने समझाया, "बेटा, बंदर किसी को प्यार नहीं करता। वह तो बड़ा शैतान होता है। यहाँ आकर सबको काटेगा, मुफ्त में उलाहने सुनने पड़ेंगे।" लेकिन लड़के पर माँ के समझाने का कोई असर न हुआ। वह रोने लगा। आखिर माँ ने मजबूर होकर उसे एक अठन्नी निकालकर दे दी। अठन्नी पाकर गोपाल मारे खुशी के फूल उठा। उसने अठन्नी को मिट्टी से मलकर खूब चमकाया, फिर मिट्ठू को खरीदने चला। लेकिन मिट्ठू वहाँ दिखाई न दिया। गोपाल का दिल भर आया-मिट्ठू कहीं भाग तो नहीं गया ? मालिक को अठन्नी दिखाकर गोपाल बोला, "क्यों साहब, मिट्ठू को मेरे हाथ बेचेंगे ?"

मालिक रोज उसे मिट्ठू से खेलते और खिलाते देखता था। हंसकर बोला, "अबकी बार आऊंगा तो मिट्ठू को तुम्हें दे दूँगा।"

गोपाल निराश होकर चला आया और मिट्ठू को इधर-उधर ढूँढ़ने लगा। वह उसे ढूंढ़ने में इतना मगन था कि उसे किसी बात की खबर न थी। उसे बिलकुल न मालूम हुआ कि वह चीते के कठघरे के पास आ गया था। चीता भीतर चुपचाप लेटा था। गोपाल को कठघरे के पास देखकर उसने पंजा बाहर निकाला और उसे पकड़ने की कोशिश करने लगा। गोपाल तो दूसरी तरफ ताक रहा था। उसे क्या खबर थी कि चीते का पंजा उसके हाथ के पास पहुँच गया है! करीब था कि चीता उसका हाथ पकड़कर खींच ले कि मिट्ठू न मालूम कहाँ से आकर उसके पंजे पर कूद पड़ा और पंजे को दांतों से काटने लगा। चीते ने दूसरा पंजा निकाला और उसे ऐसा घायल कर दिया कि वह वहीं गिर पड़ा और जोर-जोर से चीखने लगा।

मिट्ठू की यह हालत देखकर गोपाल भी रोने लगा। दोनों का रोना सुनकर लोग दौड़े, पर देखा कि मिट्ठू बेहोश पड़ा है और गोपाल

रो रहा है। मिट्ठू का घाव तुरंत धोया गया और मरहम लगाया गया। थोड़ी देर में उसे होश आ गया। वह गोपाल की ओर प्यार की आंखों से देखने लगा, जैसे कह रहा हो कि अब क्यों रोते हो? मैं तो अच्छा हो गया!

कई दिन मिट्ठू की मरहम-पट्टी होती रही और आखिर वह बिल्कुल अच्छा हो गया। पाल अब रोज आता और उसे रोटियां खिलाता।

आखिर कंपनी के चलने का दिन आया। गोपाल बहुत रंजीदा था। वह मिट्ठू के कठघरे के पास खड़ा आँसू-भरी आंखों से देख रहा था कि मालिक ने आकर कहा, "अगर तुम मिट्ठू को पा जाओ तो उसका क्या करोगे ?"

गोपाल ने कहा, "मैं उसे अपने साथ ले जाऊंगा, उसके साथ-साथ खेलूँगा, उसे अपनी थाली में खिलाऊँगा, और क्या!"

मालिक ने कहा, "अच्छी बात है, मैं बिना तुमसे अठन्नी लिए ही इसे तुम्हारे हाथ बेचता हूँ।"

गोपाल को जैसे कोई राज मिल गया। उसने मिट्ठू को गोद में उठा लिया, पर मिट्ठू नीचे कूद पड़ा और उसके पीछे-पीछे चलने लगा। दोनों खेलते-कूदते घर पहुँच गये।

शेर और लड़का

बच्चों, शेर तो शायद तुमने न देखा हो, लेकिन उसका नाम तो सुना ही होगा। शायद उसकी तसवीर देखी हो और उसका हाल भी पढ़ा हो। शेर अक्सर जंगलों और कछागे में रहता है। कभी-कभी वह उन जंगलों से आस-पास के गाँवों में आ जाता है और आदमी और जानवरों को उठा ले जाता है। कभी-कभी उन जानवरों को मारकर खा जाता है, जो जंगलों में चरने जाया करते हैं। थोड़े दिनों की बात है कि एक गड़ेरिया का लड़का गाय-बैलों को लेकर जंगल में गया और उन्हें जंगल में छोड़कर आप एक झरने के किनारे मछलियों का शिकार खेलने लगा। जब शाम होने आयी तो उसमे अपने जानवरों को इकट्ठा किया, मगर एक गाय का पता न था। उसने इधर-उधर दौड़ धूप की, मगर गाय का पता न चला। बेचारा बहुत घबराया। मालिक मुझे जीता न छोड़ेंगे। इस वक्त ढूँढ़ने का मौका न था, क्योंकि जानवर फिर

इधर-उधर चले जाते, इसलिए वह उन्हें लेकर घर लौटा और उन्हें बाड़ में बाँधकर, बिना किसी के कुछ कहे गाय की तलाश में निकल पड़ा। उस छोटे लड़के की हिम्मत देखो! अंधेरा हो रहा है, चारों ओर तरफ सन्नाटा छाया हुआ है, जंगल भाँय-भाँय कर रहा है। गीदड़ का होवाना सुनाई दे रहा है, पर वह बेखौफ जंगल में बढ़ा चला जा रहा था।

कुछ देर तक तो गाय को ढूँढ़ता रहा, लेकिन जब अंधेरा हो गया तो उसे डर मालूम होने लगा। जंगल में अच्छे-अच्छे आदमी डर जाते है, उस छोटे-से बच्चे का कहना ही क्या! मगर जायँ कहाँ? जब कुछ न सूझी तो एक पेड़ पर चढ़ गया और उसी पर रात काटने की ठान ली। उसने पक्का इरादा कर लिया था कि बगैर गाय के लिये घर न लौटूँगा। दिन भर का थका-माँदा तो था ही, उसे जल्दी नींद आ गयी। नींद चारपाई और बिछवान नहीं ढूँढ़ती।

अचानक पेड़ इतनी जोर से हिलने लगा कि उसकी नींद खुल गयी। गिरते-गिरते बचा। सोचने लगा, पेड़ कौन हिला रहा है? आँखें मलकर नीचे की तरफ देखा तो उसके रोये खड़े हो गये। एक शेर पेड़ के नीचे खड़ा उसकी तरफ ललचायी हुई आँखों से ताक रहा था। उसकी जान सूख गयी। वह दोनों हाथों से डाल पर चिमट गया। नींद भाग गयी।

कई घंटे गुजर गये, पर शेर वहाँ से जरा भी न हिला। वह बार-बार गुर्राता और उछल-उछलकर लड़के को पकड़ने की कोशिश करता। कभी-कभी तो वह इतने नजदीक आ जाता कि लड़का जोर से चिल्ला उठता।

रात ज्यों-त्यों कटी, सवेरा हुआ। लड़के को कुछ भरोसा हुआ कि शायद शेर उसे छोड़कर चला जाये। मगर शेर ने हिलने का नाम तक न लिया। सारे दिन वह उसी पेड़ के नीचे बैठा रहा। शिकार सामने देखकर कहाँ जाता। पेड़ पर बैठे-बैठे लड़के की देह अकड़ गयी थी, भूख के मारे बुरा हाथ था, मगर शेर था कि वहाँ से जौ भर भी न हटता था। उस जगह से थोड़ी दूर एक छोटा-सा झरना था। शेर कभी-कभी उसकी ओर ताकने लगता था। लड़के ने सोचा की शेर प्यासा है। उसे कुछ आस बँधी कि ज्योंही वह पानी पीने जायेगा, मैं भी यहाँ से खिसक चलूँगा। आखिर शेर उधर चला। लड़का पेड़ पर से उतरने की फिक्र कर ही रहा था कि शेर पानी पीकर लौट आया। शायद उसने भी लड़के का मतलब समझ लिया था। वह आते ही इतनी जोर से चिल्लाया और ऐसा उछला कि लड़के के हाथ-पाँव ढीले पड़ गये, जैसे वह नीचे गिरा जा रहा हो। मालूम होता था, हाथ-पाँव पेट में घुसे जा रहे हैं। ज्यों-त्यों करके वह दिन भी बीत गया। ज्यों-ज्यों रात होती जाती थी, शेर की भूख भी तेज होती जाती

थी। शायद उसे यह सोच-सोचकर गुस्सा आ रहा था कि खाने की चीज़ सामने रखी है और मैं दो दिन से भूखा बैठा हूँ। क्या आज भी एकादशी रहेगी? वह रात भी उसे ताकते ही बीत गयी।

तीसरा दिन भी निकल आया। मारे भूख के उसकी आँखों में तितलियाँ-सी उड़ने लगी। डाल पर बैठना भी उसे मुश्किल मालूम होता था। कभी-कभी तो उसके जी में आता कि शेर मुझे पकड़ ले और खा जाये। उसने हाथ जोड़कर ईश्वर से विनय की — भगवान, क्या तुम मुझ गरीब पर दया न करोगे?

शेर को भी थकावट मालूम हो रही थी। बैठे-बैठे उसका जी ऊब गया। वह चाहता था किसी तरह जल्दी से शिकार मिल जाये। लड़के ने इधर-उधर बहुत निगाह दौड़ाई कि कोई नजर आ जाय, मगर कोई नजर न आया। तब वह चिल्ला-चिल्लाकर रोने लगा। मगर वहाँ उसका रोना कौन सुनता था।

आखिर उसे एक तदबीर सूझी। वह पेड़ की फुनगी पर चढ़ गया और अपनी धोती खोलकर हवा में उड़ाने लगा कि शायद किसी शिकारी की नजर पड़ जाये। एकाएक वह खुशी से उछल पड़ा। उसकी सारी भूख, सारी कमजोरी गायब हो गयी। कई आदमी झरने के पास खड़े उस उड़ती हुई झंडी को देख रहे थे। शायद

उन्हें अचम्भा हो रहा था कि जंगल के पेड़ पर झंडी कहाँ से आयी। लड़के ने उन आदमियों को गिना — एक, दो, तीन, चार।

जिस पेड़ पर लड़का बैठा था, वहाँ की जमीन कुछ नीची थी। उसे ख्याल आया कि अगर वे लोग मुझे देख भी लें तो उनको यह कैसे मालूम हो कि इसके नीचे तीन दिन का भूखा शेर बैठा हुआ है। अगर मैं उन्हें होशियार न कर दूँ तो यह दुष्ट किसी-न-किसी को जरूर चोट कर जायेगा। यह सोचकर वह पूरी ताकत से चिल्लाने लगा। उसकी आवाज सुनते ही वे लोग रुक गये और अपनी-अपनी बन्दूकें सम्हालकर उसको ताकने लगा।

लड़के ने चिल्लाकर कहा — होशियार रहो! होशियार रहो! इस पेड़ के नीचे एक शेर बैठा हुआ है।

शेर का नाम सुनते ही वे लोग सँभल गये, चटपट बन्दूकों में गोलियाँ भरी और चौकन्ने होकर आगे बढ़ने लगे।

शेर को क्या खबर कि नीचे क्या हो रहा है। वह तो अपने शिकार की ताक में घात लगाये बैठा था। एकाएक पैरों की आहट पाते ही वह चौंक उठा और उन चारों आदमियों को एक टीले की आड़ मे देखा। फिर क्या कहना था। उसे मुँह माँगी मुराद मिली। भूख से सब्र कहाँ। वह इतने जोर से गरजा कि सारा जंगल हिल गया और उन आदमियों की तरफ जोर से जम्प

मारी। मगर वे लोग पहले ही से तैयार थे। चारों ने एक साथ गोली चलायी। दन! दन! दन! दन! आवाज हुई। चिड़ियाँ पेड़ों से उड़-उड़कर भागने लगी। लड़के ने नीचे देखा, शेर जमीन पर गिरा पड़ा था। वह एक बार फिर उछला और फिर गिर पड़ा। फिर वह हिला तक नहीं।

लड़के की खुशी का क्या पूछना। भूख प्यास का नाम तक न था। चटपट पेड़ से उतरा तो देखा सामने उसका मालिक खड़ा है। वह रोता हुआ उसके पैरों पर गिर पड़ा। मालिक ने उसे उठाकर छाती से लगा लिया और बोला — क्या तीन दिन से इसी पेड़ पर था?

लड़के ने कहा — हाँ, उतरता कैसे? शेर तो नीचे बैठा था।

मालिक — हमने तो समझा था कि किसी शेर ने तुझे मारकर खा लिया। हम चारों आदमी तीन दिनों से ढूँढ़ रहे है। तूने हमसे कहाँ तक नहीं और निकल खड़ा हुआ।

लड़का — मैं डरता था, गाय जो खोयी थी।

मालिक —अरे पागल, गाय तो उसी दिन आप ही आप चली आयी थी।

भूख प्यास से शक्ति तक न रहने पर भी लड़का हँस पड़ा।

वनमानुष की दर्दनाक कहानी

आज हम तुम्हें एक वनमानुष का हाल सुनाते है। सामने जो तस्वीर है, उससे तुम्हें मालूम होगा कि वनमानुष न तो पूरा बन्दर है, न पूरा आदमी। वह आदमी और बन्दर के बीच में एक जानवर है। मगर वह बड़ा बलवान होता है और आदमियों को बड़ी आसानी से मार डालता है। वह अधिकतर अफ्रीका के जंगलों में पाया जाता है।

एक दिन एक शिकारी अफ्रीका के क्लब में बैठा हुआ अखबार पढ़ रहा था कि उसका एक दोस्त घबराया हुआ कमरे में आया और बोला — एक हब्शी दूर से यहाँ आया है और कहता है कि पास के जंगल में एक नर वनमानुष निकला है, जो सिर्फ आदमियों को मार रहा है। शिकारी ने उस हब्शी को बुलाकर पूछताछ की तो मालूम हुआ कि उबांशी जाति के एक आदमी को वनमानुष के जोड़े को मार डाला था। शायद इसीलिए वह आदमियों को मार रहा है। हब्शी ने कहा — साहब ऐसे डीलडौल का वनमानुष कहीं देखने में नहीं आया था। बड़े-बड़े जवानों को बात की बात में मार डालता है। ताज्जुब तो यह यह है कि वह चुन-

चुनकर उसी जाति के आदमियों को मारता है। अब तक करीब दस उबांशियों को मार चुका है। शिकारी शेर का शिकार करने आया था, पर उसने दिल में सोचा — यह वनमानुष तो शेर से भी ज्यादा खौफनाक है। पहले इसी को क्यों न मारूँ?

दूसरे दिन उसने तड़के शिकार का सामान ठीक-ठाक किया और उसी हब्शी को लेकर जंगल की तरफ चल खड़ा हुआ। कई सिपाही भी मौजूद थे। वे भी अपनी छोलदारियाँ और बन्दूकें लेकर चलने को तैयार हो गये। हब्शी राह दिखाता हुआ आगे-आगे चलने लगा।

दिन-भर लगातार चलने के बाद वे लोग उबांशियों के गाँव में पहुँचे। रास्ते में बहुत-से जानवर मिले, पर वनमानुष का कहीं निशान तक न मिला। अफ्रीका के सब गाँव करीब-करीब एक ही तरह के होते हैं। गाँव के बीच में उबांशियों के सरदार का झोंपड़ा था, जो चारों ओर बाँसों से घिरा हुआ था। एक बड़े डील-डौल का आदमी कंधे पर बन्दूक रखे सामने टहल रहा था।

शिकारियों की खबर पाकर उबांशी सरदार उनसे मिलने आया और फौजी सलाम करके बोला — आप लोग खूब आये, अब मुझे उम्मीद है कि वनमानुष जरूर मारा जायेगा। हम लोगों का तो

घर से निकलना मुश्किल हो गया है। शिकारी ने गरूर के साथ कहा — हाँ, देखो क्या होता है, आये तो इसी इरादे से है।

शिकारियों ने सरदार के झोंपड़े के पास ही अपनी छोलदारियाँ लगा दी और पेट देवता की पूजा करने की फिक्र करने लगे कि अचानक किसी के कराहने की आवाज आयी, जैसे उसका कोई मर गया हो। शिकारी ने पूछा — यह कौन रो रहा है?

हब्शी ने घबरायी हुई आवाज में कहा — हुजूर, यह वही वनमानुष है। दिन-भर अपने मुर्दा जोड़े के पास बैठा रोता है, रात होते ही इधर-उधर घूमने लगता है। न मालूम किस वक्त चुपके से गाँव में घुस आता है और किसी-न-किसी उबांशी को मार डालता है। और किसी जाति के आदमी से कुछ नहीं बोलता।

लोग दिन-भर के थके-माँदे, भूखे-प्यासे थे। वनमानुष का शिकार करने की किसे सूझती थी। जब लोग खा-पीकर फारिग हुए तो सलाह होने लगीं कि वनमानुष का शिकार कैसे किया जाये? उबांशी सरदार ने कहा — रात को आप लोग उसे नहीं पा सकते। दिन को ही उसका शिकार हो सकता है।

शिकारियों को भी उसकी सलाह पसन्द आयी। सब अपनी छोलदारियों में घुस गये और बाहर पहरे का बन्दोबस्त कर दिया कि दो-दो घंटे के बाद पहरा बदल दिया जाये। शिकारी थका

था, जल्दी ही सो गया, लेकिन थोड़ी ही देर सोया था कि उसकी नींद टूट गयी और सामने एक परछाई-सी खड़ी दिखायी दी। उसकी आँखें आग की तरह जल रही थी। अफसर ने फौरन आवाज दी — सन्तरी!

पर कोई जवाब न मिला। न मालूम यह आवाज सन्तरी के कानों तक पहुँची भी या नहीं।

अफसर ने तुरन्त बिजली की बत्ती जलायी। उसका कलेजा सन्न हो गया। सामने छः फीट का वनमानुष खड़ा था और उसके हाथ में सन्तरी की बन्दूक थी, जिसकी नली बिलकुल टेढ़ी-मेढ़ी हो गयी थी। वह शिकारी की ओर आँखें जमाये हुए था, जैसे सोच रहा हो कि इसे मारूँ या छोड़ दूँ। उसका डरावना चेहरा देखकर शिकारी की घिग्गी बँध गयी, मुँह से आवाज तक न निकली।

अचानक बाहर किसी चीज के गिरने का धमाका हुआ। शायद कोई सन्तरी अँधेरे में ठोकर खाकर गिर पड़ा था। वनमानुष ने झट से बन्दूक फेंक दी और उछलकर छोलदारी से बाहर निकल गया। अब अफसर साहब के होश ठिकाने हुए। बिछावन से उठे, बन्दूक सँभाली, बाहर निकले और बिजली की लालटेन लेकर वनमानुष तलाश करने लगे, लेकिन वह वहाँ कहाँ था। मगर

इससे ज्यादा ताज्जुब की बात यह थी कि उस सन्तरी का भी कहीं पता न था, जो पहरा दे रहा था।

शिकारी ने अबकी सन्तरी को ताकीद कर दी कि खूब होशियार रहे, मगर सोने की हिम्मत न पड़ी। बिजली की रोशनी में बैठे-बैठे गप-शप करके रात काटी। दूसरे दिन तड़के सब लोग शिकार करने चले। गाँव के आदमी उन्हें विदा करने के लिए गाँव के बाहर तक आये। अच्छी खासी भीड़ जमा हो गयी। शिकारी लोग झाड़ियों की आड़ में चलने लगे, जिससे वनमानुष उनकी आहट पाकर कहीं भाग न जाये। हब्शी को वह जगह मालूम न थी, जहाँ मादा वनमानुष मरी पड़ी थी। उसी के पीछे लोग चले जा रहे थे। जाते-जाते रास्ते में एक जगह बड़ी बदबू आने लगी। हब्शी सहमकर ठिठक गया और कान लगाकर सुनने लगा। वही रोने की आवाज सुनायी दी। शिकारी ने अपने साथियों से कहा — तुम लोग बन्दूकें तैयार रखो, मैं आगे-आगे चलता हूँ। मगर अभी दो सौ कदम न गया था कि उसे वह नजर आया। मगर वह अकेला न था, उसके जोड़े की लाश भी वहीं पड़ी हुई थी। वनमानुष उस लाश पर झुका हुआ अपने दोनों हाथों से छाती पीट-पीटकर रो रहा था। उसके चेहरे से ऐसा मालूम हो रहा था, मानो वह अपने जोड़े से कह रहा हो कि एक बार फिर उठो, चलो यह देश छोड़कर उस देश में जाकर बसें,

जहाँ के आदमी इतने निर्दयी, इतने कठोर नहीं है। जब वह देखता था कि उसके इतना समझाने पर भी मादा न तो बोलती है और न हिलती है, तो वह छाती पीटकर रोने लगता था।

यह हाल देखकर शिकारी का दिल दर्द से पिघल गया। बन्दूक उसके हाथ से गिर पड़ी। शिकारी का जोश ठंडा हो गया। साथियों को लेकर वह डेरे पर लौट आया। सब लोग वहाँ बैठकर बातें करने लगे — देखो, जानवरों में भी कितनी मोहब्बत होती है, लाश सड़ रही है, मगर नर अभी तक उसे नहीं छोड़ रहा है। उबांशियों ने यह बहुत बुरा काम किया कि उसके जोड़े को मार डाला।

अभी यही बातें हो रही थी कि देखा कई आदमी एक लाश लिये चले आ रहे हैं। शिकारी लाश को फौरन पहचान गया। यह उस सन्तरी की लाश थी। मालूम हो गया कि उसी वनमानुष ने रात को उसे मार डाला था। शिकारी क्रोध से अन्धा हो गया, बोला — अब उस दुष्ट को किसी तरह न छोडूँगा। ऐसे खूनी जानवरों पर दया करना पाप है। आज उसका काम तमाम करके ही दम लूँगा।

यह कहकर फिर उसी जगह जा पहुँचा, जहाँ मादा मरी पड़ी थी। मगर अबकी वनमानुष वहाँ न दिखायी दिया। तब ये लोग उसके

पैरों का निशान देखते हुए उसकी खोज मे चले। आखिर एक पहाड़ी के नीचे से जहाँ एक पहाड़ी नदी बहती थी, वनमानुष आता दिखायी दिया। उसकी देह से बूँद-बूँद पानी टपक रहा था। मालूम होता था अभी नहाकर निकला है। शिकारियों को देखते ही पहले वह गरज उठा, फिर किसी शोक में डूबे हुए आदमी की तरह छाती पीट-पीटकर रोने लगा। वे लोग चुपचाप खड़े रहे। जब वह बिलकुल पास आ गया तो अफसर ने उसके कन्धे पर निशाना लगाकर गोली चलायी। वह जोर से चीखा और गिर पड़ा। उसका कन्धा जख्मी हो गया था, पर वह तुरन्त ही दूसरे हाथ के सहारे अफसर की तरफ दौड़ा। अफसर ने अबकी उसकी छाती पर गोली चलायी। शिकारियों ने समझा, उसे मार लिया, मगर वह झट एक चट्टान फाँदकर भागा और जंगल में घुस गया।

शाम होने को थी। अब उसे ढूँढ़ना बेकार समझकर शिकारी डेरे की तरफ लौटे। गोकि यह मालूम हो गया था कि वह घायल हो गया है, फिर भी लोगों ने पहरे का बन्दोबस्त किया और खा-पीकर सोये। रात-भर सब लोग आराम से सोते रहे। अफसर की नींद खुली ही थी एक हब्शी दौड़ा हुआ आया और बोला — साहब वह तो फिर रो रहा है। अफसर ने ध्यान से सुना, हाँ यह तो वही रोने की आवाज है।

लोगों ने झटपट कपड़े पहने और बन्दूकें लेकर रवाना हो गये! उस जगह पहुँचकर वे लोग झाड़ियों की आड़ से दोनों वनमानुषों की अन्तिम प्रेम-लाली का तमाशा देखने लगे — देखा कि वह अपने जोड़े की लाश को अपने खून से रँगी हुई छाती से दबाकर रो रहा है। उसकी आँखों में नशा-सा छाया हुआ मालूम होता था, जैसे कोई शराब के नशे में चूर हो। यह दर्दनाक मंजर देखकर शिकारियों की आँखें भी आँसुओं से तर हो गयीं। यह तो मालूम ही था कि वह अब चोट नहीं कर सकता था। शिकारी बिलकुल पास चला गया कि अगर हो सके तो उसे जीता पकड़कर मरहमपट्टी की जाये। उसे देखते ही वनमानुष ने बड़ी दर्दनाक आँखों से उसकी ओर देखा, मानो कह रहा था — क्यों देरी करते हो, एक गोली और चला दो कि जल्द इस दुःख-भरे संसार से विदा हो जाऊँ?

शिकारी ने ऐसा ही किया। एक गोली ने उसका काम तमाम कर दिया। इधर बन्दूक की आवाज हुई, उधर वनमानुष चित्त हो गया। मगर आवाज के साथ ही शिकारी का दिल भी काँप उठा। उसे ऐसा मालूम हुआ, मैंने खून किया है, मैं खूनी हूँ।

दक्षिण अफ्रीका में शेर का शिकार

एक मशहूर शिकारी ने एक शेर का शिकार का हाल लिखा है। आज हम उसकी कथा उसी की जबानी से सुनाते है — कई साल हुए एक दिन मैं नैराबी की एक चौड़ी गली से जा रहा था कि एक शेरनी पर नजर पड़ी जो अपने दो बच्चों समेत झाड़ियों की तरफ चली जा रही थी। शायद शिकार की तलाश में बस्ती में घुस आयी थी। उसे देखते ही मैं लपककर अपने घर आया और रायफल लेकर फिर उसी तरफ चला संयोग से चाँदनी रात थी। मैंने आसानी से शेरनी को मार डाला और उसके दोनों बच्चों को पकड़ लिया। इन बच्चों की उम्र ज्यादा न थी, सिर्फ तीन हफ्ते के मालूम होते थे। एक नर था, दूसरा मादा। मैंने नर का नाम जैक और मादा की नाम जिल रखा। जैक तो जल्द बीमार होकर मर गया, जिल बच रही। जिल अपना नाम समझती और मेरी आवाज पहचानती थी। मैं जहाँ जाता वहाँ कुत्ते की तरह मेरे पीछे-पीछे चलती। मेरे कमरे में फर्श पर लेटी रहती थी। अक्सर मेरे पैरों पर सो जाती और जगाने के बाद अपने पंजे मेरे घुटनों पर रखकर बिल्ली की तरह मेरा सिर अपने चेहरे पर मलती।

एक दिन चाँदनी रात में जिल को साथ लेकर सैर के लिए निकला। हम दोनों खुशी के साथ सड़क पर चले जा रहे थे। मैं यह बिलकुल भूल गया था कि उस होटल में नाच होने वाला है। संयोग से देखिए, कि मैं और जिल उस वक्त होटल के पास पहुँचे, जब कोई मेहमान सवारी की तलाश में बाहर खड़ा था। उसने जब देखी, एक शेरनी सड़क के बीचोंबीच उसकी तरफ चली आ रही है, तो वह इतनी घबराया कि बयान से बाहर है और सामने की तरफ बेतहाशा भागा। उसे भागते देखकर और भी दो-तीन आदमी भाग चले। जिल ने समझा यह भी कोई खेल है, वह भी उनके पीछे-पीछे दौड़ी। हँसते-हँसते मेरे पेट में बल पड़ गये। आखिर मैं भी जिल के पीछे दौड़ा और बड़ी मुश्किल से जिल को पकड़ पाया। यद्यपि उसने किसी को घायल नहीं किया, मगर आनन्द की जिन्दगी बितानेवालों की बहादुरी की कलई खुल गयी। फिर मैं जिल को लेकर चाँदनी रात में कभी बाहर न निकला।

एक दिन मैं एक जगह दावत खाने गया। वहाँ से अपने बंगले की तरफ चला तो आधी रात हो गयी थी। आधा रास्ता तय कर चुका था कि एकाएक बन्दूक चलने की आवाज सुनायी दी। ऐसा मालूम हुआ कि कोई आदमी घबराहट में शू-शू कर रहा था। जरा और आगे बढ़ा तो देखा कि एक सिख सन्तरी लालटेन के

खम्भे पर चढ़ा बदहवासी की हालत में शू-शू कर रहा है। मुझे देखते उसने कहा — साहब, जरा बचे रहिएगा, एक शेर बिलकुल पास खड़ी है और घोड़े को खा रहा है। मैंने इधर-उधर निगार दौड़ाई तो पचास कदम के फासले पर एक शेर दिखायी दिया। वह सचमुच एक घोड़े को चट कर रहा था। सन्तरी के शोर-गुल की उसे बिलकुल परवाह न थी।

मैंने सन्तरी को आवाज दी कि वह जहाँ है, वहीं ठहरा रहे और मैं अकेले एक दोस्त के पास बन्दूक लेने गया। जब रायफल लेकर लौटा तो देखा शेर बैठा ओठ चाट रहा है और सन्तरी ज्यों-का-त्यों खम्भे से चिमटा खड़ा है। मैंने फौरन शेर पर बन्दूक चलायी? वह जख्मी तो हो गया, मगर मरा नहीं। वह बड़े जोर से गरजा और एक तरफ चल दिया। लेकिन मैं उसे कब छोड़ने वाला था, मैं खून का निशान देखता हुआ उसके पीछे चला। आखिर मैंने उसे खाड़ी के किनारे पर खड़ा देखा। अबकी मेरी गोली काम कर गयी, शेर गिर पड़ा। मैं खुश-खुश सेर के पास गया और उसे देखते ही पहचान गया। वह मेरी शेरनी जिल थी!

गुब्बारे पर चीता

"मैं तो जाऊँगा, जरूर जाऊँगा, चाहे कोई छुट्टी दे या दे।"

एक स्कूल के सामने एक बड़ा मैदान है, कई लड़के खड़े हैं और बलदेव अपनी जेब में हाथ डाले हुए सब लड़कों को सरकस देखने के लिए चलने की सलाह दे रहा है।

बात यह थी कि स्कूल के पास एक मैदान में एक सरकस पार्टी आयी हुई थी। सारे शहर की दीवारों पर उसके विज्ञापन चिपका दिये गये थे। विज्ञापन में तरह-तरह के जंगली जानवर अजीब-अजीब काम करते दिखाये गये थे। लड़के तमाशा देखने के लिए ललचा रहे थे। पहला तमाशा रात को शुरु होनेवाला था। मगर हेडमास्टर साहब ने लड़कों को वहाँ जाने की मनाही कर दी थी।

इश्तिहार बड़ा आकर्षक था —

"आ गया है! आ गया है!!"

"जिस तमाशे को आप लोग भूख-प्यास छोड़कर इन्तजार कर रहे थे, वहीं बम्बई सरकस आ गया है।"

“आइए और तमाशे का आनन्द उठाइए। बड़े-बड़े खेलों के सिवा एक खेल और भी दिखाया जायेगा, जो न किसी ने देखा होगा और न सुना होगा।”

लड़कों का मन तो सरकस में लगा हुआ था। सामने किताबें खोले जानवरों की चर्चा कर रहे थे। क्योंकर शेर और बकरी एक बर्तन में पानी पियेंगे? और इतना बड़ा हाथी पैरगाड़ी पर कैसे बैठेगा? पैरगाड़ी के पहिये बहुत बड़े-बड़े होंगे? और तोता बन्दूक छोड़ेगा? और वनमानुष बाबू बनकर मेज पर बैठेगा!

बलदेव सबसे पीछे बैठा हुआ अपनी हिसाब की कॉपी पर शेर की तस्वीर खींच रहा था और सोच रहा था कि कल शनीचर नहीं, इतवार होता तो कैसा मज़ा आता।

बलदेव ने बड़ी मुश्किल से कुछ पैसे जमा किए थे। मना रहा था कि कब छूट्टी हो और कब भागूँ। हेडमास्टर साहब का हुक्म सुनकर वह जामे से बाहर हो गया। छुट्टी होते ही वह बाहर मैदान में निकल आया और लड़कों से बोला, “मैं तो जाऊँगा, ज़रूर जाऊँगा चाहे कोई छुट्टी दे या न दे।” मगर और लड़के इतने साहसी न थे। कोई उसके साथ जाने पर राज़ी न हुआ। बलदेव अब अकेला पड़ गया। मगर वह बड़ा जिद्दी था, दिल में

जो बात बैठ जाती, उसे पूरा करके ही छोड़ता था। शनीचर को और लड़के तो मास्टर के साथ गेंद खेलने चले गए, बलदेव चुपके से खिसककर सरकस की ओर चला। वहाँ पहुँचते ही उसने जानवरों को देखने के लिए एक आने का टिकट खरीदा और जानवरों को देखने लगा। इन जानवरों को देखकर बलदेव मन में बहुत झुँझलाया वह शेर है! मालूम होता है महीनों से इसे मलेरिया बुखार आ रहा हो। वह भला क्या बीस हाथ ऊँचा उछलेगा! और यह सुंदर-वन का बाघ है? जैसे किसी ने इसका खून चूस लिया हो। मुर्दे की तरह पड़ा है। वाह रे भालू! यह भालू है या सूअर, और वह भी काना, जैसे मौत के चंगुल से निकल भागा हो। अलबत्ता चीता कुछ जानदार है और एक तीन टाँग का कुत्ता भी।

यह कहकर बड़े ज़ोर से हँसा। उसकी एक टाँग किसने काट ली? दुमकटे कुत्ते तो देखे थे, पैरकटा कुत्ता आज ही देखा! और यह दौड़ेगा कैसे? उसे अफ़सोस हुआ कि गेंद छोड़कर यहाँ नाहक आया। एक आने पैसे भी गए। इतने में एक बड़ा भारी गुब्बारा दिखाई दिया। उसके पास एक आदमी खड़ा चिल्ला रहा था- "आओ, चले आओ, चार आने में आसमान की सैर करो।।

अभी वह उसी तरफ देख रहा था कि अचानक शोर सुनकर वह चौंक पड़ा। पीछे फिरकर देखा तो मारे डर के उसका दिल काँप उठा। वही चीता न जाने किस तरह पिंजरे से निकलकर उसी की तरफ दौड़ा चला आ रहा था। बलदेव जान लेकर भागा।

इतने में एक और तमाशा हुआ। इधर से चीता गुब्बारे की तरफ दौड़ा। जो आदमी गुब्बारे की रस्सी पकड़े हुए था, वह चीते को अपनी तरफ आता देखकर बेतहाशा भागा। बलदेव को और कुछ न सूझा तो वह झट से गुब्बारे पर चढ़ गया। चीता भी शायद उसे पकड़ने के लिए कूदकर गुब्बारे पर जा पहुँचा। गुब्बारे की रस्सी छोड़कर तो वह आदमी पहले ही भाग गया था। वह गुब्बारा उड़ने के लिए बिलकुल तैयार था। रस्सी छूटते ही वह ऊपर उठा। बलदेव और चीता दोनों ऊपर उठ गए। बात की बात में गुब्बारा ताड़ के बराबर जा पहुँचा। बलदेव ने एक बार नीचे देखा तो लोग चिल्ला-चिल्लाकर उसे बचने के उपाय बतलाने लगे। मगर बलदेव के तो होश उड़े हुए थे। उसकी समझ में कोई बात न आई। ज्यों-ज्यों गुब्बारा ऊपर उठता जाता था चीते की जान निकली जाती थी। उसकी समझ में न आता था कि कौन मुझे आसमान की ओर लिए जाता है। वह चाहता तो बड़ी आसानी से बलदेव को चट कर जाता, मगर उसे अपनी ही जान

की फ़िक्र पड़ी हुई थी। सारा चीतापन भूल गया था। आखिर वह इतना डरा कि उसके हाथ-पाँव फूल गए और वह फ़िसलकर उलटा नीचे गिरा। ज़मीन पर गिरते ही उसकी हड्डी-पसली चूर-चूर हो गई।

अब तक तो बलदेब को चीते का डर था। अब यह फ़िक्र हुई कि गुब्बारा मुझे कहाँ लिए जाता है। वह एक बार घंटाघर की मीनार पर चढ़ा था। ऊपर से उसे नीचे के आदमी खिलौनों-से और घर घरौंदों-से लगते थे। मगर इस वक्त वह उससे कई गुना ऊँचा था।

एकाएक उसे एक बात याद आ गई। उसने किसी किताब में पढ़ा था कि गुब्बारे का मुँह खोल देने से गैस निकल जाती है और गुब्बारा नीचे उतर आता है। मगर उसे यह न मालूम था कि मुँह बहुत धीरे- धीरे खोलना चाहिए। उसने एकदम उसका मुँह खोल दिया और गुब्बारा बड़े जोर से गिरने लगा। जब वह ज़मीन से थोड़ी ऊँचाई पर आ गया तो उसने नीचे की तरफ देखा, दरिया बह रहा था। फिर तो वह रस्सी छोड़कर दरिया में कूद पड़ा और तैरकर निकल आया।

पागल हाथी

मोती राजा साहब की खास सवारी का हाथी। यों तो वह बहुत सीधा और समझदार था, पर कभी-कभी उसका मिजाज गर्म हो जाता था और वह आपे में न रहता था। उस हालत में उसे किसी बात की सुधि न रहती थी, महावत का दबाव भी न मानता था। एक बार इसी पागलपन में उसने अपने महावत को मार डाला।

राजा साहब ने वह खबर सुनी तो उन्हें बहुत क्रोध आया। मोती की पदवी छिन गयी। राजा साहब की सवारी से निकाल दिया गया। कुलियों की तरह उसे लकड़ियां ढोनी पड़तीं, पत्थर लादने पड़ते और शाम को वह पीपल के नीचे मोटी जंजीरों से बांध दिया जाता। रातिब बंद हो गया। उसके सामने सूखी टहनियां डाल दी जाती थीं और उन्हीं को चबाकर वह भूख की आग बुझाता। जब वह अपनी इस दशा को अपनी पहली दशा से मिलाता तो वह बहुत चंचल हो जाता। वह सोचता, कहाँ मैं राजा का सबसे प्यारा हाथी था और कहाँ आज मामूली मजदूर हूँ। यह सोचकर जोर-जोर से चिंघाड़ता और उछलता। आखिर एक दिन

उसे इतना जोश आया कि उसने लोहे की जंजीरें तोड़ डालीं और जंगल की तरफ भागा।

थोड़ी ही दूर पर एक नदी थी। मोती पहले उस नदी में जाकर खूब नहाया। तब वहाँ से जंगल की ओर चला। इधर राजा साहब के आदमी उसे पकड़ने के लिए दौड़े, मगर मारे डर के कोई उसके पास जा न सका। जंगल का जानवर जंगल ही में चला गया।

जंगल में पहुँचकर अपने साथियों को ढूंढ़ने लगा। वह कुछ दूर और आगे बढ़ा तो हाथियों ने जब उसके गले में रस्सी और पांव में टूटी जंजीर देखी तो उससे मुँह फेर लिया। उसकी बात तक न पूछी। उनका शायद मतलब था कि तुम गुलाम तो थे ही, अब नमकहराम गुलाम हो, तुम्हारी जगह इस जंगल में नहीं है। जब तक वे आंखों से ओझल न हो गये, मोती वहीं खड़ा ताकता रहा। फिर न जाने क्या सोचकर वहाँ से भागता हुआ महल की ओर चला।

वह रास्ते ही में था कि उसने देखा कि राजा साहब शिकारियों के साथ घोड़े पर चले आ रहे हैं। वह फौरन एक बड़ी चट्टान की आड़ में छिप गया। धूप तेज थी, राजा साहब जरा दम लेने को घोड़े से उतरे। अचानक मोती आड़ से निकल पड़ा और गरजता

हुआ राजा साहब की ओर दौड़ा। राजा साहब घबराकर भागे और एक छोटी झोंपड़ी में घुस गये। जरा देर बाद मोती भी पहुंचा। उसने राजा साहब को अंदर घुसते देख लिया था। पहले तो उसने अपनी सूंड़ से ऊपर का छप्पर गिरा दिया, फिर उसे पैरों से रौंदकर चूर-चूर कर डाला।

भीतर राजा साहब का मारे डर के बुरा हाल था। जान बचने की कोई आशा न थी।

आखिर कुछ न सूझी तो वह जान पर खेलकर पीछे दीवार पर चढ़ गये, और दूसरी तरफ कूद कर भाग निकले। मोती द्वार पर खड़ा छप्पर रौंद रहा था और सोच रहा था कि दीवार कैसे गिराऊं? आखिर उसने धक्का देकर दीवार गिरा दी। मिट्टी की दीवार पागल हाथी का धक्का क्या सहती? मगर जब राजा साहब भीतर न मिले तो उसने बाकी दीवारें भी गिरा दीं और जंगल की तरफ चला गया।

घर लौटकर राजा साहब ने ढिंढोरा पिटवा दिया कि जो आदमी मोती को जीता पकड़कर लायेगा, उसे एक हजार रुपया इनाम दिया जायेगा। कई आदमी इनाम के लालच में उसे पकड़ने के लिए जंगल गये। मगर उनमें से एक भी न लौटा।

मोती के महावत के एक लड़का था। उसका नाम था मुरली। अभी वह कुल आठ-नौ बरस का था, इसलिए राजा साहब दया करके उसे और उसकी माँ को खाने-पहनने के लिए कुछ खर्च दिया करते थे।

मुरली था तो बालक पर हिम्मत का धनी था, कमर बांधकर मोती को पकड़ लाने के लिए तैयार हो गया। मगर माँ ने बहुतेरा समझाया, और लोगों ने भी मना किया, मगर उसने किसी की एक न सुनी और जंगल की ओर चल दिया। जंगल में गौर से इधर-उधर देखने लगा। आखिर उसने देखा कि मोती सिर झुकाये उसी पेड़ की ओर चला आ रहा है। उसकी चाल से ऐसा मालूम होता था कि उसका मिजाज ठंडा हो गया है। ज्यों ही मोती उस पेड़ के नीचे आया, उसने पेड़ के ऊपर से पुचकारा, "मोती!"

मोती इस आवाज को पहचानता था। वहीं रुक गया और सिर उठाकर ऊपर की ओर देखने लगा। मुरली को देखकर पहचान गया। यह वही मुरली था, जिसे वह अपनी सूंड़ से उठाकर अपने मस्तक पर बिठा लेता था! "मैंने ही इसके बाप को मार डाला है," यह सोचकर उसे बालक पर दया आयी। खुश होकर सूंड़ हिलाने लगा।

मुरली उसके मन के भाव को पहचान गया। वह पेड़ से नीचे उतरा और उसकी सूंड़ को थपकियां देने लगा। फिर उसे बैठने का इशारा किया। मोती बैठा नहीं, मुरली को अपनी सूंड़ से उठाकर पहले ही की तरह अपने मस्तक पर बिठा लिया और राजमहल की ओर चला।

मुरली जब मोती को लिए हुए राजमहल के द्वार पर पहुंचा तो सबने दांतों उंगली दबाई। फिर भी किसी की हिम्मत न होती थी कि मोती के पास जाये।

मुरली ने चिल्लाकर कहा, "डरो मत, मोती बिल्कुल सीधा हो गया है, अब वह किसी से न बोलेगा।"

राजा साहब भी डरते-डरते मोती के सामने आये। उन्हें कितना अचंभा हुआ कि वही पागल मोती अब गाय की तरह सीधा हो गया है। उन्होंने मुरली को एक हजार रुपया इनाम तो दिया ही, उसे अपना खास महावत बना लिया, और मोती फिर राजा साहब का सबसे प्यारा हाथी बन गया।

साँप का मणि

मैं जब जहाज़ पर नौकर था तो एक बार कोलंबो भी गया था। बहुत दिनों से वहाँ जाने को मन चाहता था, खासकर रावण की लंकापुरी देखने के लिए । कलकत्ते से सात दिन में जहाज कोलम्बो पहुँचा । मेरा एक दोस्त वहाँ किसी कारखाने में नौकर था, मैंने पहले ही उसे खत डाल दिया था । वह घाट पर आ पहुँचा था। दम दोनों गले मिले और कोलम्बो की सैर करने चले। जहाज़ वहाँ चार दिन रुकनेवाला था। मैंने कप्तान साहब से चार दिन की छुट्टी ले ली ।

जब हम दोनों खा-पी चुके, तो गप शप होने लगी। वहाँ के सीप और मोती की बात छिड़ गई। मेरे दोस्त ने कहा-यह सब चीज़ें तो यहाँ समुद्र में निकलती ही हैं और आसानी से मिल जायेंगी, मगर मैं तुम्हें एक ऐसी चीज़ दूंगा जो शायद तुमने कभी न देखी हो । हाँ, उसका हाल किताबों में पढ़ा होगा।

मैंने ताअजुब्ब से पूछा-वह कौन-सी चीज है ?

'साँप का मणि।"

मैं चौंक उठा और बोला-साँप का मणि ! उसका जिक्र तो मैंने किस्से-कहानियों में सुना है कौर यह भी सुना है कि उसका मोल सात बादशाहों के बराबर होता है । क्या साँप का असली मणि ?

वह बोले-हाँ भाई, असली मणि । तुम्हें मिल जाय तब तो मानोगे।

मुझे विश्वास न हुआ । वह फिर बोले-यहाँ पचासों किस्म के सांप हैं, मगर मणि एक ही तरह के साँपों के पास होता है। उसे कालिया कहते हैं। यह बात सच है कि यह चीज़ मुश्किल से मिलती है। पचासों में शायद एक के पास निकले । मगर मिलती जरूर है।

मैंने सुना था कि साँप मणि को अपने सिर पर रखता है, मगर यह बात ग़लत निकली। मेरे दोस्त ने कहा-यह चीज़ उसके मुँह में होती है ।

मैंने पूछा-तो मुँह के अन्दर से चमक कैसे नज़र आती है !

दोस्त ने हँसकर कहा-जब उसे रोशनी की ज़रूरत होती है, तो वह किसी साफ़ पत्थर पर उसे सामने रख देता है। उस वक्त ज़रा भी खटका हो तो वह झट उसे मुँह में दबाकर भाग जाता है। उसकी यह आदत है कि जहाँ एक बार मणि को निकालता है, वहीं बार-बार आता है। मैं आज ही अपने आदमियों से कहे देता हूँ और वे लोग कहीं न-कहीं से ज़रूर खबर लायेंगे।

दो दिन गुजर गये, तीसरे दिन शाम को मेरे दोस्त ने मुझसे कहा-लो भाई, मणि का पता चल गया।

मैं झट उठ खड़ा हुआ और अपने दोस्त के साथ बाहर आया तो वह आदमी खड़ा था, जो मणि की ख़बर लाया था। वह कहने लगा--अभी मैं एक साँप को मणि से खेलते देख आया हूँ। अगर आप इसी वक्त चलें, तो मणि हाथ आ सकता है। हम फौरन उसके साथ चल दिये । थोड़ी देर में हम एक जंगल में पहुँचे। उस आदमी ने एक तरफ़ उंगली से इशारा करके कहा-वह देखिए, साँप मणि रखे बैठा है। मैंने उस तरफ़ देखा तो सचमुच कोई २० गज की दूरी पर एक साँप फन उठाये बैठा है और उसके आसपास उजाला हो रहा है। पहले तो मैंने समझा कि

शायद जुगुनू हो पर वह रोशनी ठहरी हुई है । जुगुनू की चमक चंचल होती है-कभी दिखाई देती है, कभी ग़ायब हो जाती है। मैं बड़ी देर तक सोचता रहा कि किस उपाय से मणि हाथ लगे। आखिर मैंने उस आदमी से कहा-मुझसे बड़ी ग़लती हुई कि बन्दूक नहीं लाया, नहीं तो इसे मारकर मणि को उठा लेता। उस आदमी ने कहा-बन्दूक की कोई ज़रूरत नहीं है साहब, आप थोड़ी देर रुकिए, मैं अभी आया। यह कहकर वह कहीं चला गया।

थोड़ी देर के बाद वह कुछ हाथ में लिये लौटा ।

मैंने पूछा-तुम्हारे हाथ में क्या है ?

उसने कहा-कीचड़ ।

मैंने पूछा-कीचड़, क्या होगा ?

उसने कहा-चुप चाप देखिए, मैं क्या करता हूँ।

वह चुपके से एक पेड़ पर चढ़ गया और मुझे भी चढ़ने का इशारा किया। मैं भी ऊपर चढ़ा। तब वह डालियों पर होता हुआ ठीक साँप के ऊपर आ गया, और एकाएक उस मणि पर कीचड़ फेंक दिया। अंधेरा छा गया। साँप घबड़ाकर इधर-उधर

दौड़ने लगा। थोड़ी देर के बाद पत्तियों की खड़खड़ाहट बन्द हो गई। मैंने समझा सांप चला गया। पेड़ से उतरने लगा। उस आदमी ने मुझे पकड़ लिया और कहा-भूलकर भी नीचे न जाईएगा, नहीं तो घर तक न पहुँचिएगा । वह सांप यहीं पर कहीं न कहीं छिपा बैठा है।

हम दोनों ने उसी पेड़ पर रात काटी ।

दूसरे दिन सुबह होते ही हम दोनों इधर उधर देखकर नीचे उतरे। साथी ने कीचड़ हटा दिया। मणि नीचे पड़ा था। मैं मारे खुशी के मतवाला हो गया।

जब हम दोनों घर पहुँचे, तो मेरे दोस्त ने कहा-अब तो तुम्हें विश्वास आया या अब भी नहीं ?

मैंने कहा-हाँ, साँप के पास से इसे लाया हूँ जरूर, मगर मुझे अभी तक सन्देह है कि यह वही मणि है, जिसका मोल सात बादशाहों के बराबर है ।

दर्याफ्त करने पर मालूम हुआ कि वह एक किस्म का पत्थर है, जो गर्म होकर अंधेरे में जलने लगता है। जब तक वह ठंडा नहीं हो जाता, वह इसी तरह रोशन रहता है। सांप इसे दिनभर अपने

मुँह में रखता है, ताकि यह गर्म रहे। रात को वह इसे किसी जंगल में निकालता है और इसकी रोशनी में कीड़े-मकोड़े पकड़कर खाता है।

बनमानुस खानसामा

कुछ दिन हुए इलाहाबाद में एक सरकस आया था। उसमें और तो बहुत से जानवर थे, मगर एक बनमानुस बहुत होशियार था, उसे लोग डिक नाम से पुकारते ये। मालिक ने उसे ऐसा सिखाया था कि वह घर का सब काम कर लेता। हाँ, बोलने से लाचार था। उसके मालिक की स्त्री मर चुकी थी, सिर्फ एक छोटा-सा बच्चा था। जब मालिक कहीं चला जाता, तो डिक ही उस बच्चे की रखवाली करता था।

मालिक के नौकरों में तीन आदमी बड़े शैतान और कामचोर थे। एक दिन तमाशा हो रहा था; पर तीनों आदमी शराब के नशे में चूर पड़े हुए थे । जब इनके काम करने का वक्त आया तो उनका कहीं पता नहीं । मालिक बहुत घबड़ाया । बहुत तलाश

करने पर तीनों एक कोठरी में मिले । मगर इस दशा में वे कर ही क्या सकते थे। तमाशा बरबाद हो गया । तमाशा खतम होते ही मालिक ने उन तीनों को डांटा और निकाल दिया । चाहिए तो यह था कि वे अपने किये पर पछताते और मालिक से अपराध क्षमा कराते, मगर वे उलटे बिगड़ उठे और मालिक से इस बेइज्जती का बदला लेने की फिक्र सोचने लगे।

एक दिन तीनों बदमाश इसी घात में बैठे हुए थे कि डिक बच्चे को उसकी छोटी-सी गाड़ी पर बिठाकर घुमाने निकला । डिक को देखते ही तीनों उसके पास पहुँचे और एक ने डिक को तमंचा दिखाया, बाकी दोनों आदमी बच्चे को लेकर भाग खड़े हुए ।

डिक बड़ा समझदार था । उसने सोचा कि अगर इस वक्त रोकता हूं तो मेरी भी जान जायगी और बच्चे की भी । वह चुप चाप वहीं खड़ा रहा । जब वह तीनों बच्चे को लेकर कुछ दूर निकल गये, तो वह एक पेड़ पर चढ़ गया कि देखें यह सब क्या करते हैं । वे ज्यों-ज्यों आगे बढ़ते जाते थे, डिक भी एक से दूसरे पेड़ पर और दूसरे से तीसरे पेड़ पर कूद कूदकर उनका पीछा करता जाता था। आखिर वे सब रेल- गाड़ी की पटरियों तक

पहुँच गये। वहाँ वे बच्चे को रेलगाड़ी की पटरियों के बीचवाली लकड़ी पर लिटाकर दूर से तमाशा देखने के लिये खड़े हो गये । बच्चे के हाथ-पाँव बंधे थे, इसलिये वह हिल भी न सकता था । डिक भी चुपके से उतरा और एक झाड़ी की आड़ में छिप गया ।

अरे रेरे ! यह तो गजब हुआ ! वह दूर से गाड़ी चली आ रही है । बच्चे की जान अब कैसे बचेगी ? अब क्या उपाय है? अगर डिक बच्चे के पास जाता है, तो शायद ये तीनों शैतान देख लें और तमंचे से मार डालें । ज्यादा सोचने का मौका न था। थोड़ी ही दूर पर प्वाईंट सिगनल था इसके सिवा कोई दूसरा उपाय न था । डिक को सिगनल की क्रिया मालूम थी। उसने पहले कई बार आदमियों को गाड़ी को एक पटरी से दूसरी पटरी पर लाते देखा था ।

गाड़ी बच्चे से बहुत करीब आ गई थी। मुसाफिरों ने देखा कि एक बच्चा पटरी पर पड़ा हुआ है । ड्रायवर की निगाह भी बच्चे पर पड़ी। वह ब्रेक को कसने लगा, लेकिन गाड़ी का एकदम रुकना मुश्किल था। वह रुकते रुकते भी बच्चे के सिर पर आ

जायगी । ठीक उसी वक़्त डिक ने प्वायंट सिगनल को खींचा। गाड़ी दूसरी लायन पर चली गई । डिक दौड़ता हुआ आया और बच्चे को गोद में लेकर भागा । बदमाश लोग दिल में खुश हो रहे थे कि आज दिली मुराद पूरी हुई। एकाएक उन्होंने देखा कि डिक बच्चे को लिये भागा जा रहा है। वे उसके पीछे दौड़ने लगे । बच्चे की वजह से डिक तेज न दौड़ सकता था। तीनों आदमी उसके करीब होते जाते थे। मगर डिक ने हिम्मत न छोड़ी, यहाँ तक कि सरकस का तम्बू सामने आ गया।

एकाएक दन से एक गोली उसकी पीठ पर लगी। आवाज़ सुनते ही मालिक तम्बू से निकल आया तो देखता है कि डिक बच्चे को लिये पीठ झुकाये लंगड़ाता चला आता है। मालिक ने आगे बढ़कर बच्चे को लिया । उसी वक्त डिक ज़मीन पर गिर पड़ा और नमक का हक अदा करके इस दुनिया से रुखसत हो गया।

इतने में सरकस के कई आदमी उन तीनों बदमाशों को पकड़े हुए उसके सामने लाये। उन तीनों को देखकर वह सब कुछ समझ गया और डिक की छाती पर लोटकर बालक की तरह रोने लगा ।

पालतू भालू

किसी शहर में एक बनिया रहता था। वह ज़मींदार का कारिन्दा था । असामियों से रुपया वसूल करना उसका काम था।

एक दिन वह असामियों से रुपये वसूल करके घर चला। रास्ते में एक नदी पड़ती थी। लेकिन मल्लाह अपना अपना खाना बना रहे थे। कोई उस पार ले जाने पर राजी न हुआ ।

वहाँ से थोड़ी ही दूर पर एक और नाव बंधी थी। उसमें दो मल्लाह बैठे हुए थे। कारिन्दा के हाथ में रुपये की थैली देखकर दोनों आपस में कानाफूसी करने लगे । तब एक ने कहा-आओ सावजी, हम उस पार पहुँचा दें ।

बनिया बड़ा सीधा आदमी था । उसे कुछ सन्देह न हुआ । चुप-चाप जाकर नाव पर बैठ गया। इतने में एक मदारी अपना भालू

लेकर वहाँ आ पहुँचा और कारिन्दा से पूछने लगा-सावजी, कहाँ जाओगे ?

बनिये ने जब अपने गाँव का नाम बताया तो वह खुश होकर बोला--मैं भी तो वहीं चल रहा हूँ। यह कहता हुआ वह भालू को लेकर नाव पर चढ़ गया। पहले तो मल्लाहों ने बहुत नाक-भौं सिकोड़ा, मगर बाद को ज्यादा पैसा देने पर राज़ी हो गये । नाव खुल गई ।

कारिन्दा दिन भर का थका था। नाव धीरे-धीरे हिलने लगी, तो उसे नींद आ गई। मदारी भालू की पीठ पर सिर रखे मल्लाहों की ओर ताक रहा था। उन दोनों को थैली की तरफ बार बार ताकते देखकर उसे कुछ सन्देह होने लगा । यह सब ठग तो नहीं हैं ? उसने सोचा, ज़रा देखूं तो इन दोनों की क्या नीयत है। उसने झूठ मूठ आँखें बन्द कर लीं मानो सो गया है।

अब नाव ज़ोर मे चलने लगी। क़रीब दो घंटे के बाद कारिन्दा चौंककर उठा तो उसे अपने गाँव का किनारा दिखाई दिया ! मल्लाहों से बोला--बस-बस पहुँच गये, नाव किनारे लगा दो।

लेकिन मल्लाहों ने उसकी बात अनसुनी कर दी। तब कारिन्दा ने डाँटकर कहा- तुम लोग नाव को किनारे क्यों नहीं लगाते जी ? सुनते नहीं हो ?

इस पर एक मल्लाह ने घुड़ककर कहा-- क्या बक-बक करते हो। हम लोगों को इतना भी नहीं मालूम कि नाव कहाँ लगानी होगी ?

मदारी अब तक चुपचाप पड़ा देखता रहा । उसने भी कहा--हाँ, हाँ, यही तो किनारा है, नाव क्यों नहीं लगाते ? मल्लाहों ने उसे भी फटकारा। । तब वह चुपके से कारिन्दा के पास खिसक गया और धीरे से बोला-- इन सबों की नीयत कुछ खराब मालूम होती है। होशियार रहना । कारिन्दा को जैसे जूड़ी चढ़ आई।

मील भर चलने के बाद मल्लाहों ने नाव को एक जंगल के पास लगाया और उतरकर जंगल में जा घुसे। उनके साथ के कई डाकू जंगल में रहते थे । दोनों उनको खबर देने गये ।

बनिया बच्चों की तरह रोने लगा। अपना गाँव मील भर पीछे छूट गया । वहाँ न कोई साथी, न मददगार। मगर मदारी ने उसे तसल्ली दी।

वह देखो, कई आदमी हाथ में मशालें लिये हुए नाव की ओर चले आ रहे हैं, ज़रूर यह डाकुओं का गिरोह है। कारिन्दा के हाथ-पाँव फूल गये ।

एकाएक मदारी भालू को लिये हुए नाव से उतरा और किनारे पर चढ़ गया । डाकू नीचे उतर ही रहे थे कि उसने अपने भालू को उनके पीछे ललकार दिया । फिर क्या था; भालू ने लपककर एक डाकू को पकड़ा और उसके मुँह पर ऐसा पंजा मारा कि सारा मुँह लहू-लुहान हो गया। उसे छोड़कर व दूसरे डाकू पर लपका। डाकुओं में भगदड़ पड़ गई। सब-के-सब अपनी-अपनी जान लेकर भागे। बस वही पड़ा रह गया, जो घायल हो गया था ।

यह शोर गुल सुनकर पास ही के एक दूसरे गाँव से कई आदमी जा पहुँचे । उन्होंने मदारी और कारिन्दा को भालू के साथ फिर नाव पर बिठाया और नाव को ले जाकर उनके गाँव के किनारे लगा दिया। उस घायल डाकू को लोग थाने ले गये ।

गाँव में पहुँचकर कारिन्दा ने मदारी को गले से लगाकर कहा-- तुम पूर्व जन्म में मेरे भाई थे, आज तुम्हारी बदौलत मेरी जान बची ।

बाघ की खाल

राँची से लेकर चक्रधरपुर तक घना जंगल है। उसकी लम्बाई कोई ७५ मील होगी । इस जंगल में तरह-तरह के जानवर रहते हैं, उनमें बाघ सबसे खौफ़नाक होता है। कई साल हुए मेरा एक दोस्त और मैं रांची के एक दफ़्तर में काम करते थे। हम दोनों चक्रधरपुर के रहनेवाले थे। जब दफ्तर में छुट्टियाँ हो जातीं, तो हम दोनों घर चले जाते थे। वहाँ रेलवे लाइन है, एक मोटर-बस चला करती है। एकबार हम दोनों को एक बड़े ज़रूरी काम से घर जाना पड़ा । संयोग से उस दिन मोटर-बस भी न मिली । आखिर यह तै किया कि पैरगाड़ी पर चलें। हिसाब लगाकर देखा कि अगर बीच में कहीं न ठहरें तो नौ-दस घण्टों में पहुँच जायेंगे । आखिर कुछ खाने-पीने का सामान लेकर हम दोनों साइकिल पर सवार होकर शाम को छः बजे निकल खड़े हुए ।

उजाली रात थी। मील भर जाने के बद चाँद निकल आया। आस-पास की पहाड़ियाँ दिखाई देने लगीं। चारों ओर सन्नाटा छाया हुआ था और उस सन्नाटे को चीरती हुई हमारी साइकिलें सन-सन चली जा रही थीं। थोड़ी-थोड़ी दूर पर जंगली आदमियों की बस्तियाँ मिल जाती थीं। उनकी झोपडियों से ढोल झौर बाँसुरी की मीठी-मीठी आवाज़ें आ जाती थीं। दम दोनों इस दृश्य का आनन्द उठाते चले जा रहे थे।

अचानक मेरे दोस्त को कै आ गई और वह साइकिल पर से गिर पड़ा। उसका यह हाल देखकर मेरी जान सूख गई । उसे तो हैज़ा हो गया था; अब क्या करूँ । न कोई बस्ती न गाँव, उसे कहाँ ले जाऊँ। कुछ समझ में न आता था। मैंने अपने दोस्त का नाम लेकर पुकारा, मगर उसके मुँह से कोई आवाज़ न निकली । वह दर्द-भरी आँखों से मेरी तरफ़ देखने लगा। उसकी यह दशा देखकर मुझे भी रोना आ गया। फिर सोचा, रोने से क्या होगा, देखूँ, यहाँ नज़दीक कोई गाँव है या नहीं। शायद किसी से कुछ मदद मिल जाय । मैंने अपने दोस्त से फिर पूछा, भाई तुम्हारा जी कैसा है। कुछ तो बताओ; फिर भी कोई जवाब नहीं । मैंने उसकी नाड़ी पर हाथ रखा, नाड़ी का कहीं पता नहीं, हाँ,

साँस चल रही थी ! सोचने लगा, इसे छोड़कर कैसे जाऊँ? कोई जंगली जानवर आ पहुँचे, तो लाश का भी पता न चले। आखिर मैंने दोनों पैरगाड़ियों को एक पेड़ फे सहारे खड़ा किया और अपने दोस्त को उस पर लिटाकर किसी गाँव की तलाश में निकला। रास्ते में बार-बार अपने दोस्त का खयाल आने लगा । चारों ओर घना जंगल, पेड़ों के नीचे बड़ी मुश्किल से रोशनी पहुँचती थी। रास्ता न दिखाई देता था। अचानक मैं एक पत्थर से ठोकर खाकर गिर पड़ा । चोट तो ज्यादा न आई, मगर हाथ-पाँव कुछ छिल गये। मैं फिर उठा कि एकाएक कुछ आहट पाकर पीछे की ओर ताका। क्या देखता हूँ कि कोई १५ गज की दूरी पर एक बाघ खड़ा है। मेरे होश उड़ गये। ऐसा जान पड़ा जैसे बदन में खून नहीं है । साँस तक बन्द हो गई । मुझे खड़ा देखकर वह भी रुक गया। फिर मैंने सोचा कि शायद मुझे भ्रम हो गया है, शायद मैं किसी पेड़ की परछाई को बाघ समझ रहा हूँ । यह सोचकर मैं फिर आगे बढ़ा, मगर आँखें पीछे ही लगी रहीं। अबकी बार सचमुच मुझे; पत्तों की खड़खड़ाहट सुनाई दी । मैंने फिर पीछे की ओर देखा । बाघ मेरे पीछे-पीछे चला आ रहा था। मेरे रोयें खड़े हो गये और मैं लकड़ी-सा तन गया। कुछ सोचने की मुझमें शक्ति ही नहीं रही। मुझे खड़ा होते देखकर वह ज़मीन पर हाथ-पाँव फैलाकर बैठ गया। मुझे अब

जान की कोई आशा न रही। न ता मेरे पास कोई पिस्टल था और न चाकू। न मालुम क्या सोचकर मैं बड़े ज़ोर से चिल्ला उठा । बाघ मेरी आवाज सुनते ही उठा भौर चुपचाप जंगल की ओर चला गया।

बाघ को जाते देख कर मैं इतना खुश हुआ कि क्या कहूँ। मेरी हिम्मत भी लौट आई । सोचने लगा, घर पहुँचकर सबको यह किस्सा सुनाऊंगा और कहूँगा कि अगर कोई इसी तरह बाघ के सामने पड़ जाय तो उसे खूब चिल्लाना चाहिए। यही सोचता हुआ मैं तेजी से चला जाता था ।

अभी थोड़ी ही दूर गया था कि फिर कुछ आहट मिली । देखा तो सामने बाघ ! मैंने तो अपनी समझ में बाघ को भगाने का मंत्र पा लिया था । लगा ज़ोर से चिल्लाने। मगर अब की बाघ वहाँ से हिला भी नहीं । उसका जवाब उसने यह दिया कि मुझसे आठ-दस गज़ पर मारे खुशी के अपनी दुम हिलाने लगा। अब तो मेरी हिम्मत छूट गई। कह नहीं सकता कि मैं कितनी देर तक वहाँ खड़ा रहा! एका-एक मोटर के हार्न की आवाज़ कान में आई। फिर सोचा, शायद यह भी भ्रम हो। फिर भी मुझे कुछ

हिम्मत हुई। मैं धीरे धीरे पीछे हटने लगा । कोई आठ-दस कदम पीछे हटा था कि अचानक बाघ उठा । मेरा कलेज़ा मानो सिमटकर एड़ियों में धंस गया । बस, वह मुझ पर फांदा ! मैंने झट आँखें बन्द कर लीं और दोनों हाथों से सिर पकड़ लिया। मगर बाघ मुझ पर फांदा नहीं, बल्कि जितनी दूर मैं पीछे हट गया था, उतना ही वह आगे बढ़ आया और फिर बैठ गया।

फिर हार्न की आवाज़ सुनाई दी । शायद कोई लारी राँची से आ रही थी। फिर मुझे होश नहीं कि क्या हुआ । सिर्फ, इतना याद है कि मैं एक मर्तबा बड़े ज़ोर से चिल्लाया था -मार डाला! मार!

जब मुझे होश आया तो मैंने देखा कि मेरा सिर किसी की जाँघ पर रखा हुआ है और आस-पास कई आदमी खड़े हैं। मेरा दोस्त भी वहीं बैठा हुआ है। मैंने उनसे थोड़ा पानी माँगा, उन्होंने मुझे गर्म दूध निकालकर पिलाया ।

बाद को मुझे मालूम हुआ कि यह साहब इंजीनियर थे, अपने तीन-चार दोस्तों के साथ टाटानगर जा रहे थे। रास्ते में उन्हें दिखाई दिया कि पक पेड़ के नीचे दो आँखें-सी चमक रही हैं। उन्होंने बाघ समझकर बन्दूक उठाई । अचानक उस पर मोटर की रोशनी पड़ते ही उन्होंने देखा कि वह आँखें नहीं हैं, बल्कि दो

पैरगाड़ियों की बत्तियाँ जल रही हैं। उन्होंने फौरन मोटर रोक लिया और उतरकर पेड़ के नीचे आये, तो देखा कि एक आदमी बेहोश पड़ा हुआ है । उनके पास कुछ दवाएँ थीं। दवाएँ पिलाने से उस आदमी की हालत कुछ संभल गई । उन्होंने उसे मोटर में बैठाया और चले ही आ रहे थे कि फिर देखा कि एक बाघ मेरी छाती पर दोनों अगले पंजे रखकर बैठा हुआ है । मोटर के करीब आते ही बाघ ने मुझे छोड़ दिया और भागा, मगर इंजीनियर साहब की बन्दूक ने उसे वहीं ठंढा कर दिया।

उन्हीं की मदद से हम दोनों घर पहुँचे । मेरे सारे कपड़े खून से तर थे। छाती में ज़ख्म हो गया था। कई दिन मरहमपट्टी करने के बाद मैं अच्छा होकर फिर रांची लौटा। उसके थोड़े हो दिन बाद इंजीनियर साहब ने मुझे एक बाघ की खाल भेज दी और लिखा कि वह उसी बाघ की खाल है।

यह खाल अभी तक मेरे पास मौजूद है ।

मगर का शिकार

मेरा गाँव सरजू नदी के किनारे है। न जाने क्यों सरजू में ऐसे जानवर बहुत रहते हैं। एक मर्तबा की बात है कि मैं नदी के किनारे पार जाने के लिए आया तो देखा कि कई मछुए एक बकरी के बच्चे को लिये दरिया के किनारे चले आ रहे हैं। उनमें से एक के हाथ में एक बड़ा-सा छुरा भी था। मैंने समझा कि इसे लोग हलाल करने के लिए लाये हैं। मैंने कहा--इसे चाकू से क्यों हलाल करते हो, खड़्ग से क्यों नहीं मारते ? इसपर एक आदमी ने कहा--हजूर, इसे हलाल नहीं करेंगे, इससे मगर का शिकार करेंगे।

मैंने कहा-कैसे ?

'हजूर, चुपचाप देखिए ।'

मैं पार जाना भूल गया। वहीं मगर का शिकार देखने के लिए ठहर गया । देखा कि लोगों ने उस बकरी के बच्चे को एक पेड़ के नीचे बाँधा । वह पेड़ दरिया से कुल बीस गज पर था।

इसके बाद उन्होंने एक हाड़ी से कुछ जोंक निकाले और उन्हें बकरी के बच्चे पर लगा दिया । जब बच्चा मैं मैं करने लगा तो हम लोग एक पेड़ की आड़ में छिप गये और मगर का इंतज़ार करने लगे ।

मगर का एक अजीब स्वभाव यह है कि वह जिस रास्ते से दरिया से निकल कर आता है, उसी रास्ते से दरिया की ओर लौटता भी है । जिससे वह रास्ता न भूल जाय ।

कोई घंटा-भर बैठने के बाद हम लोगों ने एक मगर को पानी से सिर निकालते देखा । हम लोगों ने चुप्पी साध ली । मगर ने डुबकी लगाई और गायब हो गया । इधर बकरा मैं मैं करता ही रहा। कोई तीन-चार मिनट के बाद मगर ने फिर सिर निकाला और धीरे-धीरे किनारे पर चढ़ आया और इधर-उधर बड़े ध्यान से देखने लगा। जब उसे मालूम हो गया कि यहाँ बिल्कुल सन्नाटा है, तो वह रेंगता हुआ बच्चे के समीप गया। बच्चे के बिल्कुल पास पहुँचकर उसने फ़िर एक बार इधर-उधर गौर से देखा और जब फिर उसे कोई न दिखाई दिया, तो उसने झटपट बच्चे की गरदन पकड़ ली।

उधर उन मछुओं में से एक आदमी वही चाकू लिए हुए चुपके से दरिया के किनारे पहुँच गया और ठीक उसी जगह जहाँ मगर दरिया से निकला था, चाकू को इस कदर ज़मीन में गाड़ा कि उसकी नोक जमीन से कोई दो इंच निकली रहे। जब वह चाकू गाड़कर लौटा तो सब-के-सब एक साथ चिल्लाकर आड़ से निकले और अपने सोटे लिए हुए मगर के पीछे दौड़े। अचानक इतने आदमियों को अपने ऊपर हमला करते देखकर मगर घबड़ा गया और जल्दी से नदी में उतर गया । वह तो डुबकी लगाकर गायब हो गया; लेकिन उस जगह नदी के पानी का रंग लाल-ही-लाल दिखाई देने लगा ।

मछुए खुश हो-होकर उछल पड़े और कहने लगे--बस, मार दिया। मैंने ताज्जुब से पूछा--मगर तो भाग गया, तुमने मारा कहाँ !

एक मछुए ने कहा--ज़रा सब्र तो कीजिए, अभी देखिएगा ।

मेरी नज़र चाकू की नोक पर पड़ी तो मैंने देखा कि वह बिलकुल लाल हो गई है और उस जगह से दरिया तक लाल ही लाल दिखायी देता है।

कोई पन्द्रह-बीस सिनट के बाद वे लोग चिल्ला उठे--वह निकला, वह निकला । सचमुच बीच दरिया में एक मगर की लाश तैर रही थी । उसका पेट चिरा हुआ था और उस वक्त भी खून बह रहा था ।

वह लोग नाव पर सवार होकर बीच दरिया में गये और मगर को जाल में फंसाकर किनारे लाये । एक आदमी फ़ौरन दौड़ता हुआ गया और एक बैलगाड़ी लाया। लोगों ने मगर फो बैलगाड़ी पर लादा और चल दिये। इतना बड़ा मगर मैंने न देखा था। वह कोई पन्द्रह फीट लम्बा था।

जुड़वाँ भाई

कभी-कभी मूर्ख मर्द ज़रा-ज़रा-सी बात पर औरतों को पीटा करते हैं। एक गाँव में ऐसा ही एक किसान था। उसकी औरत से कोई छोटा- सा नुकसान भी हो जाता तो वह उसे बग़ैर मारे न छोड़ता । एक दिन बछड़ा गाय का दूध पी गया। इस पर किसान इतना झल्लाया कि औरत को कई लातें जमाईं । बेचारी

रोती हुई घर से भागी। उसे यह न मालूम था कि मैं कहाँ जा रही हूँ। वह किसी ऐसी जगह भाग जाना चाहती थी, जहाँ उसका शौहर उसे फिर न पा सके।

चलते-चलते वह जंगल में पहुँच गई। पहले तो वह बहुत डरी कि कोई जानवर न उठा जे जाय, मगर फिर सोचा, मुझे क्या डर जब दुनिया में मेरा कोई अपना नहीं है, तो मुझे जीकर क्या करना है। मरकर मुसीबत से तो छूट जाऊंगी। मगर उसे कोई जानवर न मिला और वह रात को एक पेड़ के नीचे सो गई। दूसरे दिन उसने उसी जंगल में एक छोटी-सी झोपड़ी बना ली और उसमें रहने लगी । लकड़ी और फूस की कोई कमी थी ही नहीं, मूंज भी इफ़रात से थी। दिन-भर में झोपड़ी तैयार हो गयी । अब वह जंगल में लकड़ियाँ बटोरती और उन्हें आस-पास के गाँवों में बेचकर खाने-पीने का सामान खरीद लाती । इसी तरह उसके दिन कटने लगे ।

कुछ दिनों के बाद उस औरत के जुड़वाँ लड़के पैदा हुए। बच्चों को पालने-पोसने में उसका बहुत-सा वक्त निकल जाता और वह मुश्किल से लकड़ियाँ बटोर पाती। उसे अब रात को भी काम करना पड़ता । मगर इतनी मुसीबत झेलने पर भी वह अपने शौहर के घर न जाती थी । एक-दिन वह दोनों बच्चों को लिये सो रही थी। गरमी की रात थी। उसने हवा के लिए झोपड़ी का

दरवाजा खुला छोड़ दिया था। अचानक रोने की आवाज़ सुनकर उसकी नींद टूट गई तो देखा कि एक बड़ा भारी भालू उसके एक बच्चे को उठाये लिये जा रहा है। उसके पीछे-पीछे दौड़ी मगर भालू जंगल में न जाने कहाँ घुस गया । बेचारी छाती पीट-पीटकर रोने लगी। थोड़ी देर में उसे दूसरे लड़के की याद आई । भागती हुई झोपड़ी में आई मगर देखा कि दूसरे लड़के का भी पता नहीं । फिर छाती पीटने लगी । ज़िन्दगी का यही एक सहारा था, वह भी जाता रहा। वह दुःख की मारी दूसरे ही दिन मर गई।

भालू उस बच्चे को ले जाकर अपनी माँद में घुस गया और उसे बच्चों के पास छोड़ दिया । बच्चे को हँसते-खेलते देखकर भालू के बच्चों को न मालूम कैसे उस पर तरस आ गया । पशु भी कभी-कभी बालकों पर दया करते हैं। यह लड़का भालू के बच्चों के साथ रहने लगा । उन्हीं के साथ खेलता, उन्हीं के साथ खाता और उन्हीं के साथ रहता । धीरे-धीरे वह उन्हीं की तरह चलने-फिरने लगा । उसकी सारी आदतें जानवरों की-सी हो गईं । वह सूरत से आदमी, मगर आदतों से भालू था और उन्हीं की बोली बोलता भी था।

अब दूसरे लड़के का हाल सुनो । जब उसकी माँ उसके भाई की खोज में चली गई थी, तो झोपड़ी में एक नई बात हो गई ।

एक राजा शिकार खेलने के लिए जंगल में आया था और अपने साथियों से अलग होकर भूखा-प्यासा इधर-उधर भटक रहा था। अचानक यह झोपड़ी देखी, तो दरवाज़े पर आकर पुकारने लगा कि जो कोई अन्दर हो, मुझे थोड़ा-सा पानी पिला दो, मैं बहुत प्यासा हूं। मगर जब बच्चे के रोने के सिवा उसे कोई जवाब न मिला तो वह झोपड़ी में घुस आया। देखा कि एक बच्चा पड़ा रो रहा है, और यहाँ कोई नहीं है। वह बाहर निकलकर चिल्लाने लगा कि यहाँ कौन रहता है । जल्दी अओ, तुम्हारा बच्चा अकेला रो रहा है। अब कई बार पुकारने पर भी कोई नहीं आया, तो उसने समझा कि इस बच्चे की माँ को कोई जानवर उठा ले गया है। राजा के कोई लड़का न था। उसने बच्चे को गोद में उठा लिया और घर चला आया।

बीस वर्ष बीत गये। किसान का अनाथ बच्चा राजा हो गया। वह बड़ा विद्वान और चतुर निकला । बहादुर भी ऐसा था कि इतनी ही उम्र में उसने अपने बहुत से दुश्मनों को हरा दिया।

एक दिन नये राजा साहब शिकार खेलने गये । मगर कुछ हाथ न लगा । निराश होकर घर की ओर लौटे आ रहे थे कि इतने में उन्होंने देखा कि एक अद्भुत जानवर एक बड़े हिरन को कंधे

पर लादे भागा जा रहा है ! उसकी शक्ल बिल्कुल आदमी की-सी थी । सिर, दाढ़ी, मुँछ के बाल इतने बढ़ गये थे कि उसका मुँह क़रीब क़रीब बालों से ढक गया था, उसे देखकर राजा ने फ़ौरन घोड़ा रोक लिया और उसे ज़िन्दा पकड़ने की कोशिश करने लगे। वह जानवर हिरन को ज़मीन पर रखकर राजा की ओर दौड़ा । राजा साहब शिकार खेलने में चतुर थे, उन्होंने तलवार निकाली और दोनों में लड़ाई होने लगी । आखिर वह जानवर ज़ख्मी हो गया। राजा साहब ने उसे अपने घोड़े पर लाद लिया और अपने घर लाये। कुछ दिनों तक तो वह पिंजड़े में बन्द रखा गया, फिर कभी-कभी बाहर निकाला जाने लगा। धीरे-धीरे उसकी आदतें बदलने लगी। वह आदमियों की तरह चलने लगा और आदमियों की तरह बोलने भी लगा। उसके बाल काट दिये गये और कपड़े पहिना दिये गये। देखनेवालों को अचम्भा होता था कि इस जंगली आदमी की सूरत राजा साहब से इतनी मिलती है, मगर यह किसे मालूम था कि वह राजा साहब का जुड़वां भाई है, जिसे भालू उठा ले गया था ।

OOO